यज्ञ रहस्य

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक हरयाणा

मूल्य ३.००)

ओ३म्
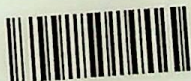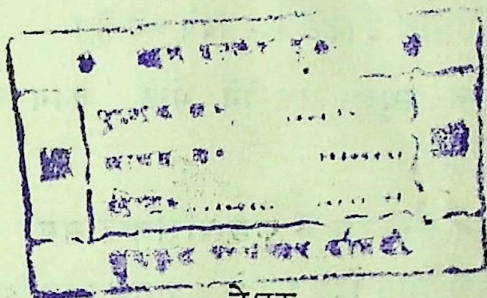
यज्ञ रहस्य

(दोनों भाग)

लेखक

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक

वैदिक भक्ति साधन आश्रम रोहतक (हरयाणा)

छठी बार पूर्णमासी, २८ माघ २०२७ वि० मूल्य ३.००

१०-२-१९७१ ई०

ओ३म्

यज्ञ रहस्य

छठा संस्करण

इस संस्करण की विशेषताएँ—

- दोनों भाग इकट्ठे कर दिये गये हैं।
- पुस्तक स्थूल अक्षरोंमें मोटे कागजपर छापी गयो है।
- पाँचवें संस्करण में कुछ परिशिष्ट समय अभाव के कारण छोड़ दिये गये थे अब सब छाप दिये गये हैं।
- अबकि एक-एक फर्मे को सिलाई कराई गई है ताकि पुस्तक खोलने और पढ़ने में सहूलियत हो।

हम श्री पं० लखपति शास्त्री सुपुत्र श्री महात्मा जी तथा श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री प्रबन्धक सम्राट् प्रेस, के कृतज्ञ हैं जिन्होंने समय देकर प्रूफ देखे हैं।

पूर्णमासी २८ माघ २०२७ वि०
२१ माघ १८९२ शा०
बुधवार १०-२-७१ ई०

प्रकाशन विभाग,
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
रोहतक

ओ३म्

यज्ञ रहस्य

विषय-सूची

क्रम विषय पृष्ठ

॥ ओ३म् ॥

समर्पण

आज के पवित्र दिवस होली की पूर्णमासी के व्रत में बैठा हुआ मैं क्या देख रहा हूँ ? शाम होने वाली है, अभी सूर्यनारायण अपने प्रकाश से कुछ जनता को लाभ दे रहे हैं। एकाएक मेरी आँखों के सामने प्यारा अर्जुनदेव यज्ञ हवन की तैयारी के लिए आंगन में दरियाँ बिछा रहा है. और हवन-यज्ञ सब सामान-कुंड, जलपात्र, सामग्री, घी, समिधा, दियासलाई, कपास बड़ी सावधानी से और ढंग से जोड़-जोड़ कर रख रहा है। मैंने आँख खोली। देखा—न तो अर्जुनदेव है न हवन का सामान। मैं तो जतोई में व्रत कर रहा हूँ और दृश्य आ रहा है सैकड़ों मील दूर का। फिर आँख बन्द करके विचारने लगा कि प्यारे अर्जुनदेव की तो, कई मास हुए परलोक यात्रा हो ली, वह तो स्वर्गवासी हो चुका, यह दृश्य कैसा ? कुछ आश्चर्य के पश्चात् दिल में ऐसी स्फुरणा हुई कि प्यारा अर्जुनदेव, जो प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा से यज्ञ की इतनी सेवा करता रहा, इसे भी भेंट देनी चाहिए। यही भेंट "यज्ञ रहस्य" पुस्तक के रूप में दी जाए। फिर सोचा कि यज्ञ सम्वन्धी पुस्तकें बड़े-बड़े विद्वानों ने लिखी हुई हैं। तुझ अनपढ़ से ऐसे विद्वत्तापूर्ण विषय पर क्या और कैसे लिखा जाएगा ? केवल इसी तरंग को दृष्टि में रखकर कि "हर गुलेरा रंगों बू दीगर अस्त" (अर्थात् हर फूलका रंग और गन्ध निराली है) और दूसरे यज्ञ तेरा इष्ट है, तीसरे आज का प्यारे अर्जुनदेव का यज्ञ के सामान को इकट्ठा करना तेरे लिए बतलाता है कि वह तेरी लिखी पुस्तक को अपनी भेंट लेना चाहता है। सो लिखना आरम्भ करता हूँ और प्यारे अर्जुनदेव को प्रस्तुत करता हूँ कि उसकी आत्मा जिस जगह शरीर धारण किये हुए हो इसे पढ़ कर स्वीकार करे।

टेकचन्द (प्रभु-आश्रित)

दि० २८-२-३४ ई०   बुधवार (व्रत-चौदश-पूर्णमासी)

॥ ओ३म् ॥

प्रार्थना

ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु । गोभिल गृ०। प्र० खंड ३। सूक्त १--३॥

हे प्यारे देव ! गुप्त प्रेरक देव ! यज्ञ-स्वरूप यज्ञदेव ! सुखदाता,प्रकाश-कर्ता,दृश्य-अदृश्य जीवों पर्यन्त सारे संसार में क्रीडा करने वाले, चराचर जगत् के उत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त तथा सकल सामग्री के दाता प्रभो ! आओ कृपा करो । तेरे पैदा किये संसार में तेरी सहनशील धरती माता के ऊपर आज संकट इतना बढ़ रहा है कि हम रहने वाले प्राणी 'त्राहि माम्,त्राहि माम्' कर रहे हैं । तेरे चमक रहे प्रकाश में भी दुःख के शिकार हो रहे हैं, और तेरी दी हुई विश्राम देने वाली रात्रि में भी रो रोकर पुकार कर रहे हैं । न दिन में चैन है न रात्रि में आराम । हम में कैसे-कैसे तुझसे भयभीत न होने वाले मूढ़, निर्लज्ज, कुटिल, विद्याविरोधी, छली, कपटी, दम्भी, अभिमानी; निर्दयी, दुष्ट इस पृथ्वी को कलङ्कित कर रहे हैं । हम सबको सुपथ पर लाने के लिए और अपने दोषों को दूर करने के लिए पुकार करते हैं, कि यज्ञ और यज्ञ विद्या को उत्पन्न करो

और ऐसे यज्ञ करने वाले, सुखदायक व्यवहार के रक्षक जन भी उत्पन्न करिये। यज्ञ करने वालों के ऐश्वर्य (शारीरिक, आत्मिक) के रक्षक उत्पन्न कीजिए।

हे दिव्य-गुण–युक्त प्रभो! गन्ध युक्त पृथ्वी और इसके सब पदार्थों के धारण-कर्ता स्वामी! आप स्वयं बुद्धिको विमल करने वाले हैं। आप प्रज्ञान-स्वरूप हैं। इसलिए हम दीन यज्ञ करने वालों की बुद्धि भी शुद्ध-पवित्र कीजिए। आप वेद की भगवती कल्याणी वाणी के मालिक हैं, हमारी वाणीको भी पवित्र कीजिए, ताकि हम वेद-मन्त्र पढ़ें तो वे शुद्ध, स्पष्ट, सुरीले स्वर से युक्त, कोमल एवं मधुर प्रतीत हों। हमारी वाणी के अन्दर ऐसा मिठास भर दो और हमारी वाणी को ऐसा स्वादिष्ट बना दो कि सदा मधुर रस से जीवन को तृप्त करती रहे।

टेकचन्द (प्रभु आश्रित)

——

प्रस्तावना

यज्ञ शक्ति

संसार में दो प्रकार की शक्तियाँ काम करती दिखाई देती हैं। एक तो मिला रही है, जोड़ रही है, दूसरी हटा रही है और तोड़ रही है। एक सुईका काम कर रही है, दूसरी कैंची का। मानव संसारमें पहली शक्ति का नाम प्रेम है, दूसरी का घृणा (द्वेष), और वैदिक परिभाषा में प्रेमका नाम "यज्ञ-शक्ति" है और द्वेष का नाम 'अयज्ञ'।

शक्तियां तो दोनों हर एक मनुष्य में पाई जाती हैं, मगर किसी में पहली अधिक, किसी में दूसरी अधिक है। इन दोनों शक्तियों की मनुष्य को जरूरत है। और ये दोनों इसकी रक्षा के लिए परमात्म-देव ने उत्पन्न की हैं। मगर मनुष्य इनके वास्तविक रूप को न जानकर अपने जीवनको पशुओं से भी कुत्सित बना रहा है। मनुष्य की सारीकी सारी जिन्दगी अयज्ञ बन गई है। इसका कारण मनुष्यका स्वार्थ है, अपने असली कर्म यज्ञको त्याग देना ही है।

इस समय संसारका अनेक प्रकार के संकटों-निर्धनता, बेकारी, अनाथता, विधवापन, रोग, अल्पायु, निर्बलता, दरिद्रता, पराधीनता, चिन्ता, फूट, निर्दयता, कृपणता, कृतघ्नता आदि में ग्रस्त होना केवल अपने कर्तव्य कर्म-नित्य-कर्म-पांच महायज्ञोंके न करनेसे ही हुआ है।

यजुर्वेद अध्याय १ मन्त्र २ में लिखा हैः—

ओ३म् वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोसि विश्वधा असि । परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् । य० अ० १मं० २

भावार्थ----मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञ का सेवन करते हैं, उससे पवित्रताका प्रकाश, पृथिवी का राज्य, वायुरूपी प्राणके तुल्य राजनीति, प्रताप, सबकी रक्षा, इस लोक और परलोकमें सुखकी वृद्धि,परस्पर कोमलतासे वर्तना, कुटिलताका त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं। इसलिए सब मनुष्योंको परोपकार तथा अपने सुखके लिये विद्या और पुरुषार्थ के साथ प्रीतिपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ।

महर्षि दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में कहा है कि "इसलिए आर्यवरशिरोमणि, महाशय, ऋषि-महर्षि, राजे-महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगोंसे रहित और सुखोंसे पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाय।" यज्ञके कुछ रहस्यों को दर्शानेके लिए यह पुस्तक लिखी जा रही है। अगर जनता में से किसी को लाभ पहुँचा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों उनके लिए क्षमा माँगता हूँ और चाहता हूं कि पाठक-वृन्द कृपा करके त्रुटियों

से सूचित करें। परमात्मदेव करें कि जगद्देव के जगत् में जो संसार-दृष्टिगोचर है, या दृष्टिगोचर नहीं है, उसमें जो यज्ञ हो रहा है उसकी ज्योतिको अनुभव करें, और हवन-यज्ञ के वेदमन्त्रोंकी ज्योति और इसके मिलान को देख सकें। इस ज्योति से मन-मन्दिर में प्रकाश कर सकें, जिससे हमारा जीवन यज्ञ निर्विघ्नताके साथ सम्पूर्ण और सफल हो और हम सुखके भागी बनें।

ओ३म् उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि। (ऋ०१।१।७)

कृपानिधे! यज्ञपते! कृपा करो कि तेरे जगके विस्तृत यज्ञकी वेदी पर दिन-रात सत्कर्मोंकी आहुति देते हुए ब्रह्म-बुद्धिके साथ तेरे समीप उपस्थित रहें, और विश्व-प्रेम तथा लोकहित के संकल्पोंको पूरा करते हुए नम्र-भावसे तेरी पूजा और आराधना करते रहें, जिससे हमारा मनुष्य-जन्म सफल हो और तेरी पूजा का अधिकार सदा बना रहे तथा हम तेरी कृपा के पात्र बन जायें।

इति शम्

यज्ञो वै विष्णुः

प्रार्थना

ुखी बसे संसार सब, दुःखिया रहे न कोय ।
ाह अभिलाषा हम सबकी, भगवन पूरी होय ॥

विद्या बुद्धि तेज बल, सबके भीतर होय ।
दूध, पूत धन धान्य से, वंचित रहे न कोय ॥

ापकी भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर ।
ाग द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर ॥

मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश ।
आशा तेरे धाम को, बनी रहे मम ईश ॥

प से हमें बचाइये, करके दया दयाल ।
ना भक्त बनाय कर, सबको करो निहाल ॥

दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अरु प्यार ।
हृदय में धैर्य वीरता, सब को दो कर्तार ॥

रायण तुम आप हो, पाप के मोचन हार ।
ा करो अपराध सब, कर दो भव से पार ॥

हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिये कृपा निधान ।
साधु-संगत सुख दीजिए, दया नम्रता दान ॥

॥ ओ३म् ॥

यज्ञ रहस्य

प्रथम भाग

पहली झाँकी

निर्धन का यज्ञ

पंजाबमें लायलपुर एक प्रसिद्ध नगर है। उसके दक्षिणमें कुछ मीलकी दूरीपर एक साधु महात्मा बगलमें आसन लपेटे, कन्धेपर एक कम्बल डाले, गुदड़ी लटकाये और हाथमें एक कमण्डलु लिये चला जा रहा है। सर्दीकी ऋतु है। शाम का समय होगया है। सूर्य नारायणने अपना प्रकाश दूसरे लोकमें कर दिया है। अन्धेरा होजाने और आबादीका पता न लगनेसे साधुजी नहरके पास मैदानमें पेड़के नीचे विश्राम करनेके लिए अपना डेरा डाल देते हैं। नहरसे हाथ मुँह धो कमण्डलु भर वृक्षके नीचे मृगचर्म बिछाकर अपने ध्यान-भजनमें बैठ गये हैं। निवृत्त होनेपर पानी पीकर मजेसे आसन पर गुदड़ीको अपने सिरका तकिया बना कम्बल ओढ़ नींद करने लगे।

प्रातःकाल हुआ। साधुजी उठे। प्रभु-प्रार्थना करनेके पश्चात् जंगलमें गये। आवश्यक नित्यकर्मोंसे निवृत होकर स्नान करके आसनपर पूर्वाभिमुख बैठ अग्निहोत्रके लिए

जमीन खोदी । एक छोटासा कुण्ड जमीनमें बनाया, लीप-कर जंगलसे लकड़ियां और सुगन्धित कतरन (खवी) उखाड़ लाये। प्रार्थना मंत्र उच्चारण करनेके पश्चात् प्रार्थना करने लगे:---

हे सकल जगत्के उत्पत्ति कर्त्ता ! समग्र ऐश्वर्य युक्त! शुद्ध स्वरूप ! सब सुखोंके दाता परमेश्वर ! सकलदुःख हर्त्ता, विघ्न विनाशक, सर्व सुखोंके भण्डार प्रभो! आज संवत्...,....मासकी....,....पक्षकी.....तिथि,....वार के इस प्रातःकालके सुन्दर समयमें मैं तेरा अबोध बालक इस यज्ञ की पवित्र वेदी पर तेरे पवित्र चरणोंमें तेरे वेदके अमृत पवित्र मंत्रों द्वारा इस नित्यकर्म यज्ञके नाते उपस्थित होता हूँ । हे दयानिधे प्रभो! तेरी दया बे अन्त है । तेरी दया बे अन्त है!! तेरी कृपा महान् है! तेरी कृपा महान् है कि तू हमें नित्यप्रति अपने पवित्र चरणोंका वास देकर हमारा उत्थान और कल्याण चाहता है । इस तेरी महती कृपाके लिए कोटानुकोटी धन्यवाद गाता हुआ तुझे बारम्बार नमस्कार करता हूँ और यही वरदान मांगता हूँ कि प्रभो! हमें सदैव तेरी पूजाका अधिकार रहे। अधिकार के साथ हममें सामर्थ्य और स्वतन्त्रता हो। पूर्ण श्रद्धा, अटल और अटूट विश्वास, ऐसी उत्कट इच्छा हो कि चाहे हम देशमें हों या परदेशमें, दुःखमें हों या सुखमें खुशहाली में हों या कंगालीमें कोई भी हाल या काल कैसाही क्यों न

हो, हम सदैव तेरा पूजन करते रहें। कभीभी तेरे नामसे विमुख और वंचित न हों तेरे नामका दान जो सबसे पवित्र और महान् है, वह हमें सदा मिलता रहे। हमारा श्वास-श्वास तेरे नामकी माला बन जावे और क्षण-क्षण हम तेरी सत्ताका भान करते रहें और तुझे ही एकमात्र जपते, भजते और नमते रहें"। इति शम्

इसके बाद हवन करना शुरु कर दिया और समिधा में अग्नि-प्रवेश किया।

पास वाली सड़कके किनरे सादा वेश पहिने, अपने बच्चोंको साथ लिए एक गृहस्थी सैर पर जाता हुआ गुजरा। उसके साथ एक युवक बालक और तीन अल्प-वयस्क बालक (५ से १२ सालकी उम्रके) थे। उनमेंसे सबसे छोटा बालक यज्ञमित्र अपने एक भाई संतरामसे कहता है कि देखो, फकीर आग जला रहा है, चलो आग सेकें। तीसरा भाई वियोगीराम-- जो बारह सालकी उम्र का है कहता है कि सैर करके वापिसी पर सेकना। पिता जी आगे जारहे हैं, उनसे पहले पूछ लेना चाहियें। बच्चे दौड़कर पिताजीसे जा मिले। कहने लगे एक फकीर आग जला रहा है। हम वहां जाकर आग सेकते हैं। हमको सर्दी लगी है। आप सैर करके तब तक वापिस आ जायेंगे। सबसे बड़ा लड़का (युवावस्था-प्राप्त) सूर्यप्रकाश बोला-- नहीं, नहीं सैर करके हमारे साथ चलना। आज-

कलके फकीरोंका कोई विश्वास नहीं। ये लुच्चे लफंगे होते हैं, चरस वगैरा पीते हैं। कहीं तुमको न पिला देवें ?

इनका पिता बड़ा समझदार और भक्त-स्वभाव का था। बोला-बेटा ! बात तो तुमने कही है, मगर बिना विचारे। क्या पता है कि यही फकीर कहीं गुदड़ीका लाल ही हो ? आखिर सच्चे फकीर भी तो इन्हीं में से मिलते हैं। कौन जाने किस भेषमें किसी भगवद्-भक्तसे भेंट हो जाय और हमारा बेड़ा पार हो जाय ?

सूर्यप्रकाश--नहीं पिताजी ! मेरा मतलब तो आज-कलके फकीरोंसे था। सब तो एक जैसे नहीं होते। इनको टालनेके लिये तो ऐसा कहना ही था और क्या जवाब देता ?

पिता--तुमने इतना कहनेमें तीन दोष किये। एक तो छोटे बच्चोंके अन्तःकरण पर यह बिठा दिया कि सब फकीर लुच्चे होते हैं। इनमें ऐसा संस्कार बैठ जायगा कि वे किसी साधुको भी अच्छा नहीं समझेंगे, न साधु सेवा करेंगे न कोई जीवन लाभ उठायेंगे। दूसरे, यथार्थ समझने की योग्यता न रखनेसे एक अपरिचित पर व्यर्थका दोष मढ़ दिया। तीसरा दखल दर माकूलात अर्थात् अनधिकार चेष्टा। जब इन्होंने मुझसे पूछा था तो मेरे जवाब देने तक इन्तजार तो कर लेते ? बेशक तुम बड़े हो, उनके पिता समान हो, न कि पिता। वह भी मेरी अनुपस्थिति

में । मेरी उपस्थितिमें तुमको भी इन्हें भाई का दर्जा देना चाहिये ।

सूर्यप्रकाश--पिताजी ! क्षमा कीजिए । नाराज न होइये । मैं वापसी पर आपको इस फकीरकी करतूत दिखा दूंगा । मैंने किसी फकीरको जब भी देखा, ऐसा ही पाया जैसा मैंने वर्णन किया है ।

पिता--मैं तो फिर भी यही कहूंगा "हर कि रा जामा पारसा बीनी, पारसा दान व नेक मर्द अंगार" अर्थात् जिस किसीको तू साधूके वेषमें देखे, उसे साधु जान और भला आदमी समझ, हां जब तुझे दोष मालूम हो जाय, उसे त्याग दे । अवगुण जाने बिना किसीके सम्बन्ध में जैसे तुमने कहा, ठीक नहीं किया ।

सैर करके वापिसी पर ये अभी इस साधुके स्थान से कुछ दूर ही थे कि सुगन्ध आने लगी । वियोगीराम बोला-"पिताजी ! यह तो सुगन्ध आ रही है ।" 'हां, हमें भी आ रही है"बाकी बच्चों ने कहा । ऐसी बातें करते-करते साधुके पास पहुंच गये । वह तो वेदमन्त्र बड़े मीठे स्वरसे उच्चारण कर रहा है । 'स्वाहा' पर वह कभी समिधा और कभी कतरनकी जड़ डाल देता है । ये सब जाकर बड़ी श्रद्धा से बैठ गये । जब साधु ने हवन-यज्ञ समाप्त किया और प्रार्थना प्रारम्भ की, ये भी आंख मूंद सुनने लगे :--

प्रार्थना

१ ओ३म् श्रद्धाँ मेधां यशः प्रज्ञाँ विद्याँ पुष्टिं श्रियं बलम् ।
तेजः आयुष्यमारोग्यं देहि मे हव्यवाहन ॥

२. ओ३म् अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
निर्धनाः सधना सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥

३. ओ३म् काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥

४. ओ३म् सर्वेपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

५. ओ३म् दातारो नोऽभिवर्धन्ताँ वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा वयगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥

६. ओ३म् अन्नंच नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मास्म याचिष्म कंचन ॥

---

(१) हे हृदय दर्पण ! मुझे श्रद्धा, मेधा (धारणावती बुद्धि) यश, प्रज्ञा (दानाई), विद्या, पुष्टि, श्री, (सब प्रकार की शोभा) बल, तेज, आयु और आरोग्यता प्रदान करो।

(२) हे हमारे ईश्वर ! हमारे देश में जो पुत्र रहित हैं, वे पुत्रों वाले हों और पुत्रों वाले पौत्रों वाले हों। निर्धन धनवान् हों और सौ वर्ष तक जीवें।

(३) समय पर मेघ बरसे और पृथिवी खेतियों से भरपूर

हे नाथ, सर्वाधार, सर्वोपरि, सत्-चित्-ग्रानन्द स्वरूप, निराकार निर्भय, अनूप, अजर, अमर, सृष्टि का कर्ता, दयालु, कृपालु, प्रतिपालक, मेरे प्रभो ! धन्य हो, हे दयामय ! यह सब कुछ तेरी ही दया से हुआ है, तेरी ही कृपा से हुआ है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। मैं स्वयं कुछ भी नहीं, तुच्छ भी नहीं। यह सब तेरे अर्पण है, तेरे अर्पण है। मुझे सदैवकाल इस शुभ मार्ग के ऊपर लगाये रक्खो। मैं तेरी हरेक वस्तुको तेरी देन समझूं और तेरी देनको तेरे अर्पण करने में कभी संकोच न करूं। हे प्रभो ! तू उदार है, मेरी आत्मा को उदार बनाओ। मुझ गरीब निराश्रयके आप ही आश्रय हो, मुझ निमाने (मानहीन) के आप मान हो, मुझ निताने

हो। यह देश क्षोभ से रहित हो (हमारे देश में कभी बेचैनी न हो) और ब्राह्मण निर्भय हों।

(४) सब ही सुखी हों। सब ही नीरोग हों। सब कल्याण और भद्र देखें। मत कोई दुःख को प्राप्त हो।

(५) हम में दाता बढ़ें, वेद पढ़ें और हमारी सन्तान बढ़े। श्रद्धा हममें से कभी दूर न हो और देनेके लिये बहुत कुछ हमारे पास हो।

(६) हमारे घरोंमें बहुत अन्न हो और हम अतिथियों को ढूंढते फिरें। हमारे पास से याचना करने वाले हों और हम किसीसे याचना न करें।

(तानहीन) की आप ही तान हो, मुझ निओट (ओट-हीन) की आप ही ओट हो। मुझ निरवलम्ब के आप ही अवलम्ब हो। मुझ निर्धनके धन आप हो। मैं अनपढ़ हूं, आपके नाम रूपी धनको चाहता हूं मुझे भरपूर करो। त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव--देव !

आपही मेरे सब कुछ हो। आश्रयदाता हो, पतित पावन हो, विश्वम्भर हो, रक्षक हो, सर्व रक्षक हो, सेवकों के तुम गुप्त रक्षक हो। व्रतपति हो, भक्त वत्सल हो। मैं गरीब असमर्थ तेरी शरणागत हूं। खरा हूं तो तेरा, खोटा हूं तो तेरा। असली हूं तो तेरा, नकली हूं तो तेरा। खरा हूं तो स्वीकार करो। खोटा हूं तो खरा बनाकर स्वीकार करो। स्वीकार करो, जरूर स्वीकार करो, असली हूं तो स्वीकार करो, नकली हूं तो असली बनाकर स्वीकार करो परन्तु पिता ! अवश्यमेव स्वीकार करो। मेरा बेड़ा पार करो। मेरा उद्धार और संवार करो। मेरा आप पर कोई ज़ोर नहीं। कोई मेरा पुण्य नहीं, प्रताप नहीं, कोई दान नहीं, कोई अधिकार नहीं। केवल तेरा तर्स ! तेरा तर्स ! तेरी दया ! तेरी दया !! मैं माँगता हूं पिता ! तुझसे तेरी कृपा, तेरी कृपा। मैं छोड़ता हूं अपने आपको तेरी दया के ऊपर। तेरी दया ! तेरी दया ?! तेरी दया !!! मेरे जीवनको आदर्श जीवन बनाओ, निष्कलंक जीवन

बनाओ पाप कमजोरियोंसे रहित करो। कुचेष्टा, कुसंस्कार दूर बसें। दुर्वासनाओंको दग्ध करो। अपने नामका ध्यान दो, अपनी भक्तिका दान दो, अपनी पूजाका अधिकार दो अपनी जन-सेवाका अधिकार दो, मुझे संसार के हर प्रकारके ऋणसे उऋण करो। मुझे सद्बुद्धि और सुमति प्रदान करो जिससे मैं शुद्ध अन्तःकरणसे कह सकूं—तेरी इच्छा पूर्ण हो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ? मैं अपने आपको तेरी इच्छाके आधीन कर दूं। मेरी इच्छा इच्छा न रहे। तेरी दिव्य इच्छाको बरतूं। अपनी इच्छाको इच्छा न समझूं। तू ही मेरा सच्चा गुरु और आचार्य है जो तुद भावे सोई भलीकार, तू सदा सलामत निरंकार'। मुझे तेरी कृपा दरकार।

मैं तेरी इच्छाको ही तेरी कृपा समझूं। मुझे अपना साक्षात् कराओ। प्रभो ! अपना साक्षात् कराओ। लाज रक्खो और मिन्नत लगाओ। मुझे अपना साक्षात् कराओ लाज रक्खो और मिन्नत लगाओ। मुझे अपना साक्षात् कराओ (कुछ मिनट चुप-ज्योति का ध्यान)

मुझ गरीब निराश्रयसे तूने अपने आश्रयके ऊपर मुझे निर्बलसे तूने अपने बलके ऊपर जन्मसे अद्यपर्यन्त (आज तक) पथ-प्रदर्शन करके नाना प्रकारकी प्रतिज्ञाये ली हैं। मैं असमर्थ हूं, तेरी चरण-शरण में आता हूं, शीश झुकाता हूं (शीश झुकाया) तू ब्रतपति है, मैं अपूर्ण हूं

तू परिपूर्ण है, मेरे व्रतों की रक्षा करो मेरी प्रतिज्ञाओंको पूर्ण करो। मुझे अपना पूर्ण विश्वास दो--अटलविश्वास दो मेरी आत्माको पूर्ण संतुष्टि दो। मैं तुझे जानूं मानूं। तुझसे माँगू तुझसे पाऊं। तेरे सिवाय किसी औरको अपना उपास्य देव न ठहराऊं। जब जब भी मेरी शुभ कामना हो, तुझसे ही पूर्ण कराऊं किसी औरके आगे हाथ न फैलाऊं एक मात्र तुझे ही अपना आश्रय बनाऊं--ओं भूर्भुवःस्वः प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुयानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम।

हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! मेरे मन, मेरी वाणी और मेरे कर्मके अन्दर एकता प्रदान करो, ! एकता प्रदान करो !

ओं तेजोऽसि तेजोमयि धेहि वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि।

(हर एक वाक्यसे जलको हाथसे लगा अग्निसे तपाकर मुंह पर लगाया)।

ओं असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।

मुझे असत्से सत्की ओर ले जाओ, अन्धकारसे अपने प्रकाशमें पहुंचाओ। मुझे मृत्युके दुःख संताप से बचाओ और अपनी अमृत गोद में बिठाओ! मुझे मृत्युके दुःखसंतापसे बचाओ और अपनी अमृत गोदमें बिठाओ!! मुझे मृत्युके दुःखसंताप से बचाओ और अपनी अमृत गोद में बिठाओ!!! नाथ यही एक याचना है, स्वीकार करो और हमारा बेड़ा पार करो। इति शम्। इतनी प्रार्थनाके बाद आँख खोली और ताली बजाकर भजन गाने लग गये।

भजन

हे जगत् स्वामी! प्रभु जी! भेंट करूँ क्या मैं तेरी?
माल नहीं मेरे संपत नाहीं, जिसको कहूं मैं मेरी।
इस जगमें हम ऐसे विचरें, जोगी करे ज्यों फेरी ॥१॥ हे जगत्
धन जन जोबन अपना माने, मूर्ख भूला भारी।
तुझ बिन और सहाई न मेरा, देखलिया मैं विचारी ॥२॥
यह तन यह मन होवे न अपना, है सब माल तुम्हारा।
जब चाहें तब ही ले लेवें, नहीं कुछ जोर हमारा ॥३॥
तुम्हारे ही दर का मैं कूकर स्वामी, लाज तुम्हें है मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, देवो भक्ति बिन देरी ॥४॥
हे जगत् स्वामी! प्रभुजी! भेंट करूँ क्या मैं तेरी?

साधुने अपना कार्य समाप्त किया। ये सबके सब बच्चे और इनके पिता बात करने के लिये उत्सुक थे। यज्ञमित्र

बोल उठा महात्मा जी! आपने तो बहुत देर लगादी है। हमारे घर में तो बहुत देर नहीं लगती।

महात्मा--तुम अभी बच्चे हो। जब बड़े होगे तो तुम इससे भी ज्यादा देर लगाया करोगे।

सन्तराम--घी तो था नहीं। आपने सिर्फ पानी से हाथ लगा लगा कर और अग्नि पर तपाकर मुँह पर क्यों लगाया ? हम तो घी से लगाया करते हैं।

महात्मा--तुम साहुकार ठहरे। हम गरीब हुए। तुम्हारा घी हमारा पानी।

वियोगी राम–महात्मा जी ! आपका भजन मुझे बहुत भाया है क्या आप मुझे लिखा देंगे ?

सूर्यप्रकाश–महात्मा जी ! आपने संतराम की बात का जवाब नहीं दिया है। मजाक में टाल दिया है। नाम मात्र की कार्यवाही अच्छी नहीं। यह लोगों को धोखा देना है। न सामग्री आपके पास है, न घी। ऐसा लकड़ियों से हवन कर लेना कोई हवन नहीं कहलाता और अगर सामर्थ्य नहीं है तो व्यर्थ ऐसा करने की क्या जरूरत है ? मैं तो वैसे भी जरूरत नहीं समझता, धन संपत्ति और समय को नष्ट करना है।

पिता–[हाथ जोड़कर] महाराज ! क्षमा करेंगे। आप का बहुमूल्य समय बच्चे नष्ट कर रहे हैं। आप कृपा करके इस सेवक के गृह पर चलें। वहाँ रहें,हम भी लाभ उठावेंगे।

आप जंगल में कष्ट न उठावें। यहाँ न भोजन आ सकेगा, न आराम रहेगा।

महात्मा–आप तो कोई भक्त मालूम होते हैं। आप में श्रद्धा है। ईश्वर आपको अधिक बल और श्रद्धा प्रदान करें। कोई समय नष्ट नहीं हुआ। हरएक प्राणी अपनी प्रकृतिके अनुकूल बोलता, खाता-पीता और चलता है। भोजन और आराम अदृष्ट भोग हैं।

भक्त–श्रीमान् जी ! क्या आप संन्यासी हैं ?

महात्मा–नहीं, संन्यासी अग्निका हवन नहीं करते। इससे ऊपर होते हैं।

भक्त–तो क्या आप गृहस्थी हैं ?

महात्मा–नहीं बीच का मेल। मध्यम दर्जा।

भक्त–अच्छा, आप वानप्रस्थी हैं। विनय है–आप कृपा करके हमारे गृहको चलकर पवित्र करें। थोड़ी दूर पर है। आपकी कृपा से हम तथा और दूसरे लोगोंको भी लाभ हो सकेगा।

महात्मा–अच्छा अब आप जायें। हम अब तो इस जंगलमें नदीकी मौज-बहार लेते हैं। शामको देखा जायेगा, जैसा भाग्य होगा।

वे सब नमस्ते कह कर चल दिये। रास्तेमें भक्तजी ने प्रकाशको समझाया वह समझनेमें ही नहीं आया। तर्क-वितर्क करता गया। घर पहुंच गये। जब भोजन तैयार

होगया तो भक्तजीने दिलमें ख्याल किया कि सूर्यप्रकाशको भोजन देकर महात्माजीके पास भेजूं सम्भव है अकेला होकर उनसे अपने संशय मिटा सके (उधर महात्माजी इनके चले जानेके बाद फिर हाथ मुंह धो आचमन करके प्रभुसे प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभो ! इस नये जमानेमें नई रोशनीने भारतके नौनिहालोंके दिलोंके ऊपर पत्थरकी शिला रख दी है इसे उठा इनको सन्मार्ग पर लगा यही भारतमाताके सच्चे सुपुत्र जब तक न बनेंगे तो हम कैसे जिन्दा रहेंगे ? प्रभो इनको अपने यज्ञरूपका दर्शन कराओ इनके जीवनको वज्रमय बनाओ) ।

भक्त–बेटा प्रकाश ? क्या तुम महात्माका भोजन ले जाओगे और खिला आओगे ।

सूर्यप्रकाश–जैसी आज्ञा हो ।

भक्त–तुम्हें आपत्ति तो नहीं ?

सूर्यप्रकाश–मैं जाकर उनसे बहस तो करूंगा । आपको इसमें कोई आपत्ति तो नहीं ?

भक्त–(दिलमें, काम बन गया) बस इतना ख्याल रखना कि उनका निरादर न हो और तुम सच्ची भावनासे अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिये वार्तालाप करो ? अपने जय पराजय का ख्याल न रखना, न ही अपने ज्ञानकी डींग मारना।

सूर्यप्रकाश भोजनको उठा थोड़ी देरमें महात्माजीके पास पहुंच गया । नमस्ते कह कर भोजन आगे रख दिया ।

महात्माजीने बड़े प्रेमसे भोजन खाया और आशीर्वाद दी।

सूर्यप्रकाश—क्या मैं आपसे कोई वार्तालाप कर सकता हूं ?

महात्मा--बड़े शौकसे ?

सूर्यप्रकाश--क्या मामूलीसे हवन यज्ञका प्रकृतिके यज्ञके मुकाबले में क्या असर है ?

महात्मा--यज्ञोंका असर इस प्रकृति पर क्या होता है और आत्मा पर क्या होता है ? यज्ञका अंग-अंग किस तरह पर ब्रह्माण्डके अंग-अंगकी निशानी है ? इत्यादि भेद जो यज्ञ विद्याके साथ सम्बन्ध रखते हैं--जब ये खुल जायेंगे, आपके सारे सन्देह निवृत हो जायेंगे, और तो कठिनाइयाँ बहुत कुछ दूर हो सकेंगी, पर यह सफलता भी बड़े निपुण विद्वानोंको बड़े परिश्रमके साथ प्राप्त होगी।

बाह्य लाभ और आन्तरिक लाभः--

सूर्य प्रकाश--यज्ञ विद्याको जो न जानता हो उसके लिये तो फिर व्यर्थ है।

महात्मा--ऐसा नहीं। हर एक चीज़के दो पहलू होते हैं बाह्य और आन्तरिक'। जैसे तुम्हारे बाहर शरीर है और अन्दर आत्मा है, मन है। बाहरका असर तो तुरन्त होता है। चाहे ज्ञानसे करे या अज्ञानसे, मगर आन्तरिक लाभ बिना ज्ञानके नहीं होता। ज्ञानके लिये मनुष्यमें दो चीजें चाहियें-एक तो श्रद्धा जिज्ञासा, दूसरी उतनी बुद्धि।

सूर्यप्रकाश--मुझे आपकी दोनों चीज़ोंका पता नहीं। आप ही कह दें। बुद्धिसे आपका क्या मतलब है ?

महात्मा–जितना पात्र होता है और जैसा पात्र होता है उसमें वैसी ही चीज़ और उतनी ही समा सकती है। अब तुम स्वयं अनुमान करो कि तुम्हारा जो छोटा भाई था अगर उसे विज्ञानकी कोई बात बतलाई जावे, क्या वह समझ सकेगा ?

सूर्यप्रकाश–नहीं, बिल्कुल नहीं, तो क्या यज्ञःविद्या विज्ञानसे सम्बन्ध रखती है ?

महात्मा–हां, यह विद्या विज्ञानसे क्या, बल्कि दर्शन-शास्त्रसे, न्यायसे, गणितसे, ज्योतिषसे और वैद्यकसे भी सम्बन्ध रखती है।

सूर्यप्रकाश--तब तो मेरे जानने के योग्य और आवश्यक हुई।

महात्मा--क्यों कर ? तुम तो अभी बच्चे हो।

सूर्यप्रकाश--महाराज ! मैं ईश्वरकी कृपासे बी.एस.सी. हूं एम. ए. में पढ़ता हूं। श्री पिताजीकी शिक्षा और आज्ञा अनुसार उनके प्रतापसे मैं अभी तक तो सादा रहता हूं। इसलिये जैसे मैंने आपके वेशमें आपको ऐरा-गैरा साधु जानकर भूल की, ऐसे आपको भी मेरे पहिरावे और चाल-ढालसे धोखा हुआ।

महात्मा–तब तो फिर ये बातें तुम्हारे प्रश्न करने

पर तुम्हारे पिताजी को पसन्द आएँगी । पढ़े-लिखे आदमियों को तो ज्यादा लाभ हो सकता है । आप सबको इकट्ठे लाभ लेना चाहिये ।

सूर्यप्रकाश–बहुत अच्छा महाराज ! हम शाम को आवेंगे । क्या आप समय प्रदान करने की कृपा करेंगे

महात्मा–मेरे सिर आंखों आइये । जो कुछ जानता हूं और जितना जानता हूँ, जब पूछोगे, बता दूँगा ।

॥ ओ३म् ॥

दूसरी झांकी

जग यज्ञ है और यज्ञ मुक्ति का साधन

शाम क्या आई ? अन्धेरे में प्रकाश का शीतल और शान्त कर देने वाला दीपक लाई । अश्रद्धालुओं में श्रद्धा और बे-लगामों की लगाम बनकर आई । महात्मा उसी प्रकार सायंकाल का हवन कर रहे हैं और प्रेमी जन आ पधारे । सुबह के इच्छुक और कुछ नये सज्जन भी आ गये । हवन संध्या और प्रार्थना की समाप्ति पर लोगों को सम्बोधित करके कहा कि भद्र पुरुषो ! मनुष्य तो जन्म से ही कई ऋणों से बंधा हुआ है । परमात्मन् देव ने ऋणों से मुक्त होने के लिए मनुष्य का शरीर दिया

सूर्यप्रकाश--मुझे आपकी दोनों चीज़ोंका पता नहीं। आप ही कह दें। बुद्धिसे आपका क्या मतलब है ?

महात्मा–जितना पात्र होता है और जैसा पात्र होता है उसमें वैसी ही चीज़ और उतनी ही समा सकती है। अब तुम स्वयं अनुमान करो कि तुम्हारा जो छोटा भाई था अगर उसे विज्ञानकी कोई बात बतलाई जावे, क्या वह समझ सकेगा ?

सूर्यप्रकाश–नहीं, बिल्कुल नहीं, तो क्या यज्ञ:विद्या विज्ञानसे सम्बन्ध रखती है ?

महात्मा–हां, यह विद्या विज्ञानसे क्या, बल्कि दर्शन-शास्त्रसे, न्यायसे, गणितसे, ज्योतिषसे और वैद्यकसे भी सम्बन्ध रखती है।

सूर्यप्रकाश--तब तो मेरे जानने के योग्य और आवश्यक हुई।

महात्मा--क्यों कर ? तुम तो अभी बच्चे हो।

सूर्यप्रकाश--महाराज ! मैं ईश्वरकी कृपासे बी.एस.सी. हूं एम. ए. में पढ़ता हूं। श्री पिताजीकी शिक्षा और आज्ञा अनुसार उनके प्रतापसे मैं अभी तक तो सादा रहता हूं। इसलिये जैसे मैंने आपके वेशमें आपको ऐरा-गैरा साधु जानकर भूल की, ऐसे आपको भी मेरे पहिरावे और चाल-ढालसे धोखा हुआ।

महात्मा–तब तो फिर ये बातें तुम्हारे प्रश्न करते

पर तुम्हारे पिताजी को पसन्द आएँगी । पढ़े-लि
आदमियों को तो ज्यादा लाभ हो सकता है । आप सबक
इकट्ठे लाभ लेना चाहिये ।

सूर्यप्रकाश—बहुत अच्छा महाराज ! हम शाम क
आवेंगे । क्या आप समय प्रदान करने की कृपा करेंगे

महात्मा—मेरे सिर आंखों आइये । जो कुछ जानत
हूं और जितना जानता हूँ, जब पूछोगे, बता दूँगा ।

॥ ओ३म् ॥

दूसरी झांकी

जग यज्ञ है और यज्ञ मुक्ति का साधन

शाम क्या आई ? अन्धेरे में प्रकाश का शीतल औ
शान्त कर देने वाला दीपक लाई । अश्रद्धालुओं में श्रद्ध
और बे-लगामों की लगाम बनकर आई । महात्मा उसी
प्रकार सायंकाल का हवन कर रहे हैं और प्रेमी जन आ
पधारे । सुबह के इच्छुक और कुछ नये सज्जन भी आ
गये । हवन संध्या और प्रार्थना की समाप्ति पर लोगों
को सम्बोधित करके कहा कि भद्र पुरुषो ! मनुष्य तो
जन्म से ही कई ऋणों से बंधा हुआ है । परमात्मन् देव
ने ऋणों से मुक्त होने के लिए मनुष्य का शरीर दिया

। बाकी जितने शरीरधारी जीव हैं वे असहाय हैं सब
शरीरों की रचना टेढ़ी है । एक मनुष्य ही है जिसको
सीधा बनाया है । दूसरा वृक्ष है जो सीधा तो है किन्तु
उसका सिर नीचे गढ़ा है । मनुष्य का सिर ऊपर है । सिर
वह स्थान है जिसमें बुद्धि रहती है ।

बन्धन से मुक्त होने का साधन

प्रभु की कृपा का पात्र मनुष्य ही है जो अपनी बुद्धि
प्रभु की आज्ञा के अनुकूल व्यवहार करके अपने ऋण से
ऋण हो सकता है । ऋण एक ऐसा रोग है जो मनुष्य
को सुखा देता है लोकोक्ति है । 'लोके हि निर्धनी दुःखी
ऋणग्रस्तोऽधिको दुःखी ।' सँसार में निर्धन दुःखी होता है
किन्तु उससे भी अधिक दुःखी वह है जिस पर ऋण है ।

मामूली आदमी का ऋण साधारण तरीके से प्राप्त
होता है, प्रबल साहूकार का ऋण मनुष्य का घर बार कुर्क-
नीलाम करा देता है, घर से बेघर-बेदर कर देता है ।
सरकार का ऋण अति दुःखदायी होता है । किन्तु प्रभू
और प्रभु के देवताओं का ऋण सब कुछ नष्ट कर देता
है, अगर न उतारा जाय ।

तीन लोक तीन यज्ञ तीन शरीर तीन ऋण

मनुष्य ने संसार के तीन लोकों को भोगने के लिए
ही तीन शरीर पाये हैं, इन्हीं के कारण वह तीन प्रकार

से ऋणी है । पृथ्वी, अन्तरिक्ष, देवलोक-इनमें जो कुछ भी है वह सब मनुष्य के लिए है ।

पृथ्वी की पैदावार या यूं समझो कि पृथ्वी के पुत्रों या इसकी सन्तान से ही अपना शरीर बनाया और इसका पालन-पोषण करता है और शरीर से धन-माल सम्पत्ति, यश आदि इकट्ठा करता है । इसे पितृऋण कहते हैं । यह कर्ज तब उतरेगा जब वह स्थूल शरीर से भूलोक पर रहने वाले प्राणियों को सुख पहुंचायेगा या उनको सुख पहुंचाने के लिये श्रेष्ठ संतान पैदा करके उनके अर्पण कर जाएगा । इसके लिये आधिभौतिक यज्ञ चाहिये ।

दूसरा लोक है अन्तरिक्ष । इस लोक में सब देवताओं का वास है । वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि इनका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से है । मन, अन्तःकरण प्राण आदि की इन्हीं द्वारा स्थिरता है । मनुष्यों को जगत् की प्राकृतिक अग्नि आदि शक्तियों से तथा साथी मनुष्यों की निःस्वार्थ सेवाओं से जो सुख लगातार मिल रहा है देवऋण कहलाता है। इस ऋणको उतारनेके लिये, इन यज्ञ चक्रों को जारी रखनेके निमित्तसे आधिदैविक यज्ञ कर्म करना भी आवश्यक है, इसे देवपूजा कहते हैं ।

तीसरा लोक देवलोक है । यह ज्ञानका लोक है । इससे मनुष्यको ज्ञान, आनन्द आदि परम लाभ हो रहा है । इसका नाम ऋषि-ऋण है और कारण शरीरसे

सम्बन्ध रखता है, इसकी भी सन्तति जारी रखनेके लिए स्वयं विद्या का स्वाध्याय और उपदेश कर या पढ़ा करके उऋण होना चाहिये।

उऋण होना ही मुक्त होना है--

मनुष्य तो सर्वदा ऋणोंसे लदा हुआ है। जो जीव इस त्रिविध शरीरको पाकर भी अपनेको ऋण-बद्ध नहीं अनुभव करता, वह महा अज्ञानी है। इसलिये हम अपनी सब शक्ति और सब यत्न इन ऋणों को उतारनेमें ही व्यय करते हुए जीवन बितावें।

भक्त–हम तो समझते हैं कि प्रभुने नव जीवको शरीर दिया इसके भोगके लिये भी खुद ही प्रबन्ध करना उसका काम है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और संसारके सब खाद्य पदार्थ शरीरके धारणके लिये बनाये। जब यह उसका अपना प्रबन्ध है तो हम पर ऋण क्यों? माता पुत्रको पैदा करती है। इसका पालन पोषण भी इसके लिये अनिवार्य हो जाता है। इसीलिये हमारे पैदा होनेसे पूर्व प्रभु इसका भोग माताके स्तनमें संचय कर देता है।

महात्मा–"ऋण" शब्दका अर्थ है "फिरदूंगा, ऐसे मानकर ग्रहण किया धन।"

भक्त–कोई मनुष्यका बच्चा माताका दूध ऐसा मानकर ग्रहण नहीं करता कि वापिस दूंगा, न ही उसे

समझ होती है। कोई आदमी हवा, पानी प्रकाश यह भावना करके नहीं लेता कि मुझे कुछ देना होगा। न ही माता पितासे अन्न, वस्त्र पैसे इस भावको रखकर लेता है कि वापिस कर दूंगा। हां संसारके व्यवहारसे तो जो किसीसे उधार मांग कर लेता है तो उसे दिलसे यह निश्चय होता है कि मैंनें देना है, न दूंगा तो वह जबर्दस्ती वसूल कर लेगा। हमारी समझमें तो यह बात नहीं बैठती।

महात्मा—सुनो ! ऋण दो प्रकारका होता है। एक वह जो मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को स्वयं अनुभव करके अपने पास न होनेंके कारण दूसरेसें मांगता है, हाथ फैलाता है (नैमित्तिक ऋण) दूसरा ऋण वह है जो स्वाभाविक है। स्वभाव सिद्ध जन्मके साथ साथ बन्धा हुआ है बल्कि उसनें शरीरको बाँधा हुआ है। जब तक जीव जन्म लेता है [illegible] न्म लेता है। जब उऋण हो जाता [illegible] ा पीछा छोड़ देता है।

हमारा जीवन है कि अधमरण

ऋणका नाम अर्धमरण है। मनुष्य जीवित तब कहलाता है जब मरणसे रहित हो जाए अमर हो जाय। यह जीना इसका अर्धमरण के बराबर है। यह विषय सूक्ष्म है। जरा गहरी नजरसे देखने और विचारनेका काम है।

मैंने पहले कहा है कि जो अपने आपको तीन प्रकारका शरीर पाकर भी ऋणबद्ध नहीं अनुभव करता वह महा अज्ञानी है। यह विषय अनुभव करनेका है। केवल सुनने सुनानेका काम नहीं, जरा विचारो तो सही अगर बच्चेको दूध न मिले तो क्या करेगा ?

यज्ञमित्र--वह चिल्लायेगा, रोवेगा ?

महात्मा--क्यों ? इसलियेकि मां उसे दूध देवे। यही चिल्लाना उसका मांगना है। अगर मां रोने चिल्लाने पर भी न देवे तो बच्चा चीख-चीख कर मर जाएगा। जो जिसको धारण करता है, जीवित रखता है वह उपकारक कहलाता है। और जिस चीजसे जीवित रखता है वह चीज धन कहलाती है और लेने और देनेका नाम निःस्वार्थ ऋण (कर्ज हसना) कहलाता है। निःस्वार्थ ऋण वह प्रसाद (बरकत है) जो आवश्यकता वालेको उसकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए लाभ या ब्याजकी इच्छाके बिना मित्र, या सहायकके रूपमें दिया जाता है। पर इसका यह मतलब नहीं होता कि वह मूलधनको भी निगल जाय। ऐसा निगलनें वाला कृतघ्न कहलाता है। ऋणको चुकानाही कृतघ्नताके दोषसे मुक्त होना है।

बच्चा छोटा है, असमर्थ है। अब वह बढ़ने लगा। किन चीजोंसे बढ़ा ? अन्न, जल, वायु, पृथ्वी, की पैदावार खाकर, उसे अग्नि पर पका कर। अब बढ़कर शरीर

से कमाने लगा। सूर्यकी रोशनीसे महल बनाया आरामके लिए घोड़ा गाड़ी, नौकर चाकर रक्खे, अपने सुखके लिए। किन्तु उसके आराम और सुखका हेतु उसकी कमाई और कमाईका साधन शरीर और शरीर को बढ़ाने वाले प्राकृतिक देवही हैं। वे उसके उपकारी हुए। अपने उपकारोंके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना उसका ऋण उतारना है और उपेक्षा करना कृतघ्न बनना और ऋणी होना है। जनताके लिए कुछ आत्मबलिदान किया, अच्छी सन्तान पैदा कर दी, तो पिताका ऋण चुक गया वायु-जल शुद्ध कर दिए तो देव-ऋण चुक गया किसीको पढ़ा दिया या उपदेश कर दिया तो ऋषि-ऋण चुक गया। इसीका नाम यज्ञ चक्र है।

सूर्य प्रकाश-इसका नाम यज्ञ कैसे होगया ?

महात्मा--मनुष्यका शरीर कर्म करने और भोग-भोगने के लिए बना है। बिना कर्म किए और भोग-भोगे यह रह नहीं सकता। इसलिए जिस कर्मसे ब्रह्माण्डकी रक्षा वा स्थिति हो और सृष्टिक्रम जारी रहे अथवा जो भोग केवल इसी प्रयोजनसे किया जायकि जिसके द्वारा शरीर ऐसा कर्म कर सके जो कर्म ब्राह्माण्डकी रक्षा वा स्थिति के निमित्त और सृष्टिक्रमके जारी रखनेके लिए हो वह यज्ञ है।

उदाहरणार्थ--तुमको तुम्हारे माता पिताने पैदा किया

और उनको उनके माता पिताने । अब तुम भी अगर पुत्र पैदा करोगे तो तुम्हारे कुलकी स्थिति और वृद्धि जारी रहेगी । तुम्हारा वंश ब्रह्माण्डका एक अंश है ।

जल वायुने तुम्हारे शरीरको पवित्र किया । तुम्हारा स्वास्थ्य बना रहा । तुमने भी सुगन्धित पदार्थोंसे वायु में सुगन्धि फैला दी । वह दूसरोंके लिए स्वास्थ्य-सम्पादन करने वाली बनी । सृष्टिक्रम जारी रहा । तुमने किसी गुरुसे पढ़ा या उपदेश लिया, तुम्हें यथार्थ मार्ग मिल गया ।

तुम्हारे गुरुने किसीसे पढ़ा था । अब तुम भी औरों को पढ़ा दोगे तो परम्परा जारी रही । कर्त्तव्यका पालन ही यज्ञ कहलाता है ।

सूर्यप्रकाश--सन्तानको पैदा करना और बढ़ाना तो निःसंदेह परम्पराको कायम रखना है परन्तु वायु जल की समझ नहीं आई । वह तो प्राकृतिक शासनके आधीन है । प्रभु स्वयमेव सृष्टिके आदिसे अन्त तक इसे कायम रखते हैं । मनुष्यका क्या काम ?

महात्मा--रेलगाड़ीमें तुम बैठे हो । वह कमरा साफ था जिसे रेलवेके कर्मचारियोंने किया । अब यात्री बैठे हुए थूक बलगम डाल रहे हैं । सिग्रेट पी-पी कर हवा खराब कर रहे हैं । गन्ना चूस-चूस कर छिलका वहाँ अन्दर डाल रहे हैं । कमरा खराब होगया, मलिन हो

गया। बैठने वालोंको अथवा नये यात्रियोंको, दूसरे स्टेशनसे चढ़ने वालोंको कैसी घृणा और अरुचि होती है। इसकी जिम्मेवार सरकार तो नहीं। लोगोंने आप खराब किया जिससे दूसरे भाइयोंको कष्ट पहुंचा। किसीको कष्ट पहुंचाना पाप (अयज्ञ) और सुख पहुंचाना धर्म (यज्ञ) है। यदि वे आदमी थूक बलगम खिड़कीसे बाहर फेंकते, सिगरेट न पीते, थोड़े वक्त के लिए जितनी उनकी यात्रा थी [थी तो सीमित और निश्चित] संयम कर लेते और गन्ना चूसने वाले गन्ना भी चूसते किन्तु बुद्धिमत्तासे छिलके बाहर फेंकते जाते, बेपरवाही न करते तो यह कार्य उनका रेलवे वालोंके साथ साहयता करने का था।

ऐसे ही प्रभु-देवका सूर्य प्रकाश कर रहा है। जल निर्मल बह रहा है। पवन शुद्ध चल रही है, मेरे और सब दूसरे प्राणियोंके उपकारके लिए। परन्तु प्रातः उठतेही मैंने थूक-बलगम पृथ्वी पर डाला। मल-मूत्रका विसर्जन किया। इसकी दुर्गन्धसे मैं तो अपनी नाक भी बन्द कर लेता हूं पर अन्तरिक्ष की वायुमें फैल जानेसे दूसरे प्राणियोंका ख्यालही नहीं करता कि इनको भी दुर्गन्ध आयेगी या उन पर असर होगा कि नहीं। निर्मल जलसे हाथ-पानी (शौच) करता, कुल्ला दातुन करके जलको अपवित्र अशुद्ध, मैला बनाता हूँ। मुझे स्वयं तो अपने निकाले कफ

से घृणा आ रही है, क्या दूसरोंको न आयेगी ? मतलब यह है कि मनुष्य जितना मैल, गन्द, मूत्र, व मल शरीरसे बाहर निकाल कर पृथ्वी या आन्तरिक्षकी वायुको खराब करनेका कारण बनता है उतनाही उनको सुगन्ध द्वारा प्रतिकारके तौर पर शुद्ध कर देना आवश्यक है। प्रभु की चीज तो शुद्ध है। मगर हमारे कुत्सित कर्मसे वह मलिन होकर दूसरे प्राणियोंका अहित करती है। इसलिये पापका भागी बन जाता है।

मेरे जीवन यज्ञका भरण पोषण करने वाली यह सब दिव्य शक्तियां हैं, इसलिए मुझे सचेत और सावधान रहना चाहिये कि कहीं यह विश्वकर्माका विस्तृत किया हुआ पवित्र यज्ञ मेरे किसी कर्मसे भ्रष्ट न हो जाय। बल्कि मेरे सब काम प्रभुके चलाए नियमके अनुकूल होकर प्राणी मात्रके लिए सुखदायक हों। यद्यपि आपके प्रातःकालके प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया गया, समय बहुत हो गया, इसलिये फिर आपको बतायेंगे।

भक्त—कृपा करके आप हमारे निकट चल कर रहें। वहाँ प्रातः व सायं हम यज्ञके विषयमें अपनी शंकायें मिटा सकेंगे।

सूर्य प्रकाश—कृपा करके मुझे वैज्ञानिक ढंगसे मनवाइए।

महात्मा—सर्वसाधारण जनताको साधारण रीतिसे उपदेश देना, समझाना उचित होता है। विज्ञानकी बातें उनको शुष्क प्रतीत होंगी। हां, जब सिर्फ आप लोग विज्ञानके समझने वाले उपस्थित होंगे तो आपको वैसे बतलाऊँगा।

सबने ऐसा स्वीकार किया और उनको अपने साथ गांवमें ले गये। वहां उनको एकान्त स्थान दे दिया और भक्तने प्रार्थना की कि कल प्रातः का यज्ञ उनके गृह पर किया जाय और वहां ही उपदेश हो। महात्माने 'हरि इच्छा' कह कर सबको विदा किया।

o o o

तीसरी झाँकी

यज्ञ का स्वरूप

आज प्रातःकाल के लिए भक्त जी ने अपने गृह को शुद्ध पवित्र बना यज्ञ की वेदी लगा दी। यज्ञपात्र व घृत सामग्री, समिधा एकत्र कर, उत्तम २ आसन बिछा आए सज्जनों स्त्री पुरुषोंका यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक स्थान बनाया। वियोगी राम महात्मा जी को बुला लाया। फिर भक्तजी ने आज्ञा मांगी कि कैसे बैठें ? महात्मा जी ने कहा कि भक्त जी और इनकी धर्मपत्नी पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख होकर बैठें और खुद इनके सामने पूर्व दिशा में

पश्चिम मुख बैठ गये। सब बच्चों को उत्तर दक्षिण दिशाओं में पास-पास बिठाकर प्रारम्भिक निर्देश देने लगे-

भावना--देखो ! यज्ञ विष्णु का स्वरूप है। विष्णु व्यापक है-"यज्ञो वै विष्णु" ऐसी पवित्र वेदी के ऊपर मानलो कि हम अब ईश्वर के दरबार में बैठे हैं और परमात्मा हमारे साक्षी हैं, हमारे यज्ञ में सम्मिलित हैं। ऐसी दृढ़ भावना रखते हुए, बड़ी श्रद्धा और प्रेमभाव से इस कार्य को करें और इन नियमों का सावधानी से पालन करें।

नियम--(१) जहां कोई बैठ गया है अपने आसन को ग्रहण करके फिर उठक-बैठक न करे। धैर्यके साथ और सभ्यता पूर्वक बैठा रहे। (२) आलस्य प्रमाद का त्याग करे। थूक, बलगम डालने से बचे। चुटकी बजाने, अँगड़ाई और जंभाई लेने में बड़ी सावधानी करे। जैसे शिष्य अपने गुरु के सामने या विद्यार्थी अपने मास्टर के सामने और प्रजा राजा के दरबार में शिष्टाचार का ध्यान रखकर असभ्य चेष्टा से बाज रहती है ऐसे ही इस पवित्र वेदी के ऐसे पवित्र कार्य में सावधान रहे। (३) जब भी प्रार्थना शुरू होने लगे अपने मन को तैयार कर लेवे और ऐसी प्रसन्नता अन्दर पैदा करे कि अब मुझे अमूल्य ज्योति से सम्बन्ध जोड़ना है। (४) नित्यकर्म के अन्दर तो सब उपस्थित सज्जन मिलकर प्रार्थना के मन्त्र बोलते हैं किन्तु

बड़े यज्ञों और संस्कारों के अन्दर जहां विधिपूर्वक यजमान, पुरोहित और ऋत्विजों का वरण किया गया हो तब केवल एक ही विद्वान और यज्ञविधि का ज्ञाता मन्त्रों का उच्चारण करे और बाकी सब सम्मिलित सज्जन चित्त को एकाग्र करके परमात्मा में ध्यान लगावें और मंत्रों और अर्थसहित प्रार्थना को पूरे ध्यान और चिन्तन के साथ सुनें। (५) यज्ञके आरम्भ से समाप्ति काल तक कोई भी सज्जन यज्ञ सम्बन्धी बात के अतिरिक्त और कोई किसी प्रकार की बात न करे। (६) यजमान और अन्य कर्मचारी अपनी इच्छा से जल्दबाजी करके कोई क्रिया करने न लग पड़ें। जिसे उन्होंने उपयुक्त पदाधिकार देकर वरा है उसकी ही आज्ञा के आधीन होकर शुभ कार्य को सफल बनाने में सावधान रहें।

अभी निर्देशों का सिलसिला चल ही रहा था कि आये लोगों में से एक महाशय जो अपटूडेट जंटलमैन की तरह बूट पतलून कसे हुए खड़ा था, शरीर पतलून की रस्सियों से कसा हुआ था, बूट उतारना अपना अपमान समझता था, और कुर्सी भी न देखकर खड़ा हो गया था, कहने लगा--'यार, ये तो बड़ी देर लगा रहे हैं और व्यर्थ हमारा समय नष्ट कर रहे हैं। आओ हम चलें। पता-नही यज्ञ कब शुरू होगा।' यह कहकर चल दिया। बैठे हुए सज्जनों में से एक आदमी बोल पड़ा, 'महाराज! यह क्या पो

लीला आप रच रहे हैं। हम तो शहरों में जाते हैं। प्रति सप्ताह समाज में भी बड़ा-बड़ा यज्ञ होता है। त्यौहारों पर तो खासतौर पर समाज मन्दिर में हम सब यज्ञ करते हैं। वहां तो ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं देखा। संस्कारों में भी जाते हैं। खब हंसी मजाक और बातें चलती हैं। भाग्य से (नदीनां संयोग) तो आर्य समाजियों में ऐसे ही मौकों पर मेल-जोल हुआ करता है। इस वक्त भी यदि जिह्वा बन्द रहे तो फिर उत्सव या जल्से या खुशी का मजा क्या आया ?

महात्मा--बात का मतलब तो आपका ठीक है किन्तु बात गलत है। मेरे निर्देशों का जो उद्देश्य है वही आप का उद्देश्य है। केवल समझ का भेद है। कृपा करके आप बतलायें कि आप कौन हैं ताकि मैं उसी प्रकार का जवाब देकर आपको सन्तुष्ट करूँ।

वही आदमी--मैं कौन हूँ ? हूँ तो आदमी। क्या आप नहीं देख रहे ?

महात्मा--क्रोध व धृष्टता के लिए क्षमा करें। आप आदमी आकृति से हैं या स्वभाव से भी ? यद्यपि 'कौन' से मेरा अभिप्राय तो और था, किन्तु आपको शब्दों को बंद करने की आदत भी है, जैसे पुलिस चोर को बांधती है। इसलिये आदमी का लक्षण कृपा करके बतला दें।

वही आदमी--आदमी का लक्षण और क्या करूँ जब सशरीर आपके सामने हूँ।

महात्मा–किसी महापुरुष ने कहा है--

तू कुजा मेहनते दीगरां बे गमी,
न शायद कि नामत निहन्द आदमी

मैं तो इतनी मेहनत करके आप लोगों को जौहर समझाने की कोशिश कर रहा हूँ और आपको मेरी मेहनत की दाद तो दूर रही, इतनी निर्दयता है। जैसे एक किसान बड़ा परिश्रम करके बीज बोता है और पशु उसे पैरों से कुचल लताड़ देता है या जैसे कोई माली पनीरी लगाता है और कोई पशु आता है और मुख से उखाड़ डालता है।

भक्त---यह महाशय समाज के एक मान्य सदस्य हैं और स्वाध्याय शील हैं और अच्छे निपुण शास्त्रार्थी हैं।

महात्मा---धन्य हैं। इसलिये शायद अधीर हैं और शब्द पकड़ने वाले हैं स्वभाव से विवश हैं। स्वाध्याय भी इनका दूसरों से वाद-विवाद करने और हराने के लिये है। अपनी आत्मा के लिये नहीं। दृढ़ आर्य का भी यह लक्षण नहीं। आर्य शब्द बहुत ही पवित्र और उच्च शब्द है। आर्य-समाज का सदस्य बन जाना चन्दा देकर और बात है, और सचमुच आर्य बनना और बात है।

आजकल की प्रथा ही ऐसी पड़ गई है कि जो मनुष्य विद्यासम्पन्न या ज्ञान-सम्पन्न हैं उन्हें प्रत्येक क्रियामें "क्यों ? कैसे ?" ऐसे प्रश्नों का होना स्वाभाविक है। जि क्रिया के साथ हेतुज्ञान का सम्बन्ध नहीं उस क्रिया से बुद्धि मान को यथार्थ सन्तोष होना अति कठिन है।

शास्त्रकारों की बातें पहले से ही विचार की कसौटी पर चढ़ी हुई हैं और ईश्वरीय आज्ञाओं में अल्पज्ञ जीव की ऐसी कल्पना करना अनुचित जचता है। कहां ऐ विद्या व बुद्धि के सागर, अनेक ब्रह्माण्डों के नायक, अनन्त सूर्य चन्द्र आदि कर्त्ता, हर्त्ता, भर्त्ता, विश्वव्यापक परमात्म की बुद्धि और कहां ऐसे तुच्छ से तुच्छ जीव की तर्क व विचार की शक्ति। अन्तरं महदन्तरम्। अन्तर और महा अन्तर है। इसलिए उसकी आज्ञाओं को आंख मूंद मा लेना चाहिए ! उनमें क्यों, कैसे व ननु- नच करने का अव काश नहीं। नहीं मालूम किस प्रयोजन से किस विचार भगवान ने वेदों के सिद्धान्त बनाये हैं। अल्प-शक्ति जी की अति अल्प और भ्रान्ति आदि दोषों से दूषित बु ईश्वरीय आज्ञाओं के मूल तत्व को कैसे पहचान सकती है

आर्यसमाजी---निःसंदेह आपका कथन ठीक है। कि हम लोग तो क्रिया के मर्म व हेतु को बिना समझे जा क्यों विधान मात्र से "ऐसा करो वैसा करो" ऐसा कह मात्र से कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? भला जो कानून रा

की तरफ से प्रजा के लिये बनाये जाते हैं क्या उन पर योग्य वकील बैरिस्टर बहस नहीं करते ?

अधिकार नहीं

महात्मा—आपकी इच्छा है पर अधिकार नहीं कहूंगा। क्योंकि सरकारी कानून के भिन्न भिन्न अर्थ लगते हैं और उनका तात्पर्यार्थ और मिथ्यार्थ बुद्धि द्वारा व तर्क द्वारा ही निकालते हैं। पर साधारण लोग असमर्थ होने के कारण, बुद्धि मन्द होने के कारण, उन आज्ञाओं को जैसा सुना वैसा मानने के लिये विवश हो सकते हैं। परन्तु स्वच्छ—बुद्धि सम्पन्न ऐसा क्या क्यों करने लगे। जिन्हें भगवान ने बुद्धि का प्रकाश दिया है वे उस प्रकाश से ही परमात्मा की विभूतियों को देखते हैं। कोई कारण नहीं कि वेदाज्ञा के विषय में बुद्धि की स्वाभाविक गति को रोक दिया जाय। शास्त्रकार कहते हैं स्वयँ महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं -*'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।' किन्तु कर्मकाण्ड का विषय तो श्रद्धा से कर देखने का है। जिन समाजों और सभाओं या संगठनों में आचरण और कर्म की कमी है और जिसे कर्म के ऊपर श्रद्धा नहीं वह समाज दुनिया में इतनी सर्वमान्य नहीं बन सकती और न ही दूसरों को अपने अन्दर समाविष्ट कर सकती है, न ही

* वेदों में ज्ञानमलक बुद्धियुक्त वाक्य रचना की गई है।

आकर्षित कर सकती है। गीता में लिखा है--'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः'। राजर्षि जनक आदि कर्म से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

कर्म प्रधान

आर्य शास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि उपासना [भक्ति] और ज्ञान इन निष्ठाओं के सम्पादन से पूर्व कर्म-निष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है। कर्मनिष्ठा ही भक्ति और ज्ञान की जननी है।

आर्यसमाजी---क्या हम ऐसे ही मान लेवें? कर्म के लिये क्या वेद ऐसी आज्ञा देता है? मुक्ति तो मनुष्य को ज्ञान से होती है। बिना ज्ञान तो आवरण छूटता नहीं। हम तो यही समझते हैं कि जो लोग सदा भक्ति में रत रहते हैं वह भी व्यर्थ है। कर्म तो शरीर को पैदा करता है जो जन्म मरण के चक्र में फंसाये रखता है। और आप कर्म पर इतना बल दे रहे हैं।

महात्मा--आपकी बात सोलह आने सही है। मगर महत्व की सीढ़ी में कर्म सबसे पहले की सीढ़ी है। उपासना मध्यम सीढ़ी और ज्ञान तीसरी तथा अन्तिम है। उसके बाद और कोई सीढ़ी नहीं, लक्ष्य स्थान है। जैसे डिप्टी कमिश्नर बनने के लिये बी.ए, एम ए. होना लाजमी है किन्तु पहली श्रेणी के बिना बी. ए. एम. ए होना असम्भव है। इसलिए पहली

श्रेणी मैट्रिक, बी. ए. एम. ए. की जननी है बिना कर्म के ज्ञान से भवन पर चढ़ना ऐसे ही असंभव है अतः सबसे प्रधान कर्म है।

कर्म, अकर्म विकर्म,

आर्यसमाजी--कर्म किसे कहते हैं ?

महात्मा-मोटा लक्षण जिसे सब समझ सकें "जिसके करने से मनुष्य के मन को बल और आत्मा को यश मिले, वही कर्म है।" इसके अतिरिक्त वह कर्म न होगा बल्कि या वह अकर्म होगा या विकर्म।

आर्य समाजी—अकर्म, विकर्म से आपका क्या अभिप्राय है ?

महात्मा—यह मेरा अभिप्राय तो नहीं बल्कि शास्त्रकारों का अभिप्राय है कि जिससे अपने शरीर के सिवाय किसीको लाभ न पहुँचे, वह जो केवल अपने ही शरीर के लिये किया जाय, वह अकर्म है। उदाहरणार्थ—केवल अपने लिये खुद खाना, पीना, कमाना। और जो बुरे काम करते हैं उनको विकर्म कहते हैं।

आर्य समाजी--अर्थात् कर्म वह हुआ जो दूसरों के लाभ के लिये हो।

यज्ञ का स्वरूप और भेद

महात्मा—हां, ऐसे समझो और इनके भी दर्जे हैं और

इन सबका नाम यज्ञ है क्योंकि यज्ञ का स्वरूप परोपकार है। जितना जितना किसी कर्म से जितने जितने क्षेत्र तक लाभ पहुँचता है वह परोपकार है और यज्ञ है। उत्तम, मध्यम, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतम इत्यादि। उदाहरण के तौर पर समझो (१) "दान आदि यज्ञ" किसी एक रोगीका तन या धन से सेवा करना, दूध, वस्त्र, दवाई से सहायता करना भी यज्ञ है। इसका सम्बन्ध एक आदमी से है (२) किसी को अन्न, भोजन देना, विद्या पढ़ाना भी यज्ञ है। अनाथालय में लड़कों को भोजन देना, सुपात्र को दान देना, दीनों की सेवा करना, छोटों से प्रेम करना दया करनी, उस एकसे ज्यादा है मगर विशिष्ट है। (३) तालाब, कुआं धर्मशाला बनवाना भी यज्ञ है परन्तु सीमित स्थान के लिए।

संगतिकरण—समाज की सेवा करना, सत्सँग करना सत्संग का प्रबन्ध करना और सत्संग कराना भी यज्ञ है मगर सीमित समाज के व्यक्तियों की।

(४) जाति की सेवा करना, जनता से प्रेम करना इस से बड़ा यज्ञ है। किन्तु केवल एक जाति सीमित रहती है। (५) देश- सेवा और भी बड़ा यज्ञ है पर दूसरे देश वञ्चित रह जाते हैं।

देवपूजन--(६) सन्ध्या स्वाध्याय, भक्ति भी यज्ञ है (७) माता-पिता, आचार्य गुरु आदि बुजुर्गों की सेवा करना और सत्कार करना भी यज्ञ है।

श्रेष्ठतम कर्म--संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना, यह है सबसे महा यज्ञ।

व्यवस्था की बात है कि स्थूल चीज स्थूल शरीर तक लाभ दे सकेगी। जब चीज सूक्ष्म हो जाती है तब उसका लाभ भी बहुत विस्तृत हो जाता है। यजुर्वेद में अग्निहोत्र को श्रेष्ठतम कर्म माना गया है और सबसे पहला पहला मन्त्र ही मनुष्य के कल्याणार्थ यज्ञ कर्म का उपदेश करता है।

ओ३म्, इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशं सोध्रु-वा अस्मिन् गोपतौ स्यात, बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।

संसार भर के प्राणियों का पालन पोषण जिससे होता है अथवा जिस पर संसार के प्राणी मात्र आश्रित हैं उस का बीज यज्ञ है।

इससे मनुष्य को तो दो प्रकार का लाभ है और बाकी जीवों को एक प्रकार का लाभ है, क्योंकि बाकी जीवों की योनि भोग-योनि कहलाती है। इस लिये उनके लिए भोग उत्पन्न करता है और मनुष्य के लिये भोग के अतिरिक्त कर्म की योनि है इसलिये इसके लिये उत्तम भोग और भौतिक व आत्मिक लाभ भी होते हैं। यज्ञ से न

केवल बुद्धि पवित्र होती है बल्कि जाति की उन्नति और वेद रक्षा भी होती है और भी बड़े लाभ हैं।

यज्ञ का लाभ

१ आध्यात्मिक

१	२	३	४
अग्नि के गुणों को धारण करना	वस्तु सँशुद्धि	जातीय उन्नति	वेद रक्षा

२ आधिभौतिक

१	२	३	४
जलवायु शुद्धि	वनस्पति वृद्धि	शारीरिक आरोग्यता	वर्षा वृद्धि

आर्यसमाजी--"बड़े आश्चर्य की बात है कि यज्ञ से मनुष्य की बुद्धि की पवित्रता, जातीय उन्नति और वेदरक्षा भी हो जाये। यह तो फिर समझने के लिए विशेष समय देकर लाभ लेना चाहिये। अब तो बहुत देर हो गई है। आप हवन कर लेवें और हम को फिर दूसरे वक्त समझायें।"

हवन साधारण रीति से हो गया और सब चले गये। इसके बाद भक्त जी तो पाठ में लग गये और बच्चे अपनी

पढ़ाई में। गृहपत्नि अपने घर के काम काज में लग गई। महात्मा जी स्वाध्याय और ध्यान में मग्न हो गये। निवृत्त हुए ही होंगे कि प्रकाश आ गया। महात्मा जी से यों कहा :—

महाराज ! यज्ञ तो लाभदायक हुआ। मगर मैं तो यह नहीं समझा कि वेदि इस विशेष प्रकार से बनाने की क्या जरूरत थी ? जल देते समय भिन्न-भिन्न मन्त्र बोल कर भिन्न-भिन्न दिशा और स्थान से पानी एक नाली बनाकर डाला जाता है। इससे पहले जल को मन्त्रोच्चारण करके पान किया जाता है। ये सब निरर्थक सी क्रियाएँ मालूम पड़ती हैं। इतने में भक्त जी आ गये। उन्होंने महात्मा जी का उपदेश इस बारे में पहले सुना हुआ था और नोट लिखे हुए थे। प्रकाश को कहा कि यज्ञ की कापी से जाकर पढ़लेवे। अब महात्मा जी थके हुए हैं। कभी किसी अवसर पर इनके मुखारविन्द से भी इसे श्रवण करने का मौका मिल जायगा। कामना करो, अधिकारी बनो और परमात्मा इच्छा पूरी कर देते हैं।

ο ο ο

चौथी झांकी

प्रशंसनीय अग्नि समिधा

सूर्यप्रकाश तो छुट्टियों पर आया हुआ था। उसे तो कहीं आना-जाना नहीं था। बाकी सब अपने-अपने काम

पर चले गये। सूर्य प्रकाश के दिल में जिज्ञासा बढ़ी। दिल में सोचा अब तो मैं और महात्मा अकेले हैं। एकान्त से ही लाभ उठावें। भोजन आदि से निवृत्त हुए तो एक पीपल के पेड़ के नीचे ठण्डी छात्रा में सूर्यप्रकाश और महात्मा जी चारपाई और तख्त पोश डाल जा लेटे। सूर्यप्रकाश अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिये महात्मा जी को दबाने लगा। महात्मा जी ने भी दिल में जान लिया कि अब इसमें जिज्ञासा और श्रद्धा उत्पन्न हुई है—श्रद्धावां-ल्लभते ज्ञानम् -श्रद्धावान, को ही ज्ञान प्राप्त होता है। अब इसे समझाना चाहिये।

महात्मा—बेटा! अब तुम आराम करो। गर्मी का समय है। मुझे न दबाओ। दबाने से जिस्म ढीला पड़ जाता है।

सूर्यप्रकाश—मैं तो सेवा से वञ्चित ही रहा।

महात्मा—तुम्हारा आन्तरिक भाव ही सेवा है। श्रद्धा का स्थान तो हृदय है। हां कोई तकलीफ हो या थकान हो तब तो दबाने में कोई डर नहीं। बिना आवश्यकता के तन सेवा भी उतनी ही निन्दनीय है जितना कि धन बिना जरूरत दान में ले लेना।

सूर्यप्रकाश—मैं तो यह सेवा अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कर रहा था कि दबाता भी रहूँगा और कोई उपदेश भी लेता रहूँगा।

महात्मा—वाह ? वाह !! यह तो बहुत उत्तम विचार

तुम्हारा है। लो सुनो ? मगर श्रद्धा से और कान देकर सुनना:–

आजकल के नौजवान पश्चिमी सभ्यता के अभिमानी थोड़ी सी पदार्थ विद्या (साईन्स) को पढ़कर सारी प्रकृति के विषय में ज्ञान रखने का दावा करने लग जाते हैं। तुम यह न समझना कि तुम बी० ऐस० सी० हो तुम्हें ही कह रहा हूँ। मैंने सर्व साधारण की बात कही है। बहुतसे इस अधूरी साइन्स के प्रताप से नास्तिक बन जाया करते हैं।

यज्ञ की वस्तुएं

तुम देखते हो कि यज्ञ हवन करने में क्या-क्या वस्तु प्रस्तुत की जाती है। लकड़ी जिसको समिधा कहते हैं। यह याद रक्खो कि हर एक लकड़ीको समिधा नहीं कहा जाता। जो लकड़ी हवन की आग के लिए विशिष्ट है उसका नाम समिधा है। आग जलाने वाली लकड़ी को लकड़ी ही कहते हैं। दूसरी सामग्री जिसमें अनेक प्रकार के गुणों वाली सुगन्धित औषधियां हैं, अन्न मिष्ठान्न भी शामिल हैं। घी, जलपात्र, आचमनी, घी के लिये चमचा, कटोरी, सामग्री के लिये थाली, दीपक आदी सब कामकी चीजें रखी जाती हैं।

समिधा

सूर्यप्रकाश–अगर आप रुष्ट न हों तो मेरा यह प्रश्न है कि लकड़ी और समिधा में क्या भेद है? लकड़ी पंजाबी या उर्दू शब्द है और समिधा उसका संस्कृत शब्द है। चूंकि पिछले जमाने में संस्कृत बोली जाती थी और पुस्तक भी संस्कृत में थे, इसलिए समिधा लिख दिया आप क्यों भेद करते हैं।

महात्मा--संस्कृत में लकड़ी को काष्ठ कहते हैं जिसे पंजाबी में काठी बोलते हैं। समिधा भी यद्यपि काष्ठ या लकड़ी ही है परन्तु लकड़ी के कहने से कोई पहचान नहीं हो सकती कि किस चीज की लकड़ी है। कीकर, भाण, शीशम, दयार, आक' बेर, जामुन, आम, पीपल. बड़ की लकड़ी सब लकड़ी कहलाती हैं। मगर जब हम समिधा कहेंगे तो इसमें विशिष्टता हो जायगी।

समिधा ऐसा शब्द है कि वह अपनी परिभाषा आप करता है जैसे आग आग में भेद है, जैसे भूमि भूमि में भेद है, ऐसे ही लकड़ी लकड़ी में।

प्रशंसनीय अग्नि

चूल्हे की अग्नि से लोग हुक्के के लिए अंगारा उठा लेते हैं, । इस अग्नि को मुह से फूंक कर जलाते है प्रन्तु हवन की अग्नि के जलाने में भी श्रद्धा से काम लिया जाता

है फूँक मार कर जलाना मना है । अपवित्र कार्य के लिए अंगारा उठाना तो दूर की बात, इस अग्नि पर तो हाथ सेकना भी निषिद्ध है और काम ले सकना कहाँ ? देखो मकान बनाने के लिये जमीन ली गई । एक स्थान पर हमने ही पाखाना बनवाया । अब वहां चौका नहीं लगाया जायगा । वहां जाने से ही हाथ मुहं धोने पड़ेंगे । साधारण कमरे में जूता ले जा सकते हैं पर जहां चौका, रसोई खाना बनाया है वहां जूता नहीं ले जा सकते । और फिर जहां यज्ञशाला या उपासनालय बनाया होगा वहां रोटी नहीं पकायेंगे । वह स्थान केवल धर्म कार्य के लिए ही विशिष्ट होगा । ऐसे ही लकड़ी आम लकड़ी जहां डाल दी जाय, सड़ी गली हो, खराब हो सब आग में जल जावेगी । टेढ़ी हो, मोटी हो, छोटी हो, जैसी भी हो और जिस प्रकार की हो, जिस वृक्ष की हो, जलाई जावेगी । पर हवन की लकड़ी के वृक्ष भी विशेष हैं ।

प्रकाश--यह सब कुछ अपने ख्याल की बनाई हुई बातें हैं मतलब तो आग जलाने से है, अगर खाली आग जली तो इसका नाम आग हो गया, अगर सामग्री डालकर जला दी तो इसका नाम हवन हो गया ।

महात्मा--बेटा । ऐसा न कहो । एक आदमी ने मिर्चों की लकड़ियों को जला दिया । ऐसी जहर फैली कि जहां

जहां हवा उसे ले गई वहाँ वहां के आदमियों को छींके आने लगीं और जलाने वाले को बिना देखे बुरा भला कहने लगे और आग की भी निन्दा करने लगे। आपने हवन किया, सुगन्धित पदार्थ जलाए। जहां-जहां सुगन्ध गई वहां के लोग प्रशंसा करने लगे। साधारण चूल्हे की अग्नि की निन्दा है, न प्रशंसा। तो इस हवन की अग्नि का नाम प्रशंसनीय अग्नि है। इसे अंग्रेजी में (Sacrificial fire) (सैकरी फिशल फायर) कहते हैं। अब देखो पहले मैं तुमको अग्नि का लक्षण दिखाऊँ और इसे समझाऊँ।

अग्नि

अग्नि शब्द संस्कृत का है-अग+नि। अग् के अर्थ आगे (नि) के अर्थ ले जाने वाली, जो आगे (उन्नति की तरफ ले जानी वाली है। उसका नाम अग्नि है। इस बात को याद रखना कि अग्नि अपने उपासक को अपने ही गुणों का कर देती है। यह मुझ से फिर पूछना। पहले अग्नि के सम्बन्ध में सुन लो। अग्नि देव की विभूति देखो–

(१) अग्नि घर-घर में जल रही है। साधारण रीति से कोई जला देवे पवित्र हो या अपवित्र।

(२) अग्निहोत्री पुरुष अतिथि की तरह प्रातः सायं अपने घर में बड़ी श्रद्धा और सावधानी से जगा कर प्रदीप्त करके दिव्य लाभ पा रहे हैं।

(३) इसके अतिरिक्त इस प्रदीप्त और स्थूल अग्नि से जो अन्य अनगिनत सांसारिक कार्य और उपकार हो रहे हैं उन्हें भी हम सब जानते हैं।

(४) यह अग्नि अपने सूक्षम अप्रदीप्त न दीखने वाले रूप में हर जंगल, हर वृक्ष, हर समिधा और हर पदार्थ में चोर की तरह छिपी बैठी है !

(५) हर लकड़ी में ही नहीं बल्कि पानी, किरण और हर प्रयोग के योग्य चीज में छिपी हुई है। साइंस-दान (वैज्ञानिक लोग) इस प्रत्येक वस्तु में व्यापक भौतिक अग्नि का असंख्य प्रकार से उपयोग ले रहे हैं।

(६) पर वैज्ञानिक लोग भी जिस सूक्ष्मता में नहीं घुस पाते उसमें घुसकर देखें, तो हमें दीखता है कि यह अग्नि प्रत्येक जीवित प्राणी में भी उसका जीवन और आत्मा होकर विराजमान है। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाता हुआ यह अग्नि जन-जन में बैठा हुआ है इसी कारण प्रत्येक जन अपने व्यक्तितत्व में बंधा हुआ है।

ब्रह्मांड की अग्नि

(७) आत्म अग्नि, जन-हितकारी अग्नि के अतिरिक्त और भी रूप धारण करती है। यह अग्नि जहर में, विष में, अमृत में, राजा में, प्रजा में, एक व्यक्ति में, एक जन-समूह में भी निवास करती है। यही विश्व अग्नि, समाज

अग्नि और राष्ट्राग्नि के रूप में प्रकट होती है, जिसमें बड़े-बड़े जन-समूह भी समय आने पर आत्म-हवन किया करते हैं। इसी तरह इस अग्नि देवता की विभूति अनन्त प्रकार से दर्शनीय है। इसका पार वाणी नहीं पा सकती।

अथर्ववेद में, यजुर्वेद में, और ऋग्वेद में भी पहले एक प्रश्नके रूपमें मन्त्र आता है, फिर उसके उत्तरमें मन्त्र है।

प्रश्न—'पृच्छामि त्वा विश्वस्य भुवनस्य नाभिः' अर्थात् मैं तुझसे पूछता हूँ कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बांधने वाली वस्तु कौन है ?

उत्तर—'अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः' अर्थात् यह यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नाभि है, बांधने वाला है। इस यज्ञ को अल्प जीवों को समझाने के लिए अग्निहोत्र द्वारा सिद्ध किया गया है। अग्नि जो सर्व संसार में व्यापक रूपसे है और इसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता और अग्नि सब देवताओं में प्रथम भी है और उनकी मध्य नाभि भी है। जैसे आकाश, वायु (अग्नि) जल, पृथ्वी। अग्निके बिना पृथ्वी निरर्थक, जल निरर्थक। ऐसे आकाश और वायु अग्नि से बांधे हुए हैं। इसलिए श्रद्धा से समझने की कोशिश करो।

प्रकाश--श्रद्धा तो मैं रखता हूँ। मगर क्या करूँ रहा नहीं जाता। अभी सवाल पैदा हो गया। आप प्रशंसा

करते हैं और मुझमें शङ्का खड़ी हो जाती है कि क्या अग्नि का श्रद्धालु उपासक अगर अग्नि पर हाथ डाले जो अपना सब कुछ अग्नि पर न्यौछावर कर देने वाला है। तो क्या अग्नि उसे न जलायेगी ?

महात्मा--जरूर जलायेगी। यही तो खूबी है। और अग्नि का उपदेश है। अग्नि का अर्थ न्यायकारी भी है।

अग्नि पथ प्रदर्शक भी है और न्यायकारी भी है।

अग्नि के "अग्र" शब्द का अर्थ अगवा "नि" के अर्थ ले जाने वाला, पथप्रदर्शन करने वाला, नेता, लीडर जो मार्गदर्शकों में भी अगुवा हो। जैसे वकीलों में मजिस्टरेट, जज अगुवा है जो कभी भी न्याय को नहीं छोड़ता, ऐसे ही अग्नि भी उपदेश करती है लेकिन अपने उपासककी भी रिआयत नहीं करती। अग्नि स्वरूप प्रभु भी किसी की रिआयत नहीं करते चाहे कितना भी उनका प्यारा क्यों न हो। बल्कि अग्नि अपने उपासक को प्रभु के निज गुण न्याय का अधिकारी बनाती है।

अग्निहोत्री दया और न्याय के गुणों को धारण करता है। अग्नि की विशेषता दया और न्याय दोनों हैं और ये दोनों प्रभु के निज गुण कहे गये हैं। जैसे ओ३म् निज नाम है ऐसे यह दोनों गुण भी निज हैं। बाकी नाम भी गुण-द्योतक और गुण भी विशेषण रूप है।

समिधा का अर्थ व गुण

प्रकाश—अच्छा अब समिधा का वर्णन कीजिए।

महात्मा—समिधा दो शब्दों से बना है-सम+धा, जो समता धारण करने वाली हो (१) वह लकड़ी जो रूपमें सीधी और सम हो, टेढ़ी न हो (२) मोटाई में सम हो (३) लम्बाई में हवन कुण्ड के अनुकूल सम हो (४) धुआं ज्यादह न निकालने वाली हो। जितना धुआं चाहिये उतना निकालने वाली हो उसे सम कहते हैं। (५) वजनमें बहुत भारी न हो। ठोस न हो, बहुत हल्की न हो (६) बहुत रूखी न हो, बहुत चिकनी न हो। (७) बहुत कठोर बहुत लचकदार न हो (८) कड़वी खट्टी न हो, मीठी कसैली न हो (९) कुरूप न हो (१०) अपवित्र पक्षियों की विष्ठा वाली और कीड़ों से खाई न हो। शूद्र जाति की लकड़ी न हो। शेष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति की हो।

वृक्षों के वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रः—

प्रकाश हंस पड़ा और कहा कि आज सुना है कि वृक्ष भी वर्ण रखते हैं।

महात्माः—बेटा ! तुम क्यों न हंसो ? आज न सुनते तो कब सुनते ? तुम्हारी अपनी आयु अभी बचपन की है अभी तक तो कालिज में पढ़ रहे हो। ऐसी पुस्तकों के स्वाध्याय का तुमको अवकाश कहां ? और ऐसा सत्संग तुमने पहले कब किया ?

प्रकाश--हां महाराज यह तो बिलकुल ठीक है।

महात्मा--पशु व पक्षियों में भी यही वर्ण चलता है इसके बिना काम नहीं हो सकता। जो वृक्ष ब्राह्मण के से गुण रखते हैं उनकी जड़ें नीचे अति विस्तृत होती हैं। वे अपने भरोसे आप होते हैं, जैसे पीपल, बड़ आदि। क्षत्रिय वे वृक्ष हैं जो युवक की तरह मजबूत वज्र के समान होते हैं, जैसे जंड, कंडा आदि। वैश्यवृति वे होते हैं जो फलदार होते और उनका तना बहुत मजबूत होता है, शाखाएं फैली हुई होती हैं' जैसे आम, बेर, बिल्व। शूद्र-वृत्ति वे वृक्ष होते हैं जो चूल्हों को जलाने के, भट्टीमें जलाने के और इमारत के काम लगते हैं जैसे शीशम' कीकर' भान इत्यादि। पहले तीनों वर्णों के अंग-अंग बीमारियों के काम आते हैं। (इसके सम्बन्ध में परिशिष्ट नं० १ पर दृष्टि डालिये)।

यज्ञ और साइंस विद्या

मुझे तो सबसे पहले कोइ साईंस सम्बन्धी बात यज्ञ से बतला देवें तब तो मेरी श्रद्धा कुछ और बढ़ जाएगी वरना जो थोड़ी सी भी श्रद्धा पैदा हुई है वह भी जाती रहेगी।

महात्मा--अच्छा, सुनो। मैं खुद तो कुछ नहीं जानता

हां वैज्ञानिक लोगों का कथन तुम्हें सुनाता हूँ। समझते तुम स्वयं ही जाना, तुम साइंसदान हो।

१ लकड़ी के जलाने से एक प्रकार की एल्डीहाईड* (Aldehyde) नामी गैस पैदा होती है जो सब प्रकार के कीड़ों (जर्म्स) को मार देती है और यह चीज कैमिस्ट्री में बहुत मशहूर है। पानी के एकसौ भाग में ४० प्रतिशत इस गैस को मिलाकर यह फार्मेलीन (Formalin) दवाई बाजारों में आम तौर पर बिकती है जिसे भिन्न तरीकोंके प्रयोग से हम रोगों और कृमियों को दूर कर सकते हैं।

(२) खाण्ड के जलाने से "फार्मिक ऐल्डीहाइड Formic Aldehyde) गैस निकलती है। कैमिस्टरी में खांड तीन प्रकार की है—गन्ने की, फलों की और अंगूर की।

(३) कारबन डाइग्रोक्साइड (Carbon Dioxide) (जो सोडा लेमोनेड में भी लोग पीते हैं) इससे प्यास दूर होती है भोजन पच जाता है। मगर यह सीधी पेट जाती है, फेफड़ों पर असर नहीं रखती। लेकिन हवन निकली कार्बन डाइग्राक्साइड सांस के द्वारा फेफड़ों

*एक सेर चीड़की लकड़ीके धूम में प्रतिशतक ३२ भाग शाहबलुत लकड़ी में प्रतिशत ३५ भाग, शुद्ध खांड में प्रतिशत ७० भाग और साधारण धूपमें प्रतिशत १८ भाग एल्डीहाइड गैस के होते हैं। (मिस्टर ठिरनिट प्रसिद्ध आविष्कारक की राय)

असर करती है। चूंकि यह गैस साधारण हवा से डेढ़ गुना भारी होती है इसलिए हवनकुण्ड के पानी की वजह से नीचे जमीन में चली जाती है। और अनाज आदि को खूब पकाती है। इस गैस से सूरज की किरणें गुजर तो जाती हैं पर जमीन से टकराकर वे किरणें बाहर नहीं जा सकतीं। वायुमण्डल के प्रति १००० आयतन में ३ आयतन कारबन डाइ आक्साइड गैस है। यह भूमि पर एक पर्दे के आकार में फैली हुइ है। भूमि और इस पर्दे के बीच गर्मी कैद रहती है। ज्यों ज्यों वह पर्दा मोटा होता जावेगा, त्यों-त्यों थोड़ी-थोड़ी गर्मी निकल कर वायु मंडल में बिखर जायगी। आक्सीजन या नाइट्रोजन में इस गर्मी को रोकने की ताकत नहीं। अगर यह गैस वायुमण्डल में कम हो जाए तो गर्मी के निकलनें से इतनी गर्मी पड़ने लगे कि भूमि किसी भी जीव के रहने के अयोग्य हो जाय। इसकी मात्रा में थोड़ा सा अन्तर हो जाने से बड़े बड़े परिवर्तन हो जाएंगे। अगर इस गैस की मात्रा को दुगुना किया जाय अर्थात ३ के स्थान पर ६ प्रति हजार हो जाय तो जमीन की सब बर्फ पिघल कर ध्रुवों का जलवायु समशीतोष्ण हो जायगा। अगर मात्रा को आधा कर दिया जाय तो सारी पृथ्वी पर बर्फ ही बर्फ छा जाय। इसीलिये घर घर हवन या भारी यज्ञ करने से कृत्रिम कार्बन डाइ आक्साइड तैयार होती है। अधिक गर्मी का कारण पानी की

अधिकता और बनस्पतियों की अधिकता और फल, अन्न आदि होंगे। जहा-२ कारबन ज्यादा होती है वहाँ बड़े लम्बे लम्बे पेड़ और उनके घने जंगल होते हैं। सुगन्धित औषधियों के जलने से प्राणियों की बीमारियाँ दूर होती हैं और फलतः ये क्रियात्मक सूचिवेध (इन्जैक्शन) का काम देती हैं

प्रकाश--महात्मन! आप तो कहते थे कि हम साइंस नहीं जानते।

महात्मा--अब भी मैं तो यही कहूँगा की यह मेरा ज्ञान नहीं, वैज्ञानिकों का है और अभी तो वैज्ञानिकों का ध्यान यज्ञ की साइंस की तरफ नहीं गया। तुम्हें बहुत अचम्भा प्रतीत होता होगा कि हमारे वेद और ऋषि-मुनियों ने इस बारे में बहुत कुछ बताया है।

प्रकाश--तो क्या ये बातें जो आपने साइन्स की बताई, वेदों में भी हैं ?

महात्मा--एक मन्त्र नहीं, अनेक सूक्त के सूक्त भरे पड़े हैं। बेटा! हम तो नाममात्र अग्नि को पूजा का स्थान मानते हैं और वह भी अशुद्ध ढंग से। अग्नि के पुजारी तो यूरोप वाले भी हैं जिन्होंने इसे अपने वश में कर लिया है और सारे संसार का व्यहार और धन दौलत इसी से कमा रहें हैं। शास्त्र तो कहते हैं कि जो यज्ञ का सच्चा पुजारी है

धन सम्पति भी उसी के पीछे पीछे फिरती है और उसे आत्मिक लाभ जो होता है वह तो अमूल्य है ही । अब शारीरिक लाभ तो तुमको मालूम हो गए पर यह समझ लो कि अग्निहोत्री अगर यथार्थ विधि से हवन करे तो कभी भी बीमार न हो बल्कि सब प्रकार की बीमारियां इसी हवन से दूर हो जाती हैं । अब वह तुमको तब सुनायेंगे, जब दूसरे भी लाभ उठा सकें ।

००–००

पांचवीं झांकी

अग्निहोत्र का स्वरूप

अब ५ बजकर कई मिनट हो गये । समय ठण्डा और सुहावना हो गया । भक्त जी भी कई एक प्रेमियों को लेकर वहां पीपल के नीचे आ गये । महात्मा जी से नमस्ते की, जलपान के लिये पूछा । महात्मा जी बोले-"प्रकाश खूब सेवा करता रहा है । आप निश्चित रहिये ।" अब भक्त जी ने प्रकाश से पूछा-क्यों ? अब सन्तोष हो गया! केवल समिधा और घास से हवन करने के विषय में तृप्ति हो गई या नहीं ?

प्रकाश--ओह ! वह तो मैं भूल ही गया । धन्य हैं प्रभु, कि वह बात मुझे याद नहीं रही, अन्यथा आज मुझे जो प्रसाद मिला है, न मिल सकता । मेरी श्रद्धा बनती न

थी और महात्मा जी के अनुभवों का लाभ न उठा सकता
आज मुझे इतनी श्रद्धा हो गई है कि अब जो मैं महात्मा
जी के मुख से सुनूंगा वह ऐसे भाव सुनूंगा कि सचमु
मुझे शिक्षा मिल रही है।

भक्त-फिर तो प्रभु का बहुत शुक्र है, धन्यवाद है

बिना घी सामग्री के हवन का समय और ला

प्रकाश–भगवन ! धृष्टता के लिए क्षमा चाहता
अवश्य यह मैं जानता हूं कि वह मेरा पहले दिन वा
सवाल "बिना घी सामग्री के हवन करने का" एक दि
अपने आप हल हो जायगा। मुझे पूछने की आवश्यक
नहीं। अब यह महाराज के अधिकार में है कि कोई औ
अमृत-वर्षा करें, चाहे उसी का वर्णन करें।

भक्त--अभी तो बड़ा समय है हवन करने को उ
समय हवन का और प्रकार का प्रकरण होगा। न मालू
कौन कौन और आ जाएं ? अभी वह बात तो केव
हमारे ही बीचकी है। दूसरोंको इस प्रकरण का क्या पता
अब ही महाराज कृपा करें।

महात्मा–प्रकाश ! अगर तुम अपने पिता के सा
कहीं बाहर चले जाओ और तुमको किसी ऐसी जगह शा
आ जाय कि जहां तुम्हारा कोई परिचित नहीं और व

नगर भी नहीं, गांव भी नहीं, केवल सड़क के ऊपर की एक दुकान और धर्मशाला यात्रियों के लिए है तो तुम अपने खान पान के लिए वहां क्या प्रबन्ध करोगे ?

प्रकाश–यही कि यदि वहां रोटी का प्रबन्ध न हुआ तो दूकान तो है ही दूध मिल जावेगा, वह ही पी लेवेंगे। रबड़ी, खोया और मलाई जो मिल गई, वह ही खाकर निर्वाह कर लेंगे। अगर दूध आदि न मिले तो कोई फल, मिठाई, मेवा पकौड़ा मिल जायगा। आखिर तो दुकान ही है। कुछ तो दुकानदार ने यात्रियों के लिये रखा होगा।

महात्मा–अब जब तुम दोनों वहां पहुंचे, इन चीजों में से कोई चीज प्राप्त नहीं हो सकी। तुमने देखा कि छोले भुने और मुरमुरे रखे हैं। अब तुमने कहा चलो पिता जी Something is better than nothing, यही छोले और मुरमुरे ही सही, ले लिये, खाकर प्रसन्न होकर, पानी पीकर सो गए। अब दूसरे दिन चल पड़े। तुमने कहा कि अब यहीं से छोले ले चलें। शायद आगे भी ऐसा हाल हो। तुम्हारे पिता जी ने कहा प्रकाश ! क्यों ऐसे अधीर होते हो। अब तो दिन है, कहीं न कहीं अच्छी जगह पहुंच जाएंगे। वहां भी बस्ती, दुकान होगी ही। जहां रहेंगे वहां सब कुछ मिल जायगा। अन्यथा छोले तो कहीं गए नहीं वहां भी मिल जाएंगे। अब तुम दोनों चल पड़े। जहां तुमको दोपहर हुई वह अच्छी जगह है। धर्मशाला है कुआं

है, ठण्डा पानी है, दुकान है। पर गए तो देखा दुकानदार नहीं है। दुकान बड़ी बढ़िया है लेकिन बन्द है। कोई तुम्हारी तरह यात्री खड़ा था। उसने कहा यह दुकानदार सब तरह का सामान रखता है। पूरी आदि भी बनाता है। फल, मेवा, दूध भी होता है। पर कल से अपने गांव गया है। इसका कोई बीमार था। वापिस आया नहीं। अब बोलो! तुम इस समय अपने पेट की क्षुधा निवृत्ति के लिए क्या करोगे?

प्रकाश—बस अब ठंडा पानी पीकर शान्त होकर सो रहेंगे।

महात्मा—बस यही हाल है यज्ञ का। शरीर भी एक यज्ञशाला है। पेट इसका हवन कुण्ड है। इसमें शरीर के देवताओं (इन्द्रियें, मन) की तृप्ति के लिए जो अन्न ग्रास ग्रास कर अन्दर डाला जाता है वही आहुति होती है। शरीर में देवता, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हैं। यही ग्रहण करते हैं और इनकी तृप्ति पर तुम्हारे शरीर की तृप्ति और हर प्रकार की बढ़ौती और बल आता है।

ब्रह्माण्ड में जो देवता हैं। वे असली देवता हैं। ब्रह्माण्ड शरीर है और वे देवता इसकी इन्द्रियां और मन आदि हैं और यह पिंड इस ब्रह्माण्ड की नकल है। इनके स्थानापन्न देवता इस शरीर में हैं। जैसे तुम्हारे शरीर में उन देवताओं का स्वामी जीवात्मा है इनको दी हुई आहुति आत्मा के

लिए है और आत्मा के द्वारा ही वे ग्रहण कर सकते हैं। और आत्मा की प्रसन्नता होती है। इसी तरह इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर के देवताओं का आत्मा यही परमात्मा है। उनको दी हुई आहुति परमेश्वर के निमित्त हो जाती है और वे परमात्मा की प्रसन्नता से हमें हर प्रकार की शक्ति और सम्पति बढ़ाते हैं। मैंने तुमको पहले समझाया था कि यज्ञ का असर इस प्रकृति पर क्या होता है और आत्मा पर क्या होता है ? यज्ञ का अंग-अंग किस तरह ब्रह्माण्ड के अंग-अंग का प्रतिनिधि है।

हवन सामग्री

अब मैं तुम को महाराज जनक और ऋषि याज्ञवल्क्य की कथा सुनाता हूं। (बृहदारण्यक उपनिषद्)।

राजा जनक—हे याज्ञवल्क्य ऋषि ! तुम जानते हो अग्निहोत्र का स्वरूप क्या है।

याज्ञवल्क्य—हे राजन मैं जानता हूं।

राजा—वह क्या है ?

ऋषि—महाराज ! दूध ही अग्निहोत्र है अर्थात दूध द्वारा अग्निहोत्र सर्वोत्तम प्रकार से किया जा सकता है।

राजा—अगर दूध ही परम साधन है अग्निहोत्र का, और दूध न मिले तो किस वस्तु का होम करें ?

ऋषि—चावल और जौ के द्वारा।

राजा–चावल और जौ न हों तो ?

ऋषि–जो दूसरी औषधि है उसके द्वारा ।

राजा–"जो दूसरी औषधि न हो, तो किसके द्वारा करोगे ?

ऋषि–"जो जंगली औषधियां होती हैं, उनके द्वारा

राजा–जंगली औषधियां न मिलें तब ?"

ऋषि–वनस्पतियों द्वारा होम करूंगा,

राजा–जब वनस्पतियां न होंगी तब ।

ऋषि–जल द्वारा ।

राजा–जब जल भी न होगा तो किसके द्वारा करोगे ?

ऋषि--(निश्चय करके बोला) जब यहां कुछ भी नहीं था तब भी तो होम किया ही गया था । कैसे ? श्रद्धा की अग्नि में सत्य को डाला गया था ।

यह सुनकर महाराज जनक ने प्रसन्न होकर कहा तुम्हें मैं सौ गायें देता हूं । कितना उत्तम संवाद है ! सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं । अग्निहोत्र नित्य करना चाहिए, केवल श्रद्धा और सत्य चाहिए ।

अब तुम समझ गए, जैसे शरीर के लिए अन्न की आहुति आवश्यक है वैसे ही ब्रह्माण्ड के लिए अग्निहोत्र । परन्तु अग्निहोत्र में अपनी अपनी अवस्था के अनुसार देश कालानुसार, श्रद्धा से आहुति देनी चाहिए । धन

आदमी है तो अपनी शक्ति से, गरीब है तो अपनी सामर्थ्य से आहुति दें। पूर्वकाल में ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी वनों में रहते थे गृहस्थियों की तरह उनके पास अन्न धन तो अपना होता नहीं था। वे देश की सम्पत्ति समझे जाते थे और शक्ति का साधन समझे जाते थे। अब उन्हें अग्निहोत्र तो प्रातः और सायं अनिवार्य तौर पर करना है। किससे जाकर घी सामग्री मांगते फिरें? वे वन की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति जानते थे। गौएं उनके पास होती थीं। चरागाहें आम थीं। औषधियां, जड़ी-बूटियां अनेक थीं। फल फूल, मेवा और भांति-भांति के लाभदायक वृक्ष भी होते थे। उन्हीं से वे नित्य प्रति हवन किया करते थे और जो भी ब्रह्मचारी गुरु के पास पढ़ने जाता था, चाहे राजा का हो चाहे रंक का। वह अपने हाथ में तीन समिधाएं लाया करता था और गुरु चरणों में रख देता था और बड़े-बड़े यज्ञ गृहस्थी लोग उनसे कराते थे, शहरों में और उनकी कुटियाओं पर भी जैसी-जैसी आवश्यकता होती थी। उस जमाने में यही लोग वानप्रस्थी, मुनि और ऋषि ब्रह्म-वेत्ता होते थे।

तीन समिधाएँ, विद्याके सच्चे आदर्श की सूचक

भक्त जी—महाराज! तीन समिधाएं क्यों हाथ में ले जाते थे! एक न ले गए या गठरी बांधकर न ले गए कि आगे को चुननी न पड़ेंगी, काम आयेंगी।

महात्मा–इसका प्रकरण तो हवन में ही आ जाएगा। यहां भी तो आप तीन समिधाएं अग्नि को पहले भेंट करते हैं, पीछे घी सामग्री से हवन करते हैं। अच्छा यहां जो भाव है वह समझ लीजिए।

जब समिधा अग्नि में डाली जाती है तो वह जल उठती है, अग्निरूप हो जाती है। समिधा में छिपी अग्नि उद्‌बुद्ध हो जाती है, प्रदीप्त अवस्था में आ जाती है। इसलिए वैदिक काल में जिज्ञासु लोग समित्पाणि होकर अर्थात् समिधा हाथ में लेकर गुरु के पास आया करते थे। अपने को समिधा बनाकर गुरु के लिए अर्पित हो जाते थे। जिससे कि वे अपने गुरु की ज्ञानाग्नि में प्रदीप्त हो जायें। भौतिक अग्नि के लिए अपनी काष्ठ की समिधा और शिष्य रूप में आचार्याग्नि के लिए अपने शरीर, मन आत्मा के प्रदीपन के लिए तीन समिधाएँ होती हैं। समिधाधान के मन्त्रों में भी पहली समिधा आत्मा का रूप, दूसरी मन में श्रद्धा, पवित्रता का रूप, तीसरी शरीर की निरोगता का रूप वर्णन करती है अग्निकुण्ड के ऊपर मन्त्र के उच्चारण के साथ जो क्रियात्मक रूप में व्याख्या होती है इसका चित्त के ऊपर तुरन्त प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अर्थ चाहे भूल जायें पर भाव और दृश्य सामने रहता है। इधर तुम्हें और रूप में बतलाउंगा। अच्छा अब प्रकाश! कोई कसर

है ? अभी समय है तर्क कर लो अन्यथा हम अब बाहर जाते हैं। हवन का समय निकट आने वाला है।

प्रकाश--नहीं महाराज ? बस अब कृपा आपकी हो गई। इन तीन समिधाओं ने मुझे यह भी बतला दिया। शोक ? वह युग सुनहरा युग हम खो बैठे। आजकल तो स्कूलों और कालेजों में पढ़ाने का और पढ़ने का भाव ही बदल गया। ओह ! कितना उच्च आदर्श, कितनी उत्तम श्रद्धा शिष्य को अपने गुरु के प्रति होती थी। ईश्वर वह जमाना लावे तो भारत का बेड़ा पार हो जावे।

० ० ०

छठी झाँकी

याजक

सायंकाल के हवन का समय है। भक्त जी के गृह का आंगन बड़ी सुन्दरता और सफाई से लीपा-पुता हुआ और वेदी पर सब प्रकार का सामान ढंग से जुटा रक्खा है और सब अपनी अपनी जगह पर बैठे हुवे हैं। इतने में वह साहब भी आ गए।

महात्मा–लो, वे हमारे मित्र (जैन्टलमैन साहिब) भद्र पुरुष भी आ गए।

जैन्टलमैन–महाराज क्षमा करें। ऐसा न बुलाया करें।

महात्मा--जैन्टलमैन कोई बुरा शब्द नहीं ?

जैन्टलमैन--नाम तो बड़ा उत्तम है। नाम नहीं या पदवी है। परन्तु स्वर-स्वर में भी (बोलने के ढंग में भी) भेद होता है। मैं तो अवश्य आपके भाव से ही बुरा अनुभव कर रहा हूं। मेरा नाम धनराज है कृपा करके इस नाम से ही पुकारा करें।

महात्मा--बहुत अच्छा अशिष्टता क्षमा कीजिए।

धनराज--आज तो मुझे ही अवसर दीजिए। मैं ही यजमान बनूं।

भक्त जी--आइये बड़ी खुशी से। आपका ही घर है।

महात्मा--आप रुष्ट न हों तो मैं कह दूं।

धनराज--निःसन्देह, बड़ी प्रसन्नता से।

महात्मा--आप यजमान नहीं बन सकते !

धनराज--क्यों ?

महात्मा--आपने पतलून पहनी हुई है। पता नहीं कि आपके गले में यज्ञोपवीत भी है या नहीं ?

धनराज--क्या पतलून, पाजामे से हवन करना मना है ? और यज्ञोपवीत के बिना हवन नहीं कर सकता ?

महात्मा--आप कहें तो मैं पहले समझा दूं और फिर हवन करूं। अन्यथा हवन करके समझाऊँ।

धनराज--हां समझाने में हवन को देर हो जायगी

आप हवन कर लेवें पर आज हवन के बारे में न समझावें। क्योंकि आप बहुत देर लगा देंगे. पहले मुझे ही इन बातों को समझा देवें।

महात्मा--बहुत अच्छा, आप तब तक मिलकर बैठै रहिये।

सबसे पहले प्रार्थना होती है। प्रार्थना के बाद महात्मा जी से भक्त जी ने विनय की कि कुछ मुखारविन्द से उपदेश भी सुनावें। महात्मा ने कहा--भक्त जी! व्याख्या तो आज मना हो गई है पर आपको यह बतला देता हूं कि यज्ञ ऐसी चीज है जो मनुष्य की जामिन (प्रतिभू) है यज्ञ करने वाले मनुष्य का कोई भी मनुष्य या देव अनिष्ट नहीं कर सकता। ऐसे ही जो याजक यज्ञ रूप हो जाय, यदि कोई उसके विपरीत चले, उसको हानि पहुंचाने की सोच में रहे तो उसके काम में कोई विघ्न नहीं कर सकता।

देखो! यह अग्नि इसकी साक्षी देती है (तीली जला कर) इस तीली की आग ऊपर को जा रही है। मेरी अंगुली ने इसे अब उल्टा दिया। अब भी यह ज्वाला नीचे को नहीं जाती, वह ऊपर ही जाती है और मेरी उलटने वाली अंगुली को जला रही है (सब देखकर हँस पड़े) ऐसे ही जो आदमी याजक की हानि करना चाहता है, उसे आपत्ति में डालता है। उसे नीचे गिराना चाहता है, वह स्वयं ही हानि उठाता है और भस्म हो जाता है।

ऋग्वेद में एक मन्त्र है जिसका अर्थ है कि हमारे कि
हुए यज्ञ कोई सफलता नहीं देते, क्योंकि हम उन्हें री
और प्रीति से नहीं करते, न श्रद्धा न विधि सहित। इ
लिए जहां यज्ञ सब कुछ का देने वाला है वहां यज्ञ दुश्म
भी है। 'नास्ति यज्ञसमोरिपु' यज्ञ के समान दुश्मन को
नहीं। जैसे अग्नि से मखौल करने पर उसकी चिन
गारी हमारा सब कुछ भस्म करने के लिए काफी है, ऐ
ही अश्रद्धा से किया हुआ यज्ञ हानि भी करता है। इसके
सम्बन्ध में मैं पीछे युक्ति से समझाऊंगा। इस सम
प्रमाण देता हूं। धनराज जी ! आप भी ध्यान
सुनिए।

(१) रामायण बालकाण्ड (२) मुण्डक उपनिष
खण्ड २, वाक् (३) विधिहीनस्य यज्ञस्य कर्ता विनश्यति
अर्थात् शास्त्रों की विधि के अनुसार यज्ञ न करने वाल
जल्दी नष्ट हो जाता है। जिस गृहस्थी के घर अग्निहो
अमावस्या का यज्ञ नहीं होता जो पूर्णमासी का यज्ञ
चतुर्मास का यज्ञ और शरद् ऋतु का यज्ञ नहीं करता
जो अतिथि-सत्कार नहीं करता है, जो समय प
अग्निहोत्र नहीं करता है, जिसके घर बलिवैश्वदेव य
नहीं होता, जो विधिके विपरीत हवन करता है, उस के
सात लोक नष्ट हो जाते हैं। "सात लोक" (१) अन्तः
करण की शुद्धि (२) वैराग्य (३) अन्तःकरण की स्थिरत

(४) ईश्वर की उपासना (५) दुःखों से दूरी (६) आनन्द की प्राप्ति (७) मुक्ति। परन्तु अब हवन को देर होती है, सो अब हवन शुरू करें।

हवन हो चुका। प्रार्थना और भजन आदि हो कर निवृत्त हो गए। अब धनराज जी बोले "महाराज! धोती और यज्ञोपवीत पहने बिना यज्ञ करने का मुझे अधिकार क्यों नहीं है?

महात्मा--हां, सुनो भाई! पाजामा-पतलून भी पहनने की चीज है और धोती भी। समय समय के ऊपर हरेक वेष नियत हैं। धर्म दो प्रकार का होता है। एक चिन्हात्मक धर्म, दूसरा क्रियात्मक धर्म। तुम खुद ही बोलो कि बर्तानिया की सरकार के झण्डेका फरेरा कितने लाख रुपये का है?

धनराज--मामूली पैसों का।

महात्मा--अगर इसे कोई गिरा देवे तो क्या होगा।

धनराज--युद्ध, गिरफतारी, फौजी मार्शलला।

महात्मा--अगर कोई समाज मन्दिर का झण्डा या सिक्ख अकालियों का या मस्जिद का झण्डा गिरा देवे!

धनराज-रक्तपात, लट्ठबाजी [दण्डादण्डि], बैर-विरोध, लूटमार मुकदमाबाजी।

महात्मा-क्या लोग फिर अपने झण्डे का फरेरा पैसों से खरीद नहीं सकते ?

धनराज--भगवान ! यह तो चिन्ह है। इसी में तो महत्ता है शासन की, समाज मन्दिर की, सिक्ख धर्म की गुरुद्वारे की।

महात्मा--यही चिन्हात्मक धर्म कहलाता है। अब बताओ। अगर कोई सिपाही वर्दी के बिना किसी को पकड़ना चाहे या किसी के घर की तलाशी लेना चाहे और वह इनकार कर देवे या लड़ पड़े तो बतलाओ कि क्या सिपाही की तरफ से सरकार मुद्दई बनेगी या हस्तक्षेपक मुकदमा हो सकता है।

धनराज–नहीं, क्योंकि वह सरकारी ड्यूटी समय अपनी सरकारी वर्दी में नहीं था।

महात्मा–वर्दी तो सिपाही नहीं, किन्तु वर्दी के बिना सिपाही सिपाही होने का अधिकार न रखने से बलहीन होता है। वर्दी से दुर्बल सिपाही को इतना बल आ जाता है जितना कि कप्तान को है। एक सिपाही नियत वेष में लाहौरी सड़क पर खड़ा हाथ के इशारे से जज की, कमिश्नर की, अथवा करोड़पति की मोटर को जितनी देर चाहे, ठहरा सकता है। यज्ञोपवीत शब्द यज्ञ का अधिकारी बनानेका, विद्याका चिन्ह है, द्विज बननेकी निशानी

। ये मामूली तीन तारें नहीं बल्कि इसमें गहरा रहस्य
। वह कभी यज्ञोपवीत के संस्कार में समझ लेना ।

रीति, नीति और प्रीति

हवन में यज्ञ की पवित्र वेदी के ऊपर कैसे बैठो, कैसे
ाहुति दो । कौन कौन पात्र कैसे रक्खो, कहां कहाँ रक्खो
ब निश्चित हैं । यज्ञ की विद्या पृथक् विद्या है । यह
त समझना कि अगर चौकड़ी मार न बैठा, तो न बैठा
ही, लात पर लात या घुटने टेक, या एक जानु खड़ा
ख जमीन पर, या बर्तन दाएं न रखा बायें रख दिया,
आहुति दायें हाथ से न दी बायें से दे दी । सब विधि
अपने अधिकार में नहीं है । तुमको मालूम होगा कि एक
रकारी मेम्बर अंग्रेज असैम्बली में श्रीमान् मिस्टर पटेल
(स्वर्गवासी) प्रैजीडेन्ट के दरवाजे से गुजरकर अन्दर गया
ा, तो उसका जवाब मांगा गया था कि क्यों वह प्रैजी-
डेन्ट के दरवाजे से गुजरा । सरकार को क्षमा मांगनी पड़ी
थी । अन्यथा दरवाजे से गुजरने में क्या बिगड़ गया था ।
विधि के विरुद्धहोने से वह अपराध था । कोई वकील
हाईकोर्ट में पेश नहीं हो सकता, नहीं बोल सकता जिसको
हाईकोर्ट ने अधिकार (लाइसैंस) न दिया हो और कोई
भी अधिकारी वकील अन्दर पेश नहीं हो सकता जब

तक कि उसने गौन (*Gown*) पहने हुआ न हो। गौन पहने वकील उर्दू में वहां बातचीत पेश नहीं सकता। वह इसलिए कि काम चलाने के लिए, कि कोई विघ्न न आवे, एक विशेष नियम नियत कर है। इसका नाम कानून-संगतिकरण है। यज्ञ का एक संगति करना भी है। वह आगे बतलाऊंगा ये बातें तुमको आजही इसलिए कह दी हैं कि कहीं फिर आक्षेप करने लग जाओ। बर्तनों के ऐसा रखने क्या जरूरत है ? ऐसी आहुति देनेका क्या अर्थ ?और न हम अपनी भाषा में आहुति देवें, सँस्कृत भाषा में बोलें ? यह सब स्वयं मैंने पहले ही इसलिए बता कि तुम कहीं शंका न करने लगो।

धनराज--बड़ी कृपा महाराज ? फिर कल का मेरे घर पर हो। मैं तैयारी करूंगा।

---o---

ओ३म्

सातवीं झाँकी

कर्मकाण्ड आत्म दृष्टि

१ ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

अर्थ–हे (अमृत) सुखप्रद जल ! तू (उपस्तरणम्) प्राणियों का आश्रयभूत (असि) है । यह हमारा कथन शोभन हो ।

२ ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

अर्थ–हे (अमृत) अमृतजल ! तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) है ।

३. ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

अर्थ–हे अमृत जल (मयि) मुझ में (सत्यम्) सचाई (यशः) कीर्ति (श्रीः) शोभा (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो ।

आज प्रातःकाल धनराज के घर में यज्ञ की तैयारी हुई है । यज्ञशाला खूब सजाई हुई है । आसन बिछे हुए हैं । अब महात्मा जी की प्रतीक्षा है । भक्त जी अपने सारे परिवार और महात्माजी को लेकर धनराज जी के घर

में आ गए। धनराज जी ने शिष्टाचार के अनुसार स
सत्कार किया और सब बैठ गए।

महात्मा–यजमान जी ! अब आप सावधानी से
लेवें। उचित निर्देश तो आप पहले दिन सुन ही चुके
अब ध्यान से कार्य करें।

धनराज–महाराज ! पहले आप सामान देख लें
किसी और चीज की जरूरत हो तो पहले ही से धरा
आप कहते हैं कि फिर बोलना चालना नहीं होता। म
त्मा जी ने दृष्टि डाली और कहा एक आटे का दी
बनाओ। उसमें बत्ती और घी जलाओ। एक छोटा
रख दो। उसमें छोटी छोटी लकड़ियां चुन दो ताकि अ
बनाई जावेगी और समिधा भी अपने पास लाकर र
लो। सामग्री में घी मिलाकर जिन-जिन सज्जनों ने आ
देनी है उनके पास रखवा दो। आचमन के पात्र सब सा
हों और सब जन आचमन करें, जो वेदी के ऊपर
हों।

धनराज ने अपने नौकरों से कहा, लकड़ियां ले आ
नौकर ने लकड़ियां उठाईं और जमीन वर दे मारीं।
रास्ते में गिरती आईं।

समिधा अग्नि की आत्मा है

महात्मा--देखो तुमने लकड़ियाँ कहीं। नौकर ने त

ड़ियों जैसा वर्ताव किया। अगर तुम हवन समिधा कहते तो वह श्रद्धा से लाता। यह समिधा क्या है ? अग्नि की आत्मा है। इसका निरादर करने से यज्ञ की अग्नि का निरादर करना है। इसको भी सामग्री की तरह टोकरी में, शुद्ध पात्र में धरना चाहिए। जितना तुम श्रद्धा से काम लोगे उतना तुम्हारा बल बढ़ेगा।

धनराज--तो क्या महाराज ! यह जड़ पूजा न होगी ? लकड़ी तो जड़ है ही।

आत्म-दृष्टि और जड़ दृष्टि

महात्मा--जड़ तो है, पर हवनकुण्ड भी तो जड़ है इस पर अब जूती नहीं आ सकती। तुम्हारी पगड़ी को अगर जूतियों पर रख दें तो तुमको बुरा लगेगा या न।

धनराज--लगेगा।

महात्मा---क्यों ? वह भी तो जड़ है। याद रक्खें तुम जिस चीज को जड़त्व के भाव से देखोगे वह तुम्हारी जड़ता को बढ़ा देगी। वेद का अर्थ समझने के लिए केवल वेद मन्त्रों का विशेष दृष्टि से और विशेष पद्धति से अर्थ जानने की आवश्यकता है परन्तु सृष्टि को और भी विशेष आत्मिक भावना से देखने की अत्यन्त आवश्यकता है। सर्वसाधारण लोगों को सृष्टि की तरफ जड़ दृष्टि से देखने का अभ्यास आजकल हो गया है। यह

अभ्यास अत्यन्त घातक है। जब तक जनता में जड़ दृष्टि रहेगी तब तक उनसे वैदिक दृष्टि का अभाव ही रहेगा। परमात्मा शक्ति का जो विकास इस प्रकृति में हो गया है वह ही सृष्टि है। इस दृष्टि को आत्मदृष्टि कहते हैं जड़ दृष्टि के लोग अपने शरीर को भी और जड़ भाव से देखते हैं हड्डी, मांस, चमड़ा आदि उनको इन जड़ पदार्थों के अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ पदार्थ शरीर में भास नहीं पड़ता। दूसरे ज्ञानी सुविज्ञ लोग इस शरीर को चैतन्य दृष्टि से देखते हैं। वे समझते हैं कि हर एक अंग अंग में चेतन शक्ति विद्यमान होकर काम कर रही हैं और इस दृष्टि से ही वेद के अर्थों को जानना चाहिए। धनराज तो चुप हो गया। परन्तु दलपत बोला कि वेद में ऐसा कहां लिखा है कि लकड़ी अग्नि की आत्मा है और ऐसा सत्कार करना चाहिए।

महात्मा----तुम वेद पढ़े हो ? कौनसा वेद पढ़ा हुआ है।

दलपतराय–पढ़ा तो एक भी नहीं पर बुद्धि जो नहीं मानती।

महात्मा–तुमने कभी वेद की शक्ल भी देखी है ?

दलपतराय–नहीं महाराज ! कभी ऐसा अवसर नहीं मिला।

महात्मा–बेटा ! तभी ऐसी डींग मारते हो। वेद-वेद का नाम पुकारते हो, कभी हवन किया ?

दलपतराय–मैं तो प्रतिदिन हवन करता हूं। कभी नागा नहीं करता।

महात्मा–कुछ इसका असर भी हुआ है ?

दलपतराय–और असर क्या होता है कर्त्तव्य है आर्यों का।

महात्मा–तुम रोटी खाते हो, पानी पीते हो, आग सेंकते हो, पंखा करते हो, नहाते हो, सर्द गर्म चीज खाते हो, इनका असर होता है या नहीं ?

दलपतराय–सबका तुरन्त होता है।

महात्मा–तुम फिर कैसे कहते हो कि मैं हवन करता हूं। क्या प्रतिदिन नींद में किया करते हो या जागते हुए ?

दलपतराय–कभी नींद में भी हो सकता है ?

महात्मा–जैसे बच्चे नींद में दूध पीते हैं और रोटी खाते हैं या स्वप्न में आदमी सब काम काज करता है। सौदा तोलकर दिया और रुपये लेकर गोलक (गल्ले) में डाल दिए। जागने पर क्या देखा कि न सौदा बिका है न रुपये हैं। प्यारे यही तुम्हारा हाल है। देखोः—

समिधाधान--१ ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने-ध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध-वर्द्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मव-

र्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ।१।

(२) ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् आस्मिन्हव्या जुहोतन !

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम

(३) ओं तंत्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा । इदमग्नये अंगिरसे इदन्नमम ।

सब से पहली समिधा जब तुम अग्नि की भेंट करते हो तो तुम पहला मन्त्र पढ़ते हो । अग्ने ! यह [इध्म] समिधा तेरी आत्मा है । जैसे समिधा से अग्नि हर प्रकार से बढ़ती है ऐसे हे ईश्वर ! यह (मैं) जीवात्मा आत्मा है, इसे भी बढ़ाओ । दूसरी समिधा जब तुम हो, तो कहते हो–'समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्' इस में शब्द है 'अतिथिम्' । अतिथि के समान इस को समझ कर आहुति दो, श्रद्धा आदर से जैसे अतिथि का सत्कार किया जाता है और अगले मन्त्र में 'सुसमिद्धाय' शब्द है जिस से स्पष्ट प्रकट है कि समिधा हो, उत्तम हो, पवित्र हो, मैली न हो, गन्दी जगह से ली गई हो, दुर्गन्धित न हो, सुगन्धित हो, दीमक से

हुई न हो, जैसा पहले दिन बतलाया गया है। अब तुम बतलाओ कि जो वस्तु पवित्र है क्या उसे गन्दे स्थान पर रक्खोगे ? या गन्दे तरीके से बर्ताव करोगे ? वेद मन्त्र तो आप ही आप अपनी रीति और प्रीति के नियम को बतला रहे हैं। हम न समझें तो हमारा अपना दोष है। इसी लिए तो वेदमन्त्र द्वारा रीति से सब आहुति दी जाती है और क्रिया की जाती है। अन्यथा ऐसे ही घी सामग्री से हरेक हवन न कर लेता ?

दलपतराय—बहुत खूब ! हम तो इतने समय तक हवन करके लाभ न उठा न सके। भिश्ती होकर प्यासे ही रहे।

मन्त्र उच्चारण

महात्मा ने प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरणको बड़े मीठे स्वर से पढ़ने की सब को आज्ञा देते हुए निवेदन किया कि जो मन्त्र जानते हैं, शुद्ध बोल सकते हैं वे मेरे साथ-साथ पढ़ें। आगे कोई न बढ़े। जब एक मन्त्र समाप्त हो तो झटपट कोई 'ओ३म्' न कह देवे। मेरे 'ओ३म्' कहने पर आप फिर दिल में धीमा कह कर मन्त्र का साथ देवें। उससे यह लाभ होता है कि अगर कोई पीछे भी रह गया हो तो मिल जाता है और एक आदमी के जोर से 'ओ३म्' उच्चारण करनेसे सबका स्वर मिला रहता है। मेरा यह

व्यक्तिगत अनुभव है कि लोग आगे पीछे होकर यज्ञके मन्त्रोंके मंगल पाठको नीरस कर देते हैं। अतः जो नहीं पढ़े हुए वे ध्यान लगा कर सुनते रहें और जो अशुद्ध पढ़ते हैं वे पुस्तक हाथमें लेकर साथ साथ सुनते जायें। जब यह सब हो गया तो महात्माजी ने आचमन और अंगस्पर्शके मन्त्रोंसे आचमन और अंगस्पर्श की क्रिया कराई। एक पात्र में मोटी मोटी समिधायें चुन कर रक्खीं। अग्न्याधान मन्त्र बोलकर काफूर को दीपकसे लगाकर इसमें रख दिया। थाली यजमानके हाथ में दी। फिर दोनों यजमान और आप भी थाली पकड़ कर खड़े हो गये और ओं भूर्भुवः स्वः। ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव.........मन्त्र पढ़कर वेदीमें यह अग्नि बड़ी श्रद्धासे छोड़ दी। लोग देखकर हैरान हो गये कि यह महात्माजीने क्या किया ? इतनी पूजा, इतनी श्रद्धा ! ये तो आर्यसमाजी मालूम नहीं होते। कई एक कट्टर आदमी सहन न कर सके और उठने लगे। महात्मा ताड़ गये और पूछा—सज्जनो क्यों जाते हो ? कोई वेद विरुद्ध बात देखी ?

सज्जन—हां जी ! यह वेद विरुद्ध ही नहीं बल्कि पाखण्ड है ! आप हमें पौराणिक मालूम होते हैं।

महात्मा—अच्छा भाई ! तुम जैसा कहो, ठीक होगा। पर यह तुम्हारा कर्त्तव्य आर्यत्व को कलंकित करने वाला

है। आर्य पुरुष धीर, गम्भीर और विचारशील होते हैं। तुमको अगर मैं किसी शास्त्र का प्रमाण दे दूं, तो ?

सज्जनगण—हम किसी भी शास्त्र को अन्धा-धुन्ध न मानेंगे। आप अर्थ कुछके कुछ लगा देवें।

महात्मा—आपको कहाँ का प्रमाण चाहिये ?

सज्जनगण—ऋषि दयानन्द की किसी पुस्तकसे दिखा दो तो हम आपको यहां यज्ञ कराने देंगे। अन्यथा या हम, स्वयं उठ जायेंगे या धनराजको कहेंगे कि बन्द कर दो।

धनराज--मेरे आर्य वीरो ! मैंने भी भक्तजीके गृहपर ऐसी ही तेजी की थी। मैंने जब इनकी व्याख्या सुनी, पछताया। आपका भी पहला दिन है, इसलिये आपको पता नहीं। आपको वे जरूर दिखला देंगे। मेरे गृह पर रचाये यज्ञ में विघ्न न पड़े, मैं हाथ जोड़कर क्षमा मांगता हूं। यज्ञको होने दीजिये। आप धीरजसे सुनते रहें। फिर सब शंकाएं मिटा लेना।

सज्जनगण--बहुत अच्छा ! घर वालेकी ऐसी इच्छा है तो फिर हमें क्या ?

महात्मा---धनराजजी ! अपने गले का बटन खोल दो। मन्त्र जब स्वर से बोला जाता है तो गर्दन फूलती है। बटन से तंगी होती है और नाड़ियों को नुकसान पहुंचता है।

आचमन मन्त्रों का रहस्य

इस हवन का आरम्भ तुम्हारे आचमन से हुआ है तीन मन्त्रोंसे तीन आचमन करें। विधि यह है कि दा हाथकी हथेली पर इतना जल लेवें जितना उसके मध्यवर्ती भागमें समा सके और कण्ठ तक भी पहुँच सके, सुकड़ [सूत्कार] की आवाज न आवे। आचमनके तीन मंत्रों केवल यह ही मतलब नहीं है कि तुम मंत्र पढ़कर पानी पी लो। इन मंत्रोंमें भी रहस्य है। प्रथम मंत्र में "ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" कहा, इसका अर्थ है—हे अमृत जल ! तू आच्छादन हो। दूसरा "ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा।" हे जल ! तुम ढकने हो। तीसरा "ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहाः।" हे अमृत जल ! तुम सत्य, यश, शोभा और सम्पत्ति हो।

हवन करने वाले को अर्थों के ज्ञान के बिना कोई रस नहीं आता। जैसे इच्छा हुई, कल्पित तौर पर शर्त पूरी कर ली। सर्दी हुई तो अन्दर से झिझकता रहा और चट्टी चुकाई। गर्मी हुई तो भरकर चुल्लू पी लिया और उसे न तो कफ़ निवृत्तिका लाभ हुआ, न रस आया। अतः अब मैं तुमको पहले इसका यह ज्ञान कराता हूँ।

जल सहारा जीवन आधार और सर्व होम औषधि

हमारे ऋषियों मुनियोंने आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक विद्याको बचपनसे ही अनायास बालकों के बुद्धिगत करा देनेका यही एफ तरीका आठ साल की आयु से संध्या, गायत्री और यज्ञका जारी किया था। अब तुम से ही कहलवाता हूँ।

"तुम्हारा जो रहनेका आश्रय स्थान है वह क्या है और वह किस पर स्थित है ?

धनराज--पृथ्वी पर और पृथ्वी जल के आश्रय पर स्थित है। इसके नीचे जल है।

महात्मा--इसीको उपस्तरण (आच्छादन) कहते हैं। अब जो तुम्हारे जीवनका आधार है वह क्या है ? वह किससे उपजता है ? और वह क्या है, कहां से आता है?

धनराज--हमारे जीवन का आधार अन्न है और ऊपर की वर्षाके जलसे पकता है। जल अंतरिक्षसे बरसता है।

महात्मा--इसीका नाम अपिधान-जल का ढकना है। अब तुम समझे, हमारे ऊपर और नीचे पानी है। इसी तरह हरएक पृथ्वी, चन्द्र, तारा, सूर्य आदि जितने भी लोक हैं, उनके ऊपर और नीचे पानी है। इतना ज्ञान

होने के बाद अब हमको देखना है कि इसका नाम अ
क्यों है ? जिन कारणों से मृत्यु होती है उनको दूर क
वाला हो जाने से अमृत बन जाता है। मनुष्य की मृ
रोगसे होती है। रोग-निवृत्ति औषधि से होती है।
भगवान् ने इसके प्रभाव को इस प्रकार कहा है--"जल
अमृत है, जल सर्व होम औषधि है।" मंत्र--'आपः सर्व
भेषजम्,..................(२) जल सब रोगोंको नाश क
वाला है। वह तुम्हारे लिये औषधि भी है। (३) ज
सब रोगों का नाश करता है। स्थिर रोगोंसे वह तुम
सुरक्षित करे। अब सिर्फ ऐसा समझ लेने पर तो रोग
नहीं हो सकते, जब तक वस्तुतः यह न समझ लो कि
दवा है। एक बीमार बिस्तर पर पड़ा है। दूसरा आद
वैद्य से, डाक्टर सें दवाई लाता है वह पानी की आकृ
बोतल या कटोरी में है। परन्तु रोगी को विश्वास है
यह दवाई है और डाक्टर से आई है। मेरे ही रोग
दवाई है। तब वह दवाई उसे लाभ देती है। अगर रो
इसमें सन्देह करे कि पता नहीं दवा भी है या कि पा
देकर पैसे बटोर लिये हैं या कोई और दवाई न देदी
तो रोगी को वह दवाई कभी भी लाभ नहीं करेगी चा
योग्य डाक्टर की हो। इसलिये विश्वास का हो
अनिवार्य है।

विश्वास और श्रद्धासे बल बढ़ता है। बल वाला मनुष्य जिस प्रकार संकल्प करता है वही पूरा होता है। इच्छा शक्ति (Will power) एक बड़ी चिकित्सक है। और जितनी भी औषधियां पैदा होती हैं उनका प्राण जल है। हर जल में जहां-जहां का वह है उसमें वहांके गुण होते हैं। वर्षा का पानी, कुएं का, तालाबका, समुद्र का, पहाड़का, अपना-अपना असर रखता है। किसी पानी से मनुष्य को ज्वर [बुखार] हो जाता है। किसी पानीसे दस्त किसीसे कब्ज हो जाती है। किसी पानीसे ऐसे ही दूर हो जाते हैं। मनुष्य अपने विकार रोगों को दूर करने के लिये जलवायु का परिवर्तन करते हैं। उससे ठीक हो जाते हैं। जलवायु दोनों सर्व औषधि हैं। अब जलको सर्वहोम औषधि (जितनी चीजें हवनके काम आती हैं। चाहे वे मनुष्य की हों या देवताकी उनका पिता जल है, इसलिये सर्वहोम औषधि नाम है) कहा गया है। यह सर्व होम औषधि अमृत कहलाता है।

आचमन विधि

पानीको हाथकी हथेलीपर इतना ही रक्खो जितनी इसमें निचाई है और अपनी आंख इस पानीमें रक्खो और मन्त्र पढ़ते हुए अपनी प्रबल शक्तिसे इच्छा करो–हे अमृत जल ! तुम आच्छादन हो। मेरे सब पापों, रोगों और

मलिनताओं को ढककर शुद्ध करो। दूसरा हे अमृत जल! तुम ढकने हो। मेरी बुरी कामनाओं और विचारोंको आच्छादित करो। यह केवल एक नमूना है। जिस जगह जहाँ पर कोई रोग हो वहां पर पानी मन्त्रित करनेसे अपनी प्रबल शक्तिसे वहा पहुँचा कर इस बीमारीको दूर किया जा सकता है। शारीरिक रोगोंको स्थूल पानीसे और मानसिक रोगोंको जलके गुणोंको धारण करनेसे दूर किया जाता है, पर जो आदमी एक सैकण्डमें आचमन कर लेवे उसपर न बाह्य प्रभाव होता होता है और न आन्तरिक। न उसे किसी विद्याका ज्ञान होता है। और मनुष्यके शरीरमें बहुत भाग जलका है। इसकी उत्पत्ति जलसे है। इस शरीर का पालन-पोषण जलके पदार्थों से होता है इसलिये जलही इसकी दवाई है। अब इसको पीना कैसे चाहिये ? कोई आदमी तो आचमनीसे मुंह में डाल देते हैं। कोई हथेली से ऊपर-ऊपर मुँह में डाल देते हैं कि हाथ अशुद्ध न हो। कोई घूंट भर पी लेते हैं ये तरीके गलत हैं।

रहस्य

पानीको अभिमन्त्रित करके हाथकी कलाई जिसका नाम ब्रह्मा तीर्थ रखा है, दोनों होठोंको यहांपर लगा पानीको हवासे खींचो। बाहरकी आक्सीजन प्राणप्रद वायु के द्वारा थोड़ा थोड़ा पानी अन्दर जायगा तो भापके

जायगा और यही भाप सूक्ष्मरूप सर्व औषध बनकर गले की बीमारीको तुरन्त दूर कर देने वाली होती है। यह स्थान क्यों विशिष्ट है ? तुम देखते हो कि जब इंसान नींदसे जागता है तो इसी जगहसे आँखोंको मलकर उनकी पुतलीको फैला देता है। यहां पर ऐसी नाड़ियोंका संगम है और जिनका रक्त और अत्यन्त निर्मल और बिजलीका असर रखता है, जैसे गंगाका अमृत और रोग विनाशक जल (Minral water)। इसलिये इसका नाम ब्रह्मतीर्थ रख दिया। इसी जगहके पासका नाम मोर्चा है। जैसे दुश्मनके मोर्चा लगाया जाता है, पहलवान लोग बल बढ़ाने के लिये कलाई को पकड़ते हैं, यही बलवाली जगह शरीर रक्षाके लिये मोर्चा है। अब तीसरे मन्त्रका अर्थ बहुत ही रहस्यवाला है। अगर उसे समझाया तो हवन में देर हो जायगी और मेरे नये सज्जनोंकी शंकाएं और भी बढ़ जाएंगी कि जलका सत्य, यश, शोभा और सम्पत्तिसे क्या सम्बन्ध है। विशेषतया सत्य और यश का ? इसलिए अब हवन कर लो और शामको समझाऊंगा।

—o—

ओ३म्

आठवीं झांकी
दक्षिणा का रहस्य

विघ्न तो पड़ने लगा था पर प्रभु जब यज्ञके आप ही पति हो जाते हैं तो सब विघ्न भाग जाते हैं और यज्ञ का रूप सुन्दर हो जाता है। धनराजजीने यज्ञकी समाप्ति पर कहा--भगवन् ! आपकी बड़ी कृपा हुई। आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यद्यपि यज्ञके सम्बन्धमें अभी केवल दो आचमन मंत्रोंकी ही व्याख्या सुनी है पर यज्ञ करनेमें और अग्निकी ज्वालाको विचित्र सुन्दर रूपमें देखकर ऐसा हर्ष हो रहा है कि पहले कभी हवन यज्ञोंमें ऐसा आनंद कम ही आया होगा।

महात्मा–यह सब प्रभु की अपनी ही लीला है। वह विघ्न विनाशक और यज्ञ का देवता है। (धनराज ने जेब से बटुआ निकाल कर उसमें से एक नोट निकाला) यह क्या करते हो ?

धनराज–दक्षिणा के लिए ?

महात्मा–कैसी दक्षिणा ?

धनराज–कोई भी यज्ञ दक्षिणा के बिना सफल नहीं होता।

महात्मा—यह ठीक है परन्तु यह यज्ञ तुम्हारा कोई यज्ञ नहीं है। यह तो हम सब ने मंगल पाठ किया है। शेष रहा मेरा तुमको उपदेश। उपदेश के बदले रकम लेना मैं गुण नहीं समझता बल्कि दुर्गुण समझता हूँ। अब तुम यदि सच्ची दक्षिणा देना चाहते हो तो इस यज्ञकी वेदी के ऊपर प्रतिज्ञा करो कि मैं नित्यप्रति हवन करूंगा।

धनराज—महाराज ! यह तो बड़ी मुश्किल है। प्रतिज्ञा कर दूं फिर कभी न कर सकूं। बाहर आना जाना हुआ। प्रतिज्ञा न कराएं मैं कोशिश करूंगा।

महात्मा—कोशिश सत्य व्यवहार का शब्द नहीं। रोटी खाने में कोशिश नहीं करते। शौच आदि में कोशिश नहीं करते। बाहर-अन्दर, बीमारी आदि में भी यह काम नित्य ही करते हो और हो जाते हैं। पहले ऐसा कष्ट अनुभव होता है, परन्तु, करने पर सुगम हो जाता है।

धनराज--आप कृपा करें। नगद दक्षिणा भी आप मांग लेवें। मैं जरा इन्कार नहीं करूंगा। यह प्रतिज्ञा न कराएं।

महात्मा--माना कि तुम लखपति हो। तभी धन का मान करते हो और सिक्का देकर तुम सब पुण्य खरीदना चाहते हो अर्थात् तुम मामूली कागज के बदले प्रभु को बांधना चाहते हो।

सज्जनों में से एक सज्जन--क्या दक्षिणा के दे देने प्रभु और सब पुण्य बंधे हुए हैं या आपके मुँह से ऐसे निकल गया है ?

महात्मा--जो कुछ कहा है ठीक कहा है। न मुँह निकला न मजाक किया है। तुमको तो तुम्हारी शंकाओं का जवाब इकट्ठा दूँगा।

सज्जन--नहीं महाराज ! अब यज्ञ तो हो चुका माना कि देर हो गई है पर और शंकाओं का समाधा तो हम कल करायेंगे, इसका तो हमें अभी ही समाधा कर दें।

महात्मा--तुम पहले यह बोलो कि दक्षिणा यज्ञ जरूरी चीज है या नहीं ?

सज्जन--जरूरी तो है ?

महात्मा-- क्यों ?

सज्जन--कि जिसने परिश्रम किया हो, उसको पा श्रमिक (मजदूरी) अवश्य देना चाहिए। नहीं तो पा और बस।

महात्मा--अर्थात, तुम इसको मजदूरी समझते और तुम केवल इस कार्य की मजदूरी देते हो।

सज्जन--हाँ हम तो ऐसा समझते हैं।

महात्मा--तुम लोग फिर सच्चे हो। तुम्हारे चि

यज्ञका क्या मान और श्रद्धा है ? पीछे मैं बतला चुका हूँ कि यज्ञ का नाम मानव संसार में प्रेम है। प्रेम के लिए ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। किसी को किसी अंश में भी जाने बिना प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम होने परही इसका गुह्यतम और यथार्थ रहस्य जाना जाता है। ज्यों-ज्यों रहस्य मालूम होता है त्यों-त्यों और प्रेम बढ़ता है। वेद में दक्षिणा के लिए सूक्त के सूक्त हैं, देखें ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १०७।

[१] दक्षिणा अन्धकार से मुक्त करने वाली ज्योति है।

[२] दक्षिणा दिव्य पूर्ति करने वाली है। दैवी पूर्ति-र्दक्षिणा देवयज्या।

[३] दक्षिणावान् की समाज में उत्तम स्थिति होती है।

[४] दक्षिणावान् ही समाज का वास्तविक नेता होता है। दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्राम-णीरग्रमेति ।

[५] दक्षिणा से भौतिक सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति।

[६] दक्षिणवान् का गृहस्थ सुखमय होता है।

[७] लोग दक्षिणावान् की सब तरह सेवा शुश्रूषा करते हैं।

[८] दक्षिणा का यज्ञ के साथ वही सम्बन्ध है जो गाय के साथ रस्सी का है। रस्सी गाय के मूल्य की तुलना में तुच्छ होती है पर गाय को जहां चाहे ले जा सकती है, फिरा सकती है, घुमा सकती है। बिना रस्सी के गाय एक स्थानी है। 'दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी' अर्थात् दक्षिणा यज्ञ के आगे चलने वाली होती है। जहां जहाँ यज्ञ जाता है, यज्ञ किया जाता है, वहां-वहां पहले दक्षिणा जाती है। ऐतेरेयब्राह्मण में लिखा है 'यज्ञोऽदक्षिणोरिष्यति तस्मादाहुः दातव्यैवयज्ञे दक्षिणा' दक्षिणा के बिना यज्ञ का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो जाता है।

[९] सर्व साधारण पुरुषों की आयु शरीर, समाप्ति के साथ समाप्त हो जाती है, परन्तु दक्षिणावान् पुरुषोंकी आयु उसके बाद ही रहती है। वे अपना नाम पीछे भी छोड़ जाते हैं।

[१०] जिस कामना से यज्ञ किया जाता है उसी कामना की पूर्ति उस यज्ञ से होती है। यदि धन संग्रह के लिए यज्ञ किया गया हो तो धन-प्राप्ति होगी और दिव्य भावों की पूर्ति के लिए, शिक्षा आदि की वृद्धि के लिए यज्ञ, का सम्पादन हुआ है तो इसी की पूर्ति होगी। यज्ञ का नाम इष्टकामधुक् है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन

प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।।गीता ३।१०।।

अर्थात् परमात्मा ने यज्ञ (संगति की प्रवृत्ति) सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके उनसे कहा, कि तुम इसके द्वारा जो कुछ चाहो उत्पन्न कर लो। यह यज्ञ तुम्हारी सब अभिलषित कामनाओं को पूर्ण करने वाला होवे।

यज्ञ तो एक शक्तिपुञ्ज है जो अच्छाई या बुराई दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। प्राचीन लोग इससे स्वर्गप्राप्ति भी करते थे।

जिन मनुष्यों को मोक्ष की, आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा नहीं होती, जो अपने सामाजिक जीवन की उन्नति के लिए रुचि नहीं रखते, जिनकी एकमात्र इच्छा अपने पास सब भोग-विलास का सामान एकत्रित करके स्वयं मजे उड़ाने की होती है, जो पुरुष इन्हीं में सुख मानते हैं उनसे इस मन्त्र में कहा गया है कि हे मनुष्य ! यदि तुम्हें मोक्ष आदि की भी जरूरत नहीं, केवल सोना, चाँदी, गाय, घोड़े तथा अन्न आदि की प्राप्ति की इच्छा है तो वह भी दक्षिणा से अच्छी तरह पूर्ण, होगी। जिस तरह कारखानों में, कम्पनियों में मामूली भाग खरीदकर मनुष्य उसका स्वामी साझीदार कहलाता है, घर बैठे उसके लाभ को लेता है, ऐसे यज्ञ करने वाला और उसकी दक्षिणा देने वाला अपने आपको उस चीज़ का साझीदार

(Share holder) बना सकता है। देखो ! वेद कहता है "इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्व दक्षिणैभ्यो ददाति" ऋग्वेद १०-१०७-८। अर्थात् यह जो सम्पूर्ण संसार है और इसका सुख है वह सब यज्ञार्थ किया हुआ त्याग उन दानी पुरुषों को प्रदान करता है।

मेरे प्यारे सज्जनो ! मैंने अपनी तरफ से दक्षिणा के बारे में कोई मनघड़न्त बात नहीं बतलाई। यह सब वेद भगवान की आज्ञा है। यह और बात है कि तुम इस रहस्य को न समझो क्योंकि तुम में जब तक वेद के ऊपर श्रद्धा नहीं होगी तब तक तुमको कुछ नहीं मिलेगा। मैं तुमको एक मोटा सिद्धान्त बता दूं। मनुष्य यात्री है और यात्राके लिए सवारी, पांव, साइकल, मोटर गाड़ी घोड़ा आदि होते हैं। शरीर मार्ग की यात्रा करने के लिए दक्षिणा एक ऐसी बढ़िया और उत्तम सवारी है कि इसके बराबर कोई सवारी नहीं, जैसे यज्ञ का शब्द छोटा और अर्थ बहुत हैं, अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक यज्ञ में आते हैं। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ, अतिथि यज्ञ, ये सब यज्ञ हैं और इनका नाम पञ्च महायज्ञ है। सब यज्ञों में ये बड़े हैं क्योंकि ये नित्य के हैं. जैसे शरीर में रस से वीर्य तक साथ धातु हैं नित्य के चलाने वाला सारे शरीर का आश्रय रक्त है ऐसे ही ये यज्ञों में महायज्ञ हैं और ऐसा ही दक्षिणा

अर्थ समझो शब्द छोटा पर अर्थ विस्तृत। किसी भी प्रकार के त्याग का नाम दक्षिणा है पर यह शब्द विशिष्ट इस यज्ञ के लिए है। अब अगर तुम्हारा सन्तोष हो तो बेहतर, अयन्था मैं और युक्ति देकर समय ही गंवाना समझता हूं। जब तुमको श्रद्धा वेद पर हो गई तो युक्ति भी सफल होगी। अब धनराज ने तुरन्त हाथ जोड़ कर कह दिया कि मेरी प्रतिज्ञा लो, मैं सहर्ष प्रतिज्ञा करता हूं।

महात्मा--अच्छा हाथ में पानी लो। यह संकल्प करने का, खुशी से स्वीकार करने का एक प्राचीन चिन्ह है बोलो–

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। य० अ० १ मं० ५

मैं इस यज्ञ की पवित्र वेदी के ऊपर सभा मण्डप में प्रभु को साक्षी करके सच्चे दिल से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं नित्यप्रति हवन करूंगा। प्रभु मुझे बल दें और आप सब आशीर्वाद दें कि मैं अपनी प्रतिज्ञाके ऊपर दृढ़ रहूं और अपने जीवनको सफल बनाऊं।

सब ने बधाई दी। अब धनराजने सबका सत्कार किया और महाराज जी से कहा कि महाराज भोजन तैयार है।

महात्मा–मेरा भोजन तो भक्त जी के यहां है। तुम ने कल कहा नहीं। जैसे यज्ञका निमन्त्रण दिया था ऐसे भोजन का भी देते। ऐसे तो मैं नहीं कर सकता।

लोग–क्या हुआ महाराज! भक्त जी के यहां आप रोज खाते हैं मैं न कह सका, भूल गया, अब क्या बिगड़ता है?

महात्मा–मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ता। संसार बिगड़ता है। ऋषियों, मुनियोंकी बनाई शैलीका निरादर होता है। तुम स्वाध्याय करने वाले होवो तो तुमको अपनी हिन्दू आर्यजातिकी सभ्यता, शिष्टाचार का पता लगता, और यह भी मैं तुमको बतला दूं कि जैसे दक्षिणा जरूरी है वैसे यज्ञ के ऊपर भोजन खिलाना भी यजमान के लिए जरूरी है। इसके भी मन्त्र सुन लो। गृहस्थीका सुखमय जीवन इसी में है।

मन्त्र–ओं भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति।

ऋ० म० १० सू० १०७ मं० ६।

अर्थात् यज्ञ में भोजन दान देने वाला सबसे पहले उत्तम गृहस्थ को जीत लेता है। वधू (जो कुलीन घराने की होती है) को जीत लेता है। ऐश्वर्य के अन्तर्लीन सार

की, वास्तविक सुख को जीत लेता है जो सुख बिना बुलाए आ जाता है। ऐसे और भी मन्त्र हैं। यह भी दक्षिणाका अंग है। अब मैं क्षमा चाहता हूँ : शिष्टाचार का बिगाड़ नहीं करता। आगे ख्याल रखना।

धनराज–फिर शाम को हवन भी मेरे घर और भोजन भी।

महात्मा–अच्छा ऐसा ही सही। अब सब लोग आराम करो। फिर शंका निवारण के लिए दर्शन देना।

अभी इस यज्ञ और दक्षिणाके विषयमें और भी बतादूँ कि जब बच्चा अभी पैदा होता है, जातकर्म संस्कार में उस एक दो घण्टेके नवजात बालकके कानमे जबभी मन्त्र पढ़े जाते हैं तो इसमें ही उसकी आत्मा पर यज्ञ, दक्षिणा के सम्बन्धमें विशेष तौर पर प्रभाव अङ्कित किया जाता हैं। देखो संस्कारविधि मन्त्र ॥८॥

ओं यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।

पा० काण्ड कं० १६

अर्थात् ऐ बालक ! ईश्वर करे, दक्षिणा सहित यज्ञ अमृत रूप से तेरी आयुके बढ़ाने वाले हों। और जब विवाह संस्कार होता है तो राष्ट्र-भृत्–की आहुतियों में

विशेष तौर पर यज्ञ दक्षिणा के लिये आहुति दी जाती है। मन्त्र नम्बर १०

ओं भुज्यु सुपर्णो यज्ञो गंधर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम। ताभ्यः स्वाहा। इदं दक्षिणाभ्यो अप्सरोभ्य स्तावाभ्यः इदन्न मम। पार० कां० १। कं० ५।

अर्थात्–सब भूतों को पालने वाला, अच्छे ज्ञान वाला पृथ्वी को धारण करने वाला यज्ञ है। इसके सम्बन्ध में प्रसिद्धि कराने वाली दक्षिणा प्रशंसा के योग्य है।

मनुस्मृति के अध्याय ११ श्लोक ३८ में लिखा है कि धन होते हुए प्रजापति देवता के निमित्त अश्व और अग्न्याधेय की दक्षिणा न देवे तो ब्राह्मण अनाहिताग्नि हो जाता है (अर्थात् उसको आधान का फल प्राप्त नहीं होता)।

श्लोक ३९ में है कि आदमी इन्द्रियोंको जीतकर श्रद्धासे दूसरा पुण्य कर्म करे, परन्तु थोड़ी दक्षिणासे यज्ञ न करे।

श्लोक नं० ४० में लिखा है कि थोड़ी दक्षिणा वाला यज्ञ इन्द्रियों, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्ति, सन्तान और आदि पशु इन सबको नष्ट भ्रष्ट करते हैं। इसलिये थोड़े धन वाला यज्ञ न करे।

ओ३म्

नवीं झाँकी

शंका-समाधान—

पीपल की ठण्डी छायामें महात्माजी पुस्तक लिये पढ़ रहे हैं और पढ़ते-पढ़ते आंख मून्द लेते हैं। थोड़ी देर बाद कुछ नोट सा करने लग जाते हैं। दूर वही सज्जन लोग ऐसा देखकर दिलमें विचार करने लगे कि महात्मा जी शायद हमारी शंकाओं का जवाब तैयार कर रहे होंगे या कुछ और विचार करते होंगे। चलते-चलते वहाँ पहुंच गये। नमस्ते, नमस्ते महाराज ! करके बैठ गये और पूछने लगे महाराज ! कैसा स्वाध्याय कर रहे हैं।

महात्मा—स्वाध्याय तो आप लोग करते हैं हम तो पुस्तक ही पढ़ रहे हैं।

सर्वजन——तो पुस्तक का पढ़ना कुछ और है ? और स्वाध्याय कुछ और होता है ?

महात्मा—मेरा तो यही ख्याल है। आप ही बोलिये आप अपना विषय देख आये ?

सज्जन—हमने जवाब लेना है। हमने कौनसा विषय तैयार करना था ? तैयारी तो आपको चाहिये।

महात्मा–फिर ऋषि ग्रन्थ ले आये हो ?

सज्जन–कौनसा ग्रन्थ लाते ?

महात्मा–जिसमें यज्ञ के बारे में स्वामी जीने कुछ लिखा हो। फिर यह न कहो कि महात्मा अपनी किसी पुस्तक से दिखाता है। तुम्हारा अपना ही लाया हुआ हो तो अच्छा है।

सज्जन--नहीं महाराज! यह सामने संस्कारविधि पड़ी है। इसी में से ही दिखा देवें।

महात्मा--लो यह किताब देखलो । संस्कारविधि संवत् १९७७ की है। यही ऋषिदयानन्द कृत है।

सज्जन--हां महाराज !

महात्मा--पृष्ठ ४ (१) "सब संस्कारोंके आदिमें निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ (स्तुति, प्रार्थना, उपासना) और अर्थ द्वारा एक विद्वान् व बुद्धिमान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थिर चित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करे और सब लोग इसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें"। (२) [पृष्ठ २२, पंक्ति १६-२०] और वे प्रसन्नता पूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म व दूसरी बात कोई भी न करें और अपने जल-पात्र से सब जने जोकि यज्ञ करनेको बैठे हों वे

इन मन्त्रों (आचमन वाले तीन मन्त्रों) से तीन-तीन आचमन करें।"

(३) पृष्ठ २३-ओं 'भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घरसे अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला उससे कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी-छोटी समिधा लगा के यजमान व पुरोहित उस पात्रको दोनों हाथोंसे उठा, यदि गर्म हो तो चिमटेसे पकड़कर अगले मन्त्रसे अग्नि आधान करे।"

अब बोलो मेरे सज्जनो ! मैंने कौन-सा पाखण्ड या पौराणिक रीतिसे गृह स्थापना कराकर पूजा कराई या गणेश थापा। कोरे शुष्क ज्ञानके स्वामिओ। तुम ही लोग तो वैदिक धर्म को बदनाम करने वाले हो। पुस्तकों को अलमारियों में बन्द रखते हो कि हवा न लगे। दीमक खा जाती है और दिमाग को तर्क के ताले से ऐसा बन्द किया है कि इसमें ज्ञानकी हवा न लगे। अश्रद्धा की दीमक खा जावे। सज्जन जन तो बड़े लज्जित हो गये। गर्व चूर-चूर हो गया। अब उनके चित्त की काया पलट गई।

बड़ी नम्रता से पांव पकड़ लिये और कहा कि महाराज ! हमारा अपराध क्षमा करना। हमने आपका निरादर किया, अपमान किया।

महात्मा–हम बहुत प्रसन्न हैं कि तुम्हारी भूल निकल गई । तुम्हारी अश्रद्धा श्रद्धा में परिणत हो गई । और अब तुम ऋषि दयानन्दके सच्चे भक्त बन सकोगे आर्यसमाज के सच्चे सेवक बनोगे । यदि तुम चुप रहते और यही समझ कर कि महात्मा अशुद्ध कह रहा है, टाल देते, तो तुमको यह लाभ न होता ।

उनमें से एक सज्जन बोला–भगवन् ! क्या कारण है कि पण्डित लोग आते हैं जलसों में, संस्कारों में इस विधि से नहीं कराते । क्या उनको भी ज्ञान नहीं है जैसा कि हम को नहीं था ?

महात्मा–नहीं, उनको तो ज्ञान है परन्तु वे क्या करें उनको आप लोगों ने नौकर वेतनभोगी समझा हुआ है और जैसा कि यजुर्वेद में ऋषिदयानन्द जी महाराज भाष्य करते लिखा है कि अध्यापक और उपदेशक का दर्जा गुरूका है, जो तुमको अन्धकार से प्रकाश के रास्ते पर ले जाता है वही गुरु है । गुरु कोई धारण करने से नहीं बन जाता । हर एक वस्तु प्रभु की जो तुम को ज्ञान देती है, वही गुरु है । आर्यसमाजी लोग गुरु शब्द से चिढ़ गये हैं । महर्षि का मतलब तो गुरुडम का भाव हटाने का था ना कि यह कि तुम बिन सीखे ही ज्ञानवान कहलाने लग जाओ । जलसों में १२–१ बजा देते हैं

उपदेशकों का खून चूस लेते हो। प्रातः वे कब उठें ? कब सन्ध्या हवन करें ? उधर तुम्हारा प्रोग्राम है–६ बजे से ७ बजे तक हवन यज्ञ, ७।। तक भजन, ७।। से ८।। तक धर्मोपदेश। परन्तु जब रात को छोड़ा ही १२ बजे १ बजे तो तुम लोग भी सोये दो बजे। अब तुम भी ७ बजे जल्दी–जल्दी आये और पण्डित जी भी। अब वक्त रहा नहीं। तुम से कैसे विधिपूर्वक करायें और कईकई पंडित ऐसे हैं जो अब भी पूरी तो नहीं, पर श्रद्धा से करते हैं। परन्तु हर जगह तो वे नहीं पहुंच सकते। दूसरे, यह यज्ञ-विद्या पुस्तकीय विद्या नहीं है कि हर एक पढ़कर इसे ऐसा करने लग जावे। जिसके पूर्व संस्कार ऐसे होंगे चाहे वह विद्वान् है या थोड़ा पढ़ा है, उसको यज्ञ के ऊपर श्रद्धा ही ऐसा प्रकाश कर देती है जैसे सूर्य की किरणें। यह अनुभवी याजक लोगों से ही सम्बन्ध रखती है।

पुरोहित

वही सज्जन––यह तो ठीक है, हमारा ही दोष है। पर जिन बड़ी समाजों में स्थिर पुरोहित रहते हैं वे भी तो कुछ नहीं समझाते।

महात्मा––अब मुझे कहते तो लज्जा आती है कि उन समाजों ने पुरोहित किस भाव से रखे हुए हैं ? केवल संस्कारोंके कराने और दान-चन्दा एकत्र करने के लिए और

रविवार का सत्संग लगाने के लिये। उन पुरोहितों का य
हाल है कि एक एक दिनमें तीन-तीन चार-चार संस्का
आ जाते हैं तो वे कहते हैं हम सब निपटा आये हैं। अ
जो निपटान निपटाने का भाव है वह कब यज्ञ या संस्का
हो सकता है ? समाज वालों को हर मास में काफी दा
पुरोहित ला देता है, अतः इनको प्यारा लगता है और
प्रशंसा करते हैं कि अजी ! हमारा पण्डित बहुत का
करता है। दक्षिणा से भी वे हिस्सा लेते हैं और कहीं
कहीं तो संपूर्ण दक्षिणा समाज की होती है। पुरोहितों को
आजीविका चाहिए, समाज को दान धन। वेद का प्रचार
हो, न हो। उनको स्वाध्याय का अवकाश नहीं। सारा
दिन साइकल पर चढ़े चन्दा संग्रह करते और संस्कार
यज्ञ कराते रहते हैं और जहाँ पुरोहित नहीं हैं वहां जो
कोई दुकानदार या बाबू संस्कार विधि से मन्त्र पढ़ना
जानता है उसे कह देते हैं कि महाशय जी ! हमारा यज्ञ
या संस्कार कराना है। उस बेचारे को बड़ी मुश्किल हो
जाती है। अपना काम छोड़े तब करावे।

अब जब उसे अवकाश का समय निकलता है उस
समय झटपट करा देता है। ऐसे आदमी यदि व्याख्या भी
करें, या विधि से श्रद्धा से करावें, अगर उनको ढंग आता
है तो वे शर्म के मारे नहीं करते उनका जीवन लोगों की
दृष्टि में होता है। लोग फिर उसे आडम्बरी समझ लेते

हैं। इधर बाबू सारा दिन रिश्वत बटोरता रहा, उधर जिन कपड़ों से गया था उन्हीं कपड़ों से दफ्तर से आकर निर्धनों का खून जेब में डाले हुए यज्ञ की वेदी का पुरोहित आ बनता है। या इधर बजाज या दुकानदार सारा दिन असत्य व्यवहार कर, कम माप, कम तोल, आकर बच्चे का संस्कार कराता है। बच्चे पर किसका असर पड़ेगा? मन्त्रों का या उस आदमी का?

सो तुम दोनों बातें संस्कार विधि से सुन लो:—
संस्कार विधि पृ० ५५ पद टिप्पणी—

"धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधिको पूर्णरीतिसे जानने हारा, विद्वान्, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपरि गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।" 'गोपथ-ब्राह्मण पृष्ठ १२५-अश्लील कुमार्गी पुरुष से यज्ञ न कराना चाहिये।"

(२) शास्त्रकार तो इतने आग्रहपूर्वक अनुरोध करते हैं कि जब बच्चा पैदा होवे उसको कोई दुष्ट दुराचारी, कुरूप अत्याचारी आदि ऐसे पुरुष या स्त्रियां दर्शन न देवें। इनका उस नन्हे बच्चे के कोमल हृदय पर, आत्मा पर गन्दे परमाणुओं का प्रभाव बैठ जाता है।

कई जगहों पर ऐसा भी देखा गया है कि पुरोहित से पीर(गुरु) भिश्ती, रसोइये, गधे का सा काम लिया जाता

है । उपदेश और संस्कार में तो उसे पुरोहित बनाकर गुरु पीर के बराबर समझा जाता है । और जब कोई अधिकारी समाज में जाता है तो कहता है--पण्डितजी ! आपके रहनेका क्या लाभ ? गर्मी की ऋतु हैं । कोई आया गया पानी भी न पी सके । आपको तो घड़े भी रखने चाहियें पुण्य कमाना चाहिये । वहाँ पर भिश्ती का काम लिया जाता है । कहीं अधिकारी लोग कहते हैं--पण्डित जी ! हमारी रोटी बाजार या घर से लेते आवें और बहुधा तो अपना बिस्तरा ट्रंक या बैग स्टेशन पर छोड़ आने के लिये भी कह देने से नहीं चूकते ।

अब उन सज्जनों में से एक बोला---महाराज फिर कल का यज्ञ अवश्य मेरे घर पर हो । मैंने कभी यज्ञ नहीं किया, कृपा करके मुझे सब निर्देश सुना देवें कि मैं क्या क्या सामान और सामग्री रक्खूं ? ऐसी पूरी-पूरी विधि बतलावें कि मैं उसी के अनुसार बनवा लूं ।

महात्मा ने स्वीकार किया और सामग्री आदि सम्बंध में सब कुछ बता दिया ।

—०—

ओ३म्

दसवीं झांकी

हवन कुण्ड और यज्ञ के पात्र

आज का दिन कैसा सुन्दर है कि समाज का चपरासी कागज और घण्टा हाथमें लिये मुनादी कर रहा है कि "महाशय प्रेमचंद के शुभ गृह पर एक बृहद् यज्ञ होगा। सब प्रेमी नर-नारी दर्शन देवें।" इधर प्रेमचंद महात्माजी को साथ लेकर अपने गृह में गया और निर्देश मांगे। ईश कृपासे काम करने वाले नौकर चाकर सब मौजूद थे।

महात्मा–हवन कुण्ड कहाँ बनाना चाहते हो ?

प्रेमचंद–मेरा मकान तो सारा पक्के फर्श का है। लोहे का हवनकुण्ड रख लेंगे। छोटे बड़े हवनकुण्ड मौजूद हैं बहुत बड़ा भी बनवाया जा सकता है।

महात्मा–लोहे के हवनकुण्ड में हवन तो हो जायगा पर जो अभिप्राय शास्त्रों का है, वह पूरा नहीं हो सकता है।

प्रेमचंद--महाराज! यहां तो सब लोग लोहे तांबेके हवनकुण्ड में हवन कर लेते हैं।

महात्मा--धातु के हवनकुण्ड में हवन कर लेने में दोष

तो कोई नहीं है, पर यह है असल में लाचारी के समय वा यात्रा में।

प्रेमचन्द--फिर तो गढ़ा खोदना पड़ेगा और मकान भद्दा मालूम होगा।

महात्मा--वाह जी वाह! यज्ञ के लिये बस तुम्हारी यही श्रद्धा है? जब तुम कुण्ड के स्थान पर भाव ही गढ़े का रखते हो तो तुम्हारे यज्ञ करने का लाभ ही क्या? यज्ञशाला से तो मकान सुन्दर दिखाई देते हैं, सौन्दर्य बढ़ जाता है। और तुम्हें भद्दा मालूम देगा क्योंकि भाव तुम्हारा उत्तम नहीं है। वही आकर तुम्हारे दिमाग से निकल कर आँखों के सामने आ रहा है। धन अपना स्वभाव अवश्य दिखाता है। तुम भी सच्चे हो। तुम्हारा कोई दोष नहीं। बारीक से बारीक मलमल के कपड़े के साथ जब माया लग जाती है तो अकड़ जाता है। भला तुम तो लिखे पढ़े मनुष्य हो। वेद भगवान् स्वयं साक्षी देता है:--'नकी रेवन्तं सख्याय विंदसे' अर्थात् हे इन्द्र! धन वाले पुरुष को तू कभी नहीं सख्य के लिये, सख्य भाव के लिये (सखा, मित्र, दोस्त) पाता है क्योंकि 'पीयन्ति ते सुराश्वः' वे ऐश्वर्य समृद्ध धनमत्त पुरुष-हिंसन करते हैं (ऋग्वेद ८।२१।१४, सामवेद उत्तरा० ६। २। ४, अथर्ववेद २०। ११४। २)। धन में ऐसा नशा होता है कि उससे

मदोन्मत्त हुआ पुरुष किसी कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को नहीं देख सकता। जगत् में विरले ही धन-समृद्धपुरुष होंगे जिन्होंने कि दूसरोंको बिना सताये धन प्राप्त किया हो। इसलिये जैसा व्यवहार होगा वैसा विचार होगा। अगर तुम लोग स्वाध्याय करने वाले होओ तो तुमको धन कमाईके सिवाय कोई और ऐसा विचार भी कभी हो कि प्रभुने जो हमपर इतनी कृपाकी है, हमको धनपति बनाया है, उसको धन्यवाद देनेके लिये, उसकी महिमा गान करनेके लिये कोई सत्संग किया करें। मकान पर तो दस-बीस हजार रुपया लगा दिया। बड़े-बड़े इंजीनियरों से नक्शे बनवाये। वायु, प्रकाशका बड़ा ख्याल रक्खा। पाठशाला, शौचालय, स्नानघर, कार्यालय, विश्रामशाला बनवाए। पर यज्ञशाला, उपासनालय का विचारही नहीं आया कि धनका दाता दानी प्रभु भी हमारा कुछ लगता है या नहीं। तुम ऋषि दयानंदके भक्त कहलाते हो। जरा संस्कारविधिकी शाला-कर्मविधिमें पृष्ठ २३०-२३१ पर अथर्ववेद मंत्र देखोकि जिसपर आर्य जातिको अभिमान है। अथर्ववेद काण्ड ९, सूक्त ३। मंत्र ७॥

ओ३म् हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः। सदो देवानामसि देविशाले॥

अर्थात् "उस घर में एक-एक होम करनेके पदार्थ रखनेका स्थान, अग्निहोत्रका स्थान, स्त्रियोंके रहनेका

स्थान और पुरुषों व विद्वानोंके रहने-बैठने, मेल-मिला करने और सभाका स्थान तथा स्नान, भोजन ध्यान आ का भी पृथक्-पृथक् एक-एक घर बनवायें।"

प्रेमचन्द–बहुत अच्छा ! अब तो लाचारी है। मु पता नहीं थाकि वेदोंमें और विशेषतया संस्कारवि भी हमारे महर्षि जगद्‌गुरुने अपार कृपाकी कि सब कु लिख दिया। हम स्वाध्याय नहीं करते इसलिये वंचित हैं आप जरा दूसरे कमरे में चलिये। वहां पर अंगीठी ब हुई है, वह भी यज्ञकुण्ड का काम देगो" महात्मा और व अन्दर गये तो क्या देखा कि सर्दीकी ऋतुके लिये ए आग सेकने का गोल और बहुत गहरा गढ़ा बना हुआ है

महात्मा–यह अग्निकुण्ड तो आगके लिये बना हु है यज्ञकुण्ड या हवनकुण्ड नहीं है। फिर दूसरे कमरेमें गये वहां आयताकार बना हुआ था। इसमें भी आ जलाई जाती है जब अतिथि आते हैं।

महात्मा–यहभी है तो अग्निकुण्ड पर हवनकु नहीं है।

प्रेमचन्द–बहुत खेद है कि आपको कोई कुण्ड पस नहीं आता। क्या इसमें हवन नहीं हो सकेगा या आ जलनेसे इन्कार करेगी या आहुति न पड़ेगी ? लोढ़ी

मौके पर गोलकुण्ड कुएँकी शक्लके बनाये जाते हैं और इन कुण्डोंमें एक और विशेषता है कि ये पक्के हैं।

महात्मा--हवनकुण्ड अनेक प्रकारके बनाये जाते हैं। उनकी आकृतियों और लम्बाई, चौड़ाईमें भी भेद होता है। आकृतियोंका वह भेद विस्तार (लम्बाई-चौड़ाई) सामग्रीके परिमाण और यज्ञके उद्देश्योंके विचारसे होता है। तैत्तिरीय संहिता आपस्तम्ब और अन्यान्य गृह्यसूत्रोंमें बहुतसे कुण्ड विशेष पक्षियोंकी आकृतिके, अनेक कछुएकी शक्लके, बहुतेरे यूक्लिडके आकारोंके दिये हैं। उदाहरणार्थ त्रिकोण, समचतुष्कोण, अनेकशः आदमीके खड़े होकर पांव की ऐड़ीसे ऊपर हाथ फैलाये उंगलियों तकके होते हैं। भिन्न-भिन्न बीमारियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी समिधा, भिन्न-भिन्न प्रकारकी सामग्री और उनका नाप भिन्न-भिन्न हो जाता है। पक्के कुण्डोंसे वह लाभ नहीं होता जो कच्चेमें होता है। ऋषि दयानन्दजी महाराजने संस्कारविधिमें लिखा है (पृष्ठ १६-१७) "नित्य मार्जन तथा गोबरसे लेपन करें।" कच्चे कुंडमें अग्नि सामग्री घीके परमाणुओंको जहां ऊपर ले जाती है वहां भूमिके नीचे भी ले जाती है और वे परमाणु ऐसे सुरक्षित रहते हैं कि जिस घरमें प्रतिदिन हवन होता रहे उस घरमें प्लेगका चूहा नहीं पैदा होता चाहे आस-पा के घरमें निकलते हों। वह घर मलेरियाके कृमियोंसे बचा रहता

है और अनेक बीमारियोंसे बचाव रहता है। अगर यज्ञका कमरा पृथक् हो और उसमें विधिसे यज्ञकी अग्नि प्रदीप्त हुआ करे और मलेरियाके बुखारका आदमी उस गृहमें बैठ जावे तो बुखार उतर जावेगा !

प्रेमचन्द--तो क्या रोगकी चिकित्साभी हवनके द्वारा हो सकती है ?

महात्मा--कोई रोग ऐसा नहीं जिसकी चिकित्सा यज्ञके द्वारा न हो सकती हो। गृहस्थी बनते समय अर्थात् विवाहके समय इसके लिए ६ आहुतियां दिलाई जाती हैं जिनमें वह प्रतिज्ञा करता है कि हे देवी ! मैं तेरे सब रोगों को इसी हवनसे दूर कर दूँगा।

प्रेमचन्द--विवाहमें हमें तो किसीने बतलाया ही नहीं। कहां पर लिखा है ? कृपा करके बतलायें तो सही।

महात्मा--(देखो संस्कारविधि विवाह संस्कार पृ० १६४)। अर्थात् ऐ कन्या ! तेरी रेखा (मस्तक की रेखाओंके मिलापके स्थान) में, आंखों की पलकोंमें, नाभि आदिकी नाड़ियोंमें जो बुरे चिह्न होंगे, जो बालोंके सम्बन्धमें बुराई होगी, चलनेमें खराबी होगी, जो स्वभावमें बोलने हंसनेमें दोष होगा, जो दोष दातों में, हाथोंमें, पैरोंमें होगा, टांगों में, गुप्त इंद्रिय में, जानुओं में दूसरे जोड़ोंमें और ऐ देवी ! तेरे सब उपर्युक्त अंगोमें जो रोग होंगे उन सबको मैं पूर्ण आहुतिके साथ दूर करनेकी, मिटा देने

की प्रतिज्ञा करता हूँ। अनगिनत अज्ञात व्याधियों के कृमि अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में व्यक्तिके जोड़ों, रोमकूपों, रक्त में रहते हैं। इस होमके द्वारा सभी कृमि और पूर्वरूप जिनसे बादमें बड़े-बड़े भयानक रोग पैदा होते हैं; दूर हो जाते हैं।

प्रेमचन्द--अहा ! यह तो ऋषिने महा उपकार किया पर हम उसके आचरणहीन अनुयायी हैं जिनका अभी तक ज्ञानही नहीं। तो क्या और भी रोग-क्षयरोग, चेचक और स्त्रियों के गर्भाशयके रोगों के भी इलाज हो सकते हैं?

महात्मा--हां, हां, मैंने तो कहा है, कि सबकी सब बीमारियोंके इलाज इसी यज्ञसे हो सकते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति यज्ञकर्मसे ही है। इसके बिगड़नेसे नाश है। क्यों ! किसीको बीमारी है ?

प्रेमचन्द--मेरे एक मित्रको क्षयरोग है। चेचकका तो प्रायः खतरा रहता है। जब कहीं हुई, बच्चोंको हवासे हो जाती है मैं अपने मित्र को कभी आपके पास लाऊँगा। आप कृपा करके मुझे पूरे निर्देश दे देवें ताकि स्थाई यज्ञ-शाला बनवा दूं। किस प्रकारकी हो, किस स्थान पर हो ?

महात्मा--स्थान तो तुम स्वयं चुनलो। इतना मैं बतला देता हूं, जो महर्षिने आज्ञा दी है। "यज्ञ उस जगह

करना चाहिये जहां किसी प्रकार की गन्दगी न हो,
मल न हो और जहां साफ और खुली हवा बिना बा
के आसके । यज्ञशालाकी परिधि अधिक-से-अधि
१६ हाथ चौकोर, कम-से-कम ८ हाथ १६ हाथ के चौक
में चारों ओर २० स्तम्भ । ८ हाथ वाली में १२ ख
लगाकर उनपर छाया करें। छाया की छत १० हा
ऊंची हो । यज्ञशाला के चारों तरफ चार दरवाजे हों
चारों ओर झण्डियां, पवित्र प्रभाव डालने वाले चि
मन्त्र हों । हरे सुन्दर पत्ते बांधें । हवन कुण्ड चारों ओ
से हल्दी, मैदे आदि की रेखाओं से सजाया हुआ हो
हवन कुण्ड आहुति की मात्रा के अनुसार लम्बा चौड़ा हो
नीचे एक चौथाई रह जावे । सिद्धान्त यह है कि नि
कर्म के लिये ८ अंगुलवाला और सामान्य प्रकरण आ
करना हो, तो आधा हाथ । अगर इससे बड़ा यज्ञ-गाय
या यजुर्वेद का यज्ञ करना हो तो सवा हाथ । अगर चा
वेदों का करना हो तो दो हाथ चौकोर । पर जहां
और मोहनभोग सामग्री की आहुति देनी हो तो प
हजार आहुति के लिये दो हाथ चौकोर रखें । चार हा
का चौकोर कुण्ड एक लाख आहुतिका काम दे सकता है
परंतु यह याद रक्खो कि ऐसे बड़े यज्ञों में हाथ से स्रु
पकड़ कर आहुति देना मुश्किल हो जाता है । गर्मी
बैठा नहीं जाता । जितने हाथ का कुण्ड हो उतने हा

कुण्ड से दूर आसन बिछाना चाहिये, इससे सेक नहीं लगता ; भागना भी नहीं पड़ता क्योंकि जहां-जहां किसी का आसन जम गया वहांसे भागना या मुँहके सामने रूमाल, किताब या कोई चीज देना मनको विचलित करता है। चीजें रखते समय हवाकी दिशाको देख लेना चाहिये ताकि दीपक न बुझने पावे या सामग्री चरु न उड़ने पावे। अब सब बातें नोट कर लेवें।

[१] प्रातः हवनसे पहले आप और आपका परिवार स्नान आदिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर यज्ञशाला में आ जावे।

[२] समिधा सुन्दर और उत्तम एक टोकरीमें धरा देवें।

[३] सामग्री अपनी कूटनी हो तो अच्छी-अच्छी नई औषधियां लेवें। अगर बाजारसे बनी बनाई लेनी हो तो देख लेना चाहिये कि पुरानी न हो, अच्छी तरह बारीक पीसी गई हो और उसमें चारों प्रकार की होम की औषधियां सुगंधित, पुष्टिकारक, मिष्ट, और रोगनाशक डाली गई हों।

[४] घी गरम करके छान रक्खें और कुछ घी सामग्री में मिला देवें। सामग्री शुष्क न रहे अन्यथा जुकाम व नजला पैदा करेगी।

[५] पञ्चपात्र-आचमनपात्र, घी का बर्तन, स्रुव सामग्रीकी थाली और एक पात्र घीके डालनेके लिये तैयार रखें।

[६] सबके सामने जलका पात्र पृथक्-पृथक् हो और सामग्रीकी थाली भी।

[७] एक थाली में समिधा छोटी-छोटी चुन देवें।

[८] दीपकभी बना रक्खें। प्रातः होतेही यज्ञ शुरू कर दिया जायगा।

॥ ओ३म् ॥

ग्यारहवीं झांकी

संकल्प-आचमन-अंगस्पर्श मन्त्र व्याख्या

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु।

अर्थ--(मे) मेरे (आस्ये) मुखमें (वाक्) वाक् इंद्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु।

अर्थ--(मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका के छिद्रों में (प्राणः) प्राण आयु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु।

अर्थ (मे) मेरे (अक्षणोः) नेत्र गोलकों में (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु।

अर्थ (मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु।

अर्थ– (मे) मेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल, शक्ति (अस्तु हो।

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु।

अर्थ (मे) मेरी (ऊर्वोः) जंघाओं में (ओजः) वे (अस्तु) हो।

ओं अरिष्टानि मे अंगानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु

अर्थ– (मे) मेरा (तनूः) देह (मे तन्वा) मेरे देह के (अंगानि) अवयव (सह) साथ ही (अरिष्टानि) अनु पहत अबाधित (सन्तु) हों।

वाह वाह ! प्रेमचन्द जी का घर शरीरधारी प्रेम बना हुआ है। घरके बाहर झंडियां और 'ओ३म्'का झण्डा आने वाले सज्जनों को इस स्थान पर प्रकाश देकर ठहरा रहा है। दरवाजेके ऊपर 'स्वागतम्'का मोटो लगा है। ड्योढ़ीमें जूता उतारनेका स्थान पृथक् है, नलका

खुला हुआ है। तौलिया और अंगोछा धरा हुआ है। सब कोई अपने आप जूता उतार कर चरण आदि धो तौलिये से पूंछ कर अन्दर यज्ञ की वेदी पर जो कमालकी सजी हुई है, जो बैठता है। मण्डपमें केले, अलियर, भांति भाँतिके गुच्छेदार फल फूल चारों तरफ लटक रहे हैं। ऊपर चंदवा लाल हलवानी कपड़ेका टंगा हुआ है। कुण्डके चारों ओर चित्र, बेलबूटे और सुन्दरता हवन करने वाले के हार्दिक प्रेमको प्रकट कर रहे हैं। चारों तरफ जलके पात्र, सामग्री, घी, समिधा ढंगसे रखे हुए हैं। एक कलश भी स्थापित किया हुआ है। मोटो बड़े आकर्षण करने वाले लगाये हुए हैं। देखने वाले देख देख प्रसन्न होरहे हैं। इतनेमें महात्मा जी भी आ गये और लोगों में आकर तुरन्त बैठ गये।

प्रेमचन्द--महाराज ! आप अपने आसन परही विराजिये। आपका स्थान तो पूर्वमें बनाया हुआ है।

महात्मा-ठीक हैं। मैं इसलिये अपने आप नहीं बैठा कि मर्यादा आप लोगोंको बतलानी है।

प्रेमचन्द-वह क्या ?

महात्मा-देखो संस्कारविधि पृष्ठ २३ यजमानको कहना चाहिये 'ओं आ वसोः सदने सीद' (अग्निके स्थानमें बैठिये] यही सभी सभ्य देशोंकी सभ्यता है। अ

भी किसी उत्सवके प्रधानको सभापतिकी कुर्सी पर बिठाना हो तो अत्यन्त प्रेम श्रद्धा और शिष्टतापूर्वक रीतिसे प्रार्थनाकी जाती है और वह धन्यवाद सहित उत्तर देकर स्वीकार करता है। इसलिये पुरोहित भी कहता है 'ओं सीदामि'।

अब दूसरी बात यह है कि जिस प्रयोजन, मनोरथके लिये यज्ञ किया जाताहो उस प्रयोजनको यजमान कह देवे ताकि पुरोहित उसी विधिसे आरम्भ करे। जिस-जिस क्रियाको विशेष रूपमें उसने करना होगा उसीके अनुसार करायेगा क्योंकि मैं कह चुका हूं कि संपूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करने वाला यज्ञ होता है, जिसे इष्टकामधुकका नाम दिया गया है। अब बोलिये यह कैसा यज्ञ है ?

प्रेमचन्द–मेरा कोई विशेष मनोरथ तो है नहीं। निष्काम भावसे कर रहा हूं।

महात्मा–अच्छा जैसे मैं बोलूँ वैसा बोलते जाओ चूंकि श्लोक तुम नहीं जानते।

ओ तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे सं १९९१ वैक्रमाब्दे दक्षिणायन ग्रीष्मर्तौ आषाढ़मासे शुक्लपक्षे शुभ दिने वारे रोहिणी नक्षत्रे लग्न...ब्रह्ममुहूर्ते अहमद्य विष्णु-प्रीत्यर्थं मंगलकर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

यह सब यजमाननें बोला । अब महात्मा "वृतोऽस्मि" बोले ।

प्यारे सज्जनो ! बजाय इसके कि आप लोग शंका पड़ें रहो और दिलही दिलमें खिजते रहो यही बेहत समझता हूं कि आप लोगों की शंका निवृत्तही कर डालूं फिर यज्ञकी कार्यवाहीको आरम्भ करूं ताकि आपकी शंका विघ्न पैदा करनें वाली न बनी रहे और आपका चित्तभी हमारे अनुकूल बन जावे ।

लोग—बड़ी कृपा । आपने हमारे मनको ठीक जान लिया है। हम तो आक्षेप कियें बिना बिलकुल न रहते और शायद हमारी श्रद्धा भी न जमती ।

महात्मा—महर्षि दयानन्द जीने बड़ी कृपाकी कि ऋग्वेंदादि भाष्यभूमिकामें वेंदोंकी उत्पत्तिके विषयमें पृष्ट २२ सें २४ पर ऐसा लिखा है, श्लोक तो संस्कृतमें पृष्ठ २२ पर लिखा है और पृष्ठ २५ पर लिखा है कि यहां व्यवस्था सृष्टि और वेंदोंकी उत्पत्तिके वर्षोंकी ठीक है और सब मनुष्योंको इसीको ग्रहण करना योग्य है क्योंकि आर्य लोग नित्य प्रति 'ओ३म् तत सत्' परमेश्वरके तीन नामोंका प्रथम उच्चारण करके कार्योंका आरम्भ और परमेश्वरका ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्दमें आज पर्यन्त परमेश्वरकी सृष्टि और हम लोग

बने हुए हैं, और बही खातेकी न्याई लिखते-लिखते पढ़ते-पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्म-दिनसे दूसरा पहरके ऊपर मध्याह्नके निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनुके भोग होनेको बाकी हैं उतनेही में बाकी रहे हैं। इसलिये यह लेख है। (श्रीब्रह्मणे द्वितीय प्रहरार्द्धे) 'यहां वैवस्वत मनुका वर्तमान है। इसके भोगमें यह (२८) अठ्ठाईसवां कलियुग है। कलियुगके प्रथम चरणका भोग हो रहा है। तथा वर्ष ऋतु, अयन मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समयमें हमने अमुक काम किया था और करते हैं।

अब आप लोगोंने समझ लिया होगा कि यह संकल्प पढ़ना निरर्थक नहीं है। आर्य हिन्दू जाति पर अब तक कई हमले हुए। उनके पुस्तक जलाये गए। आर्य विद्वानोंने ज्योतिष शास्त्रकी इस जरूरी बातको कंठस्थ कर लिया और नित्य प्रति पढ़ने से वेद और सृष्टिकी उत्पत्तिका ठीक ठीक ज्ञान सामने रहा। अन्यथा जैसे पुस्तक न मिलते और दूसरे मत वाले सृष्टिको कोई पाँच हजार बरस, कोई लाख बरस और कोई करोड़ बरससे मानते हैं, आर्य जाति अपने वेदोंके आदि सृष्टि में ईश्वरीय होनेंका प्रमाण न दे सकती। सनातन धर्मी पण्डित अब तक हर कार्यके आरम्भमें पूरा संकल्प पढ़तें हैं। चाहे प्रथा बिगड़ गई है कि टके कमानेका साधन बना लिया है तथापि इस लोभ

नें जो वास्तविक ज्ञानको नष्ट न होनें दिया और बचाये रक्खा—यह सराहनीय बात है। स्वामी जी महाराज ने संस्कारविधिमें संक्षेपतः सबसे अन्तके शब्द 'अहमद्य उक्त कर्मकरणाय भवन्तं वृणें' लिख दिये कि आर्य लोग ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाको पढ़कर अपनें आप इस संकल्पको पूरा कर लिया करेंगे। बड़े-बड़े यज्ञों में जो पुरोहित पद को ग्रहण करके बिलकुल नहीं पढ़तें उन पर प्रमादका दोष लगाया जा सकता है जो अधूरा पढ़ते हैं वें प्रमादी नहीं, वे या तो लकीरके फकीर हैं या स्वाध्याय से वञ्चित।

पूरा संकल्प पढ़नेसे वैदिक सभ्यताकी रक्षा होती है। दूसरा 'विष्णुप्रीत्यर्थम्' पर भी कुछ-कुछ सन्देह होगा। शास्त्रकार कहते हैं कि 'यज्ञो वै विष्णु' यज्ञ विष्णु का स्वरूप है। परमात्माके तीन गुणोंके तीन नाम है। पालन पोषण करने और स्थिति कायम रखनेमें इसका नाम विष्णु है और यज्ञसे पालन पोषण और ब्रह्माण्डकी स्थिति है। इसलिये अवसर की उपयुक्ततासे विष्णुप्रीत्यर्थम् कहा गया है।

लोग—महाराज! बहुत प्रसन्न किया। हमें अब यह ज्ञानहो गया है। कि हम भूले हुए हैं। हम व्यर्थ सनातनियों पर आक्षेप करते है। ऋषिने तो सब कुछ लिख दिया है। अब हम जरूर स्वाध्याय करेंगे।

महात्मा—अच्छा अब कार्यवाही आरम्भकी जाती है। जैसा पीछे समझाया जा चुका है वैसा आचारण करें।

प्रार्थना प्रारम्भ हुई। सब मग्न हो गये। प्रार्थना स्वस्तिवाचन शान्तिप्रकरण हो चुकने के बाद जब आचमन का समय आया तो महात्माजी ने कहाकि मेरे साथ-साथ जैसा मैंने पीछें समझाया था, वैसा संकल्प करते हुए करना।

लोग—भगवन्! प्रथम तो बहुत लोग नये हैं और जिन्होंने पहले सुना भी हैं वे भूल गये।

महात्मा—निःसन्देह ऐसा होगा। परन्तु उधर देखो दिन बहुत चढ़ गया है सब लोगोंने कामकाज करने है अच्छा मैं जो पहले बता चुका हूँ। वह तो नही दुहराऊँगा। अब कुछ नया बतलाऊँगा और आज.आचमन की ही व्याख्याके बाद और कोई व्याख्या न होगी। फिर कभी होगी।

लोग—बहुत अच्छा!

आचमन मंत्र व्याख्या

महात्मा—(जल हाथ की हथेलीपर लेकर) [१] जल अमृत है क्योंकि शान्ति देता है। दर्शन और स्पर्शन

ोत पहुंचाता है [२] जल अमृत है। हिम (बर्फ) द्रव
ोर वाष्प (भाप) के रूपमें सदा विद्यमान रहता है।
वाहा' करने पर सच्चे दिलसे इसकी महिमाको जो जान
र समझोकि मनुष्यभी ऐसे सत्, रज, तमके वेषको
दलता है। जीवात्मा स्वयं अमृत है। परमात्मा अमृतोंका
मृत हैं। जल, जीव, परमात्माका सम्बन्ध समझो। जो
मृत होता है उसमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता।
अपने जीवनको इसी अमृतके [उपस्तरण] बिछौने और
अपिधान] ओढ़नेमें लपेट डाल। जिस तरह बर्फको
म्बलोंमें लपेटकर बाहरकी गर्मी सर्दी से बचा लेते ऐसेही
अपने आपको इस अमृतभावके कम्बलों में लपेटकर
रक्षितकर। साथही अपना निरादर कभी मतकर। दूसरी
वस्था में सदा परोपकारके लिये बहता रहे, नदी होकर
लता रहें। आगे चलने वाले दोषों [गढ़ों] को भरता
र सतह समतल रखता चला जा। तीसरी अवस्थामें
ग्निदेवके संगके ऊपर-ऊपर अमृत लोकको चढ़ता चला
।

अब तीसरा आचमन है ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः
यतां स्वाहा। हे परमेश्वर! मेरे अन्दर सत्य स्थिर
े। कभी असत्यका व्यवहार न करूँ। मुझे यश प्राप्त

हो। संकोचको मैं छोड़कर प्राणीमात्रको गले लगाऊँ। मेरे अन्दर दिव्यशक्ति स्थिर रहे। मेरे पास लक्ष्मी हो, ऐसी कुलक्षणी लक्ष्मी न हो, निस्तेज लक्ष्मी न हो, जिसके होते कोई प्रार्थी मुझसे सहायता न पा सके। अपनी लक्ष्मी से दूसरेका अहित न करूँ। जैसे जल नीचेसे ऊँचे तकके पालन-पोषणमें काम आता है ऐसे मेरी सम्पत्ति दीन-दुःखियों, दरिद्रोंके पालन और सेवामें लगे। ऐसी प्रार्थना करते हुए एक बार ऐसी भावना करोकि मैं यश और सम्पत्तिको सत्यके साथ धारण करूँ। झूठे यश और खोटी सम्पत्तिका स्वामी न कहलाऊँ। सत्यसे प्राप्त की हुई एक कौड़ीको करोड़ों खोटे धनसे बेहतर समझूँ और समय आनेपर मैं सम्पत्तिको यशके लिये और यशको सत्यके लिए बलिदान करदूं, स्वाहा करदूँ और सत्यके ऊपर अपने आपको ['स्व-अपने आप-'आहा' त्याग] बलिदान करदूँ।

स्वाहा शब्द तब कहना चाहिए जब बोलने और मन के भावों में एकता मन्त्रके अर्थोंके अनुकूल हो, तब इसका आत्माके ऊपर पूरा-पूरा असर पड़ता है। अब प्रश्न हो सकता हैकि जल पहले दो मन्त्रोंमें अमृत, बिछौना और ढकना कहा गया है, यह तो प्रत्यक्ष है ही। जल सत्य, यश और श्रीका कैसे उत्पादक या बोधक हो सकता है!

सभी अन्न, रस और हीरे मोतीको जल पैदा करता है इसलिये जल धन, लक्ष्मी है। प्राणियों, खनिज द्रव्यों पत्थरों, वनस्पतियोंकी जलसे वृद्धि और शोभा है। परोपकारका गुण रखनेसे यशका बोधक है। सत्यवादी मनुष्य जब तक जलके सम्पूर्ण गुणोंको धारण न करे वह सत्यका पुजारी नहीं हो सकता। सत्यका पुजारी दोषरहित होता है। दोषी आदमी सत्यका स्वरूप नहीं बन सकता। हवामें गढ़ा भरनेका गुण नहीं। दीवारके आनेसें रुक जाती है। सम रहती है। न ऊपर जा सकती है, न नीचे। इसमें मिलापकी शक्ति नहीं। अग्नि ऊपर जाती है, नीचे नहीं। भस्म कर सकती है, मिलाती नहीं। रुकावटसें रुक जाती है। बुझानेसे बुझ जाती है पृथ्वीमें ढांपनेका गुण है। अपनी तरफ खींचती है। परन्तु गढ़ा अपने आप नहीं भर सकती। मिलाप शक्ति नहीं, आकर्षण शक्ति है पर मिलनेके लिये आकर्षण नहीं है। जलमें ऊपर जाने, नीचे बहने, सिकुड़कर बर्फ होने, फैलकर पोषण करने, अपनी रोकमें से अपना रास्ता किसी दूसरेकी सहायताके बिना आप बनानें, सम रहने और मिलाप करनेकी शक्ति है। अपनी शरण आयेको तारने की विशेषता जलकी है। यही गुण सत्यको पैदा करते हैं और यह मन्त्र सद् गृहस्थीका सच्चा आदर्श बतलाता है। अमरीका और

जर्मनीके बहुतसे डाक्टरोंका तो यहां तक दावा हैकि किसी भयानक से भयानक रोगमें भी शुद्ध जलके विधिपूर्वक प्रयोग से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है। अब कृपा करके सब सज्जन तीन बार आचमन करें।

इसी अन्तिम मन्त्रका एक और तरीका भी बतलाऊँ। योग दर्शनमें एक सूत्र है 'वीतरागविषयं वा चित्तम्' जो महापुरुष राग द्वेषसे रहित हैं उनके चित्तमें चित्त लगाने से भी आत्मा पर असर पड़ता है जैसे सत्यका पुजारी हरिश्चन्द्र सत्यवादी, महर्षि दयानन्द, महात्मा गांधी जो कि आधुनिक कालके महापुरुष हैं अतः जब भी जल हाथमें लो, मन्त्र पढ़ने पर भावना सहित इन महापुरुषोंके आकार को आप जानते ही हैं, ध्यानावस्थामें ला कर अपने मनको एकाग्र करके सत्यके गुणोंको धारण करनेकी प्रतिज्ञा करो, प्रार्थना करो, प्रभुसे बल मांगो। मेरा अनुभव है बड़ा लाभ पहुंचता है।

अंगस्पर्श मंत्र व्याख्या :--

अब अंगस्पर्शकी बारी है। बाहर का लाभ तो यह है कि पानी रुधिरके जोशको कम करता है। कैसा भी क्रोध हो इससे दूर हो जाता है। आलस्य पास फटकने नहीं पाता। परन्तु आन्तरिक लाभ उससे अधिक होता है संकल्प द्वारा भिन्न-भिन्न अंगोंके अन्दर पुष्टिका धारण

किया जाना जगतप्रसिद्ध बात है। आत्मोद्बोधन (Auto-
ug-gestion) द्वारा अनेक रोगोंकी चिकित्साकी जा रही
। दृढ़ और सच्ची भावनासे (१) 'ओं वाङ्म आस्येऽस्तु'
रे मुखमें वक्तृत्व शक्ति रहे। (अंगस्पर्शके प्रत्येक मन्त्र
बल, ओज, दक्षिणताकी अनुवृत्ति रहे) [२] ओं
नसोर्मे प्राणोस्तु" मेरी नासिकाओंमें प्राणशक्ति, तन्दरुस्ती
हे [३] ओं "अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु" मेरी दोनों आंखोंमें
ष्टि रहे, मित्रवत सबको देखूं। [४] "ओं कर्णयोर्मे
ोत्रमस्तु" मेरे दोनों कानोंमें श्रवण शक्ति रहे। [५]
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु" हे ईश्वर! मेरी बाहुओंमें बल
वे। [६] "ओं ऊर्वोर्मे ओजोस्तु" हे ईश्वर! मेरी
घाओंमें ओज शक्ति बढ़े। [७] "ओं अरिष्टानिमें
गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु" हे ईश्वर! मेरे सब अंग
ष्ट-पुष्ट होते हुए और मेरे शरीरके साथ सब अंग उत्तम
वस्थामें हों।

जिस साधक ने संकलपशक्तिके रहस्यको जान लिया
ह इस प्रकारके अभ्याससे अपने सब अंगोंकी बीमारियों
ो दूर कर सकता है, सुडौल सुन्दर बना सकता है।
न अंगोंकी शक्तियोंको बढ़ा सकता है और यहां तक
क उनका आश्चर्य जनक विकास कर सकता है। मन एक
सी शक्ति है कि निश्चय और प्रेममय भक्तिसे जो बात

इसको कही जावेगी वह इससे बन जायगी। अंगस्पर्शक अन्तिम मन्त्र यही शिक्षा देता है कि शरीर तुम्हारा है तुम शरीरके स्वामी हो, शरीरके दास नहीं हो। इसलिये धार्मिक कार्योंमें इसे लगाओ। प्राकृतिक वासनाओं के उतार चढ़ावमें आकर यूंही नाच मत नचाने लग जाया करो। यज्ञ बड़ी सम्पत्ति है, सौभाग्यशालियों के भाग्यमें आती है। समय बहुत हो गया। अब तो मेरे साथ-साथ क्रिया करते चलो। समझाना अब नहीं होगा। किसी दूसरे समय पर रखें। यज्ञमें यह आचमन और अंगपर्श स्वतन्त्रता और पवित्रता-प्राप्तिका आदेश करते हैं।

यज्ञ प्रभुकी कृपासे निर्विघ्न संपूर्ण होगया। यजमानने आशीर्वाद लेकर, शेष बाँट सबका सत्कार किया और सब विदा हुए।

—०—

ओ३म्

बारहवीं झांकी

तपेदिक और हवन

यज्ञ का अधिकारी

आज तीसरे पहर विश्राम करके महात्मा बाहर निकले ही थे कि महाशय प्रेमचन्द जी अपने एक अच्छे जैन्ट-लमैनी वेषसे विभूषित सज्जनके साथ मिले। नमस्ते की

और कहा भगवन् ! यही मेरे मित्र हैं जिनको तपेदिकको शिकायत बतलाते हैं। आप आशीर्वाद देवें कि स्वस्थ हो जायं बड़े भले सज्जन पुरुष हैं।

महात्मा उनके साथ वापिस अन्दर आकर बैठ गये। उस जैंटलमैनके रंग रूपको देखा और पूछा, 'हां क्या रोग है ?'

जैंटलमैन–वैद्य और डाक्टर तपेदिक बतलाते हैं।

महात्मा–कबसे ऐसी हालत है ?

जैंटलमैन–बहुत समयसे। एक बार आराम भी हो गया था। अब फिर थोड़े महीनों से रोग हो गया है। छुट्टी लेकर आया हूं। चिकित्सा प्रभाव नहीं दिखला रही।

महात्मा–क्या नौकरी है ?

जैंटलमैन–मैं सब-इंस्पैक्टर पुलिस हूं।

महात्मा–फिर तो आपको बीमारी होनी ही नहीं चाहिये।

प्रेमचन्द–क्यों ?

महात्मा–पुलिस विभाग तो क्षात्र वर्णी है। जो क्षत्रिय होकर प्रजाके जान मालकी रक्षा करता है, उसके जान मालके तो फिर प्रभु आप रक्षक होते हैं। जिसका रखवाला भगवान हो उसे कौनसी बला लग सकती है

और ये तो इस महकमेके अफसर हैं, इंस्पेक्टर हैं, निगरानी और देख भाल, पड़ताल करने वाले हैं कि प्रजाको चोर डाकू तंग न करें और अपने कर्मचारियोंको देखा करें कि वे चोरोंके साथ मिलकर प्रजाका नाश न कर देवें। दोनों तरफ सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंको दण्ड, कर्मचारियोंकी कमान कसे रक्खें।

सब इंस्पेक्टर साहिबने इतना सुन कर मुंह नीचे कर लिया और लज्जासे उत्तर न दे सका।

महात्मा—क्यों भाई ! क्षत्रिय होकर खतरेमें जान है। तो इससे यही अनुमान होता है कि तुमसे प्रजाको भय रहता है। जब तुम अपने पिता, स्वामी-प्रभुकी प्रजा, पुत्रोंकी रक्षा नहीं करते तो तुम्हारा क्या अधिकार हैकि इस प्रभुके दरबारमें प्रार्थनाकी जावे और कोरी प्रार्थना और आशीर्वादसे क्या बन सकता है। साँपकी दीर्घायुके लिये प्रार्थना करना मूर्खता है। गौओंके तेज बल, आयुके लिये तो प्रार्थना जरूरी है।

सब इंस्पेक्टर—महाराज ! आपका क्या लगता है ? अगर एक मनुष्य आपके आशीर्वादसे बच जावे उसका कल्याण होजावे।

महात्मा—शरीरके रोगको वैद्य दवाईसे दूर करता है।

है वहां पतितसे पतित और कुसंस्कारी जीवोंको भी आत्मोन्नति तथा परमपदकी प्राप्तिका रास्ता देता है।

सब इन्सपेक्टर—आप जैसी आज्ञा करें मैं तैयार हूँ।

महात्मा—क्या तुम माँस खाते हो ?

सब इन्सपेक्टर—हां महाराज, खाता हूं।

महात्मा—क्या तुम रिश्वत लेते हो !

सब इन्सपेक्टर—क्या कहूँ ! महकमा ही ऐसा है कि बिना लिये गुजारा नहीं होता।

महात्मा—मांसाहारीको वैदिक परिभाषामें राक्षस कहते हैं और जर्म्ज, ब्रिधैले जर्म्जको भी राक्षस कहते हैं क्योंकि वे खून चूसते और पीते हैं। तुम मनुष्योंका माँस व रुधिर चूसते हो और पशुओंका मांस खाते हो। ऐसे वे जर्म्ज या तपेदिकके कीड़े तुम्हारा खून चूसते मांस खाते हैं। तुम आप पढ़े-लिखे हो। हिसाब लगालो। तपेदिकका कीड़ा इतना छोटा होता है कि यदि मध्यम कद वाले कीड़े एक पंक्तिमें रखे जावें तो पच्चीस हजार कीड़े एक इंच जगहमें आ जायेंगे। यदि तोल किया जायेंगे। यदि तोल किया जाय तो एक खश-खश के दाने पर २० अरब कीड़े चढ़ जायेंगे। इसलिए सिवाय हवनके इसकी श्रेष्ठ चिकित्सा और नहीं हो सकती क्योंकि श्वास और रोम कूपों के द्वारा हवन से पैदा होने वाली गैस औषधियोंसे अधिक प्रभाव करेगी। अरबों जीव तुम्हारे शरीरमें पोषण

पा रहे हैं। तुम अरबों जीवोंका नाश करके अपना शरी बनाना चाहते हो और क्या जिन जीवोंको तुम खाते हो और खून चूसतेहो, क्या वे तुम्हारा जीवन चाहते होंगे।

सब इन्सपेक्टर---नहीं।

महात्मा---तो फिर क्या तुम मांस और रिश्वत छोड़ सकते हो ?

सब इन्स्पैक्टर---यह तो मुश्किल है।

महात्मा---माँसाहारी तो आहुति देनेका अधिकारी नहीं।

प्रेमचन्द---तो क्या अग्नि आहुति लेनेसे या उस पदार्थ को जलानेसे इन्कार करती है या कभी मांसाहारी की आहुतिकी सुगन्ध फैलनेसे रुक जाती है ? प्रभुके सब देव अपने-अपने नियम बराबर बरतते हैं। जैसे चाहे अग्निहोत्री अग्नि पर हाथ डाले या नास्तिक, दोनोंको वह जलादेती है। फिर हवन करनेमें विभेद क्यों ?

महात्मा---यदि केवल ऐसा ही अभिप्रेत समझ लिया जाय जैसा कि आप कहरहे हो, तब तो कोई भेद नहीं पड़ता। परन्तु जब यह मान लिया जाय कि यज्ञ-हवन प्रभु की अत्यन्त श्रेष्ठ देन है, धन है, विभूति है तो फिर उसके लिये अधिकारी ढूंढना पड़ेगा। सब पदार्थ और धन प्रभुके

देन है। पर सबके सब, सबके लिये नहीं। कई एक चीजें उदाहरणार्थ-सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु सबके लिये एक सी है और विशेष-विशेष चीजें विशेष अधिकारी पुरुषों के लिये जैसे राज्य, सम्पत्ति, सौन्दर्य, विद्या' बुद्धि इत्यादि एक प्रकार की नहीं। यज्ञ तो मनुष्य का प्रतिभू (जामिन) है इसकी सम्पत्तिकी, जान व माल, भाग्यकी बाढ़ है। देखो;--

(१) यज्ञ का अधिकारी बननेके लिये यज्ञोपवीत दिया जाता है और यह सबसे पहली अवस्था बच्चेकी है जब वह विद्या पढ़नेके लिये द्विज बनना चाहता है। यज्ञोपवीत देकर गुरु उसे यज्ञमय जीवनको प्राप्त करनेके लिये विद्यार्थी बनाता है और पिता शिक्षायें देता है। संस्कार विधि पृष्ट ६८, १५, नँबर पर ये हिदायत हैं। 'मांस, रूक्षाहार मद्यादि पांनं च वर्जय,। मांस, रूखा शुष्क अन्न मत खावे और मद्य आदि मत पीवे।

(२) यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २१

ओ३म् उत्सक्थ्या अव गदंधेहि समञ्जिं चारया वृषन्। य स्त्रीणां जीवाभोजनः॥

इस मंत्रके भाष्यमें स्वामीजी महाराज स्पष्ट लिखते हैं कि जो मांसाहारी और व्यभिचारी स्त्री पुरुष हों उन्हें उलटा लटका देना चाहिये।

(३) यजुर्वेद अध्याय २५ मंत्र ३६

ओ३म् यन्नीक्षणी मांस्प वन्याऽउखाया या पात्राणि यूष्णा आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरुणामंका: सूना परिभूषन्त्यश्वम् ।

अर्थात् जिस बर्तनमें भोजन पकाया जाय उसकी भली-भांति परीक्षा करले इसमें मांसतो नहीं पकाया गया।

(४) हवनके समय मन्त्रोंसे जब जल नालीमें छिड़का जाता है तो और अर्थोंके अतिरिक्त यह भी अर्थ है सुनो--'ओ३म् अदिते अनुमन्यस्व' ऐ परमात्मन् । हमें ऐसी अक्ल दे कि हम हमेशा अहिंसा-व्रत धर्म का पालन करें। अर्थात् हिंसा मत करें । [२] 'ओं अनुमते अनुमन्यस्व' ए ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! हमें ज्ञान दीजिये कि हम किसी को दुःख न दें।

(५) मा यज्ञँ हिँसिष्टं मा यज्ञपतिम् ।

अर्थात् यज्ञ की, यज्ञका पालन करने वाले की हिंसा मत होने दो।

(६) ऋग्वेद १०--६२--१० 'सुत्रामाणं पृथ्वीं द्यामनेहसं' [स्वस्तिवाचन में] शान्ति के लिये हिंसा-रहित अच्छे आश्रय वाली, अटूट, दोष रहित दैवी नौका पर चढ़ें दैवी नौका या नाव यज्ञ है जो पीछे कहा गया है।

(७) ओं अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति ।

हे परमात्मन् ! तुम जिस कुटिलता तथा हिंसा से रहित यज्ञ का सब तरफ से व्याप लेते हो, केवल वही यज्ञ दिव्य फल लाता है ।

स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण पढ़ते हुए अनेक मन्त्र इस बात का आदर्श हैं कि पाप बुद्धि को हमसे हटाओ जब मांसाहारी को वेदभगवान् उलटा लटका देने का दण्ड प्रतिपादित करता है और माँस पके बर्तन का प्रयोग करने का निषेध है तो यज्ञ जैसे उत्तम कार्य में मांसाहारी कैसे अधिकारी बन सकता है ? जो दूसरे प्राणी को दुःख देता है और अपना सुख चाहता है वह सुखका कैसे भागी बन सकता है ? यजुर्वेद और दूसरे वेदों में भी यही मंत्र आया है ।

(८) ओं सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।

अर्थात् जल और औषधियां हम सबके लिये हितकारक होवें तथा उस एकके लिये दुःखकारक होवें कि जो हमसे और समाजसे द्वेष और हिंसाके भाव रखता है ।

सब इन्स्पैक्टर—महाराज ! आपकी सब बातें ठीक हैं। मैं अभी तो आपके समक्ष प्रतिज्ञा करलूं परन्तु फिर न निभा सकूँ और गिर जाऊँ तो बहुत पाप है । मांस तो अभी छोड़ देता हूं । ईश्वर कृपा करेकि मैं रिश्वतभी त्याग

करने योग्य हो सकूं । आप तो अपने साधु स्वभावसे कृपा करें ही ।

महात्मा—अच्छा मैं तो तुम्हारे घरमें यज्ञ नहीं करा सकता । हां, तुमको योग [नुस्खा] बतला देता हूं । अपने जाकर करते रहो ।

सब इन्स्पैक्टर--आपके करानेमें विधिपूर्वक होता आनन्द आता और मेरा कल्याण हो जाता । मैं विधि जानता नहीं । आप कृपा करें ।

महात्मा--जब तुम अपने ऊपर दया नहीं करते तो दूसरा कैसे करे ? परमात्मा तो उन्हीं [भक्तों]की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं या जो अपने आपको प्रभुचरणोंमें डाल देते हैं, प्रभुपर पूर्ण विश्वास रखते हैं । तुम तो नहीं जानते । मैं जिस बातको जानता हूं उसके विरुद्ध आचरण करूँ तो मुझे पाप होगा। मन्त्र-मन्त्रमें 'स्वाहा' आता है, जिसका अर्थ है मैं ठीक कह रहा हूं, अपनी अन्तरात्मासे कह रहा हूँ । जिन मन्त्रों में दुर्व्यसन पापके त्यागकी आहुति है वहां 'स्वाहा' कहा हुआ किस कामका ? इसलिये तुम नुस्खा लिखलो आगे तुम्हारे भाग्य ।

तपेदिकका प्रथम नुस्खा [१] सन्दल और कपूरके फूलों आदिसे तैयारकी हुई बत्तियां जलाई जायें ।

[२] पहले दिन शुद्ध गौ घृतकी एक हजार आहुतियां दी जावें।

[३] दूसरे, तीसरे और चौथे दिन तिल, चावल, हरी घास (दूब), जौ और मोठको शहद और घीमें अच्छी तरह मिलाकर उनकी एक हजार आहुतियाँ दी जाएं।

[४] पांचवे और छटे दिन केवल गायके घी और शहदकी एक हजार आहुतियां दी जायें।

[५] सातवें और आठवें दिन पीपल और छिछड़े (पलाश) की पतली-पतली लकड़ियां मोटाईमें कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर और लम्बाईमें बालिश्तभर जो अन्तर अंगूठेसे पहली अंगुलीके बीच है) घीमें खूब तर करके जलावें। यह नुस्खा उन तपेदिकके बीमारोंके लिये है जो पहले दर्जेमें हैं। मकान अत्यन्त शुद्ध और पवित्र हो। उसमें और कोई चीज न रक्खी जाय। रोगी उस कमरेमें निवास करे। आहुतियां गायत्री मन्त्रसे दे खान-पान वैद्य की इच्छानुसार करे। मन्त्र जोरसे उच्चारण करे। हवन की अग्निसे उसे पसीना आ जाया करे ताकि जल्दी आराम हो जाय, कृमि मर जावें। विकृत द्रव्य बाहर निकल पड़े। सांस गहरे-गहरे लेवें। इतने दिनों तक अग्निहोत्रमें प्रातः व सायं निरन्तर उपस्थित रहे। बत्तियोंका धुआं हर समय रहे। लाखी उपजातीकी बकरीका दूध प्रयुक्त किया जाय

तो बहुत लाभदायक है प्रभु प्रार्थना और गायत्री जप किया करे।

दूसरा नुस्खा--१. मण्डूक पर्णी २. ब्रह्मी ३. इन्द्रायण की जड़ ४. शतावरी ५. असगंध ६. बधारा ७. शालपर्णी ८. मकोय ९. अडूसा १०. गुलसुर्ख ११. तगर १२. रास्ना १३. बादाम १४. मुनक्का १५. जायफल १६. लौंग १७. बड़ी हरड़ गुठली समेत १८. आंवला १९. जयन्ती २०. पुनर्नवा २१. वंशलोचन २२. खीर काकोली २३. जटामांसी २४. पानरी २५. गोखरू २६. पिस्ता २७. सुगंध बाला २८. चीड़का बुरादा २९. खूबकलाँ सब एक-एक भाग ३०. गिलोय ३१. गुग्गुल (चार-चार भाग) ३२. पीला केसर ३३. शहद ३४. देशी कपूर (हर एक १।४ हिस्सा) ३५. देशी शक्कर (दश भाग)।

गोघृतकी इतनी मात्रा होकि कूटी हुई सामग्री खूब मिल जाय जिसके लड्डू बांधे जासकें। यदि सामग्री खुश्क रह गई तो रोगीकी खांसी बढ़ जाने का विशेष डर है।

(२) साठीके चावलोंकी खीर प्रतिदिन ताजा बना कर हवनमें प्रस्तुतकी जाया करे।

यज्ञमें नित्यप्रति सामग्री, साठीके चावलों और गौ घृतकी आहूतियां पड़नी चाहियें।

विधि--हवन प्रातः सूर्योदयके पश्चात् और शाम

सूर्यास्तसे पूर्व करना चाहिये। [२] चीड़ या बांसके जंगल में बैठकर हवन करना अधिक लाभदायक होता है अन्यथा अपनी किसी वाटिकामें कमरा बना लिया जावे। अगर यह भी न हो तो घरके शुद्ध पवित्र स्थानमें [३] आग खूब प्रज्ज्वलित हो, धुआं न हो। आम ढाक या पीपलकी लकड़ियां हों। [४] रोगी जोर से मंत्रोच्चारण करे। [५] इस चिकित्साके साथ बस्तिकर्मभी कर लिया करे। जल चिकित्सा का इच्छुक हो तो वहभी कर सकता है, यदि बस्तिकर्म न करे तो [६] खौलते हुए पानीमें हरड़ की गुठली, बहेड़ेका छिलका डाला जावे। आधा पानी रहनेपर ऊतारकर ठण्डा करके रक्खे। वही पानी पीता रहे, शहद मिलाकर या ऐसेही।

यह नुस्खा दूसरे दर्जेके तपेदिक वालोंके लिये है और तीसरे दर्जके रोगियोंके लियेभी जिनके पांवमें सूजन और दस्त जारी नहीं हुए उनको इतना विशेष करना चाहिए कि इस सामग्रीसे किये गये यज्ञकी राखका नमक बनाकर या इस राखको कपड़ छान करके बोतल या शीशीमें बन्द कर रक्खें। प्रतिदिन बताशेमें एक रत्तिसे एक माशे तक डालकर लाखी बकरीके दूधसे लिया करे। बकरियोंके स्थानमें सोवे उनकी फुंकारसे तपेदिकके कृमि मर जाते हैं। अपनी चारपाई के चारों ओर बांधे। प्रभात काल में ओषजन (आक्सीजन) खावें। गहरे सांस (Deep breathing)

ले और इसमें अपनी बीमारी को दूर करने का संकल्प करता रहे।

इस तपेदिक के यज्ञ में आहुति उन मन्त्रों से दी जावें जो मन्त्र अथर्ववेद में इसके लिये विशेष हैं और इसके लिये एक छोटी सी पुस्तक 'राजयक्ष्मा रोग पद्धति' के नाम से बनी हुई है। और जो ऐसा रोगी न स्वयं उन मंत्रों को पढ़ सकता है, न किसी विद्वान् से कराने का सामर्थ्य रखता है, तो वह गायत्री मंत्र से ही आहुतियां देवे।

आहुतिकी मात्रा छः मासेसे कम न होवे और आहुति की संख्या एक लाख तक है अपने आर्थिक और शारीरिक सामर्थ्य का ध्यान रख कर करे। जितने दिनों में समाप्त कर सके। यदि रोग मामूली हो तो साढ़े बारह हजार आहुतियां एक तोले की देवे और सवा लाख गायत्री का जाप करे। रोगी को कोई भी समय गायत्री या प्रणव के जापसे खाली नहीं छोड़ना चाहिए। प्रभु की उपासना रोग निवृत्ति की अति उत्तम औषधि है।

प्रेमचन्द---धन वालों के लिये तो कोई कठिनाई नहीं है परन्तु निर्धनों की इतनी शक्ति नहीं कि वे इतनी सामग्री का खर्च कर सकें। क्या इसके लिये भी कोई सुविधा है?

महात्मा---अगर बिलकुल गरीब है तो गधी का दूध पिया करे। बांस की दातून किया करे। मकोय और पुन-

नंवा का शाक खाया करे, लोंग मुंह में रक्खा करे, तोरी भिण्डी की जड़ एक छटांक रगड़ कर पानी निकाल कर कूजा मिश्री डाल कर पीया करे और पीपल और पलाश की समिधा घी में तर करके आहुतियां दिया करे, जैसे नुस्खा नं० १ के विभाग ५ में बतलाया है जब तक आराम न हो या एक चालीसा (४० दिन) गायत्री का खूब जाप करे।

प्रेमचन्द---अथर्ववेद के मन्त्रोंमें क्या आशय भरा है ? वैद्य लोग तो नहीं बतलाते।

महात्मा---मैं तुमको एक मन्त्र ही बतला देता हूं। उदाहरण के तौर पर अथर्ववेद ३।३।११।१ ओं मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तामेनम्।

अर्थात् हे रोगी ! तुझको आरामके साथ अधिक देर तक जीवित रहनेके लिये गुप्त तपेदिक के रोगसे और हर प्रकारके प्रत्यक्ष तपेदिक से हवनके द्वारा छुड़ाता हूं। इस समयमें इस व्यक्ति को जिसे कष्ट या रोगने पकड़ लिया है उससे आग और हवा अवश्य छुड़ा दे।

चरक चिकित्सा स्थान ८७-१८३-जिस हवन के द्वारा प्राचीन कालमें तपेदिक का रोग दूर किया जाता था, वेद

में बतलाये इस हवनको रोग दूर करने के लिये करना चाहिये।

[ऐलोपैथीमें क्रियोजोट (Creosote) ऐसी दवाई है जिसे आम तौर पर इस रोगकी चिकित्सामें प्रयोग किया जाता है। वैसे तो खिलाया जाता है किन्तु तीव्र खांसी के प्रभाव को रोकने के लिये इसे (Inhalation) सुंघाते हैं और इसका इस मार्ग द्वारा फेफड़ों पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है, परन्तु शक्तिशाली नहीं हो सकता। कोई चीज सूंघनेसे अवास्तविक होती है। परन्तु हवनकी गैसके अन्दर क्रियोजोट उपस्थित है। इसके असरसे जो खांसी दूर होगी, वह स्थाई तौर पर होगी।

तपेदिक का योग [नुस्खा] प्रथमावस्था:—मिट्टीके कुजे में आधा पाव पानीमें सौंफ भिगो देवें, और रातको बाहर रख देवें। सुबहको उसी पानीमें घोट कर आग पर चढ़ा देवें। और दो तोला पानी जब रहे तो उसमें थोड़ी खाँड डालकर एक तोला सुबह पिला देवें, एक तोला शाम। एक सप्ताह करनेसे ईश कृपासे आराम आ जायगा।

दूसरी अवस्था का तपेदिक

जब कोई रोवे और उसकी आँखोंसे गाल पर पानी टपकने लगे तो उसे रुईके टुकड़े से तर करके जमा करले। वही कपास का टुकड़ा कुट (कांसी) के बर्तनमें

तुरन्त बंदकर रखें। हवा न लगने पावे। प्रातः काल थोड़ी सी रुई उसमेंसे लेकर पानीमें डाल देवें (इतना पानीकि जितना वह रोगी पी सके पानी चार पांच [घूंट] जब इस टुकड़े का प्रभाव पानी में चला जावे तो कपास का टुकड़ा पानी में निचोड़ कर बाहर डाल दें, पानी पी लेवें। ऐसे चालीस दिन तक करें। खान पानमें कोई विशेष पथ्य नहीं है, जैसे वैद्य डाक्टर ने कहा हो।

नोटः—यदि किसीके आँसू दुःख शोकसे निकलेहों उससे रुई तरकी जावे तो चालीस दिन चिकित्सा करनी पड़ेगी। किन्तु यदि किसीके हर्षके आँसू हों, उदाहरणार्थ जोरदार कह-कहा लगानेसे निकलें या किसी मित्रके मिलते समय प्रेमके अश्रु बहें तो चालीस दिनकी आवश्यकता नहीं रहेगी। कुछ ही दिनोंमें आराम आ जायगा।

ये सब नुस्खे पुस्तकीय और मौखिकभी सुने हुए बतलाये हैं। संस्कार दीपिकामें लिखे हुए हैं। एक पश्चिमी डाक्टर कुन्दनलाल साहिबका अचूक योग है, जो विलायत से हो आये हैं। और कई छोटे-छोटे परीक्षित रामबाण प्रयोग साधुओंके बतलाये हुए हैं। प्रयोग कर देखने लायक हैं।

—०—

॥ ओ३म् ॥

तेरहवीं झांकी

मौन उच्चारण और आहुति

चेचक और हवन

मनुष्य साधारणतया तो प्रभु-भक्ति या अपने धर्म लिये अपने समय और धनको बलिदान नहीं करना चाहत और नहीं जानता [विरलाही भाग्यवान् प्रभुमें प्रीति रखता है] परन्तु जब मनुष्यको कोई दुःख या आपत्ति घेरे तो सब प्रकारके बाण मारता है। मुल्लाँ भोपे पी औलिया ब्राह्मण ज्योतिषीसे गण्डे, ताबीजें, पासे डलवात है और व्यय करनेमें संकोच नहीं करता, चाहे ऋण क्यों न उठाना पड़े।

महात्मा एक गलीसे गुजर रहे थे। शाम होने वाल थी कि हवनकी सुगंधि उनको आई। समझे किसी घर पास ही हवन हो रहा है। कोई प्रेमी भक्त इस सायंकाल में प्रभु पूजन कर रहा है। थोड़ा-सा चले थे कि वह घर भी आ गया जहाँ हवन हो रहा था। अपने आप अन्द चले गये। वहां पर बैठे आदमियोंने उन्हें देखकर बड़

सत्कार किया, बिठलाया और कहने लगे "आपने बड़ी कृपा की। हमारा बड़ा सौभाग्य है।"

महात्मा चुप रहे और हाथसे संकेत कियाकि करते जाओ। वे लोग मन्त्र इतनी जल्दी पढ़ते थे कि जैसे कोई घास काट रहा हो। चमचा बड़ा था और घी उसमें दो चार रत्ति लेकर आहुतियाँ देते और सामग्री शुष्क शीघ्र-तया मन्त्रके समाप्त हो जानेसे फैंकनेपर कच्ची रह जाती थी और ढेर लग जाता था। अग्नि बिल्कुल मन्द थी और धुंआ फैला हुआ था। बस फिर देर क्या थी? पूर्ण आहुति पर पहुंच गये और शान्ति पाठ पढ़ दिया। अब हाथ जोड़कर कहने लगे भगवन्! कोई उपदेश देवें।

महात्मा—उपदेश तो दे दूं पर तुम सुनोगे नहीं, तुम लोगोंको क्रोध आ जायगा। सब बोले, वाह महाराज! आप हमारी भलाईके लिये लिये उपदेश देवें और हम रुष्ट होंगे?

महात्मा—सचको और अपने दोष-त्रुटिको हर कोई नहीं सुन सकता। मैं तो साधु पुरुष हूँ। अगर आप लोग क्रोधमें भी आ गए तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आपका मेरे सुनने से उल्टा मन क्लेषित हो यदि आप लोग अपने किये कर्मोंको सार्थक और सफल बनाना चाहते हो तो लो सुनो मैं आते

हो आपके सत्कार और भावको देखकर श्रद्धाके भावसे मैं प्रसन्न हुआ परन्तु आपने जहाँ मेरा सत्कार किया, वहाँ यज्ञका तिरस्कार किया।

मौन

तब तक आप लोग स्वतन्त्र हैं जब तक प्रार्थना शुरू नहीं हुई। जब आप सब प्रभु-दरबारमें बैठ गये; प्रभुके द्वार पर प्रार्थनाकी तो जिन मन्त्रोंको आपने मुखसे उच्चारण किया उनका यह भी एक अर्थ है कि अब प्रभुके सिवाय किसी औरको उच्च स्थान न देवें। उसीका हम भरोसा रक्खें। वही हमारा सच्चा गुरु, आचार्य और न्यायाधीश है। जो आदमी, चाहे वह धनी हो या विद्वान् हवनके आरम्भके बादमें आवे वह अपने आप शांतिसे बैठ जाय। हवन करने वालोंकी वृत्ति देवपूजाके स्थान पर दूसरी तरफ न फिरे। और उठकर सत्कार करनेसे तो पूजाको छोड़कर एक मनुष्य का सत्कार किया है, यह ठीक नहीं। हां, यदि विशेष यज्ञ होतो पहले आदमी नियत कर देने चाहिये जो आगन्तुकों को बड़ी श्रद्धा और प्रेमसे यथायोग्य बिठावे पर स्वयं वाणीसे काम न लेवे। देखो संस्कार विधिमें ऋत्विज के वर्णनमें लिखा है कि, यजमान उपर्युक्त रीतिसे उनको बड़े आदर और मानसे उनके निश्चित स्थान पर बिठाये और वे बड़ी प्रसन्नतासे अपनी अपनी जगह पर बैठें। इस समय सिवाय यज्ञ सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाही

के इधर उधर की कोई बात नहीं होनी चाहिये। सब काम पूरे ध्यान और सावधानी से सम्पादित करने चाहिये।"

मन्त्रोच्चारण---मन्त्रोच्चारणके सम्बन्ध में लिखा है कि सब संस्कारोंमें अति मधुर स्वर से यजमान [यज्ञ करने वाला] ही मन्त्र बोले। मन्त्रोंको न तो बहुत जल्दी जल्दी पढ़ना चाहिये और न ही रुक रुक कर, परन्तु विधि अनुकूल जैसा वेद मन्त्रोंका उच्चारण है, वैसा बोलना चाहिये।

चमच---चमच कैसा हो ? यह भी संस्कार विधिमें देख लो। जब 'ओ३म् इध्म आत्मा जातवेदस्.......की आहुति देनी है तब यह लिखा है, "उपरिवर्णित हवन के लिये विशेष तौरपर तैयार किये घी के एक चमचसे जिसमें ६ माशे ही घी आसके, पूरा भरके आहुति देनी चाहिये।" इसमें 'ही' और 'भरके' के शब्द आग्रह पूर्वक लिखे हैं। परन्तु आपका चमच तो बड़ा है और घी कई रत्तियां डालते हो। इसलिये अपने सामर्थ्य के अनुसार ही चमच बनाओ पर आहुति भर कर दो। चाहे ६ माशे से कम हो पर चमच भरा हुआ हो। इससे मतलब यह है कि तुम्हारे अन्तः करणके ऊपर पूर्णताका प्रभाव पड़ेगा। जब आदमी चमच अधूरा देता है तो उसका फल भी पूरा नहीं मिलता जैसे कि यजुर्वेद तीसरे अध्याय के ४९ वे मन्त्रमें कहा है:—

ओं पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज शतक्रतोः

चमच को पूरा भर देनेसे फल पूर्ण गुणों के साथ मिलता है। यज्ञके समयमें बिलकुल मौन अवस्था धारण कर लेनी चाहिये। सिवाय यज्ञ सम्बन्धी विषयके कोई बात आपसमें नहीं करनी चाहिये, न और किसीसे। जब हमने प्रभुको आह्वान किया, उसे अपने हृदय मन्दिरमें विशेष रूप से विद्यमान जाना तो हमारी भावना बहुत ऊंची रहनी चाहिए। हम परमात्माकी उपस्थितिमें क्या बातचीत गप्पाष्टक, या निरर्थक बात अग्निहोत्र की वेदी पर कर सकते हैं अगर करते हैं तो इसके ये अर्थ हैं कि हमने आह्वान नहीं किया या प्रभुको हम विद्यमान नहीं समझ रहे। यज्ञ करने वाला जब अपने आपको भगवानके चरणोंमें बैठा समझ लेता है तो उसकी पवित्रता और निर्भयताकी सीमा नहीं रहती। उसका रोम-रोम गद्गद होता है। उसके चारों ओर प्रसन्नताके, हर्षके, आनन्दके परमाणु फिर रहे होते हैं।

आहुति और सामग्री—आहुति देने की यह विधि नहीं है जैसे तुम फेंक रहे हो। सामग्रीमें घी अच्छा मिलाना चाहिये अन्यथा सामग्री शुष्क रहनेसे दोष पैदा करेगी। जुकाम और नजलेकी बीमारी हो जाती है। रोग विनाशके स्थान पर रोग उत्पन्न करती है।

एक सज्जन—अगर घी अधिक मिला देवें तो हवनके लिये थोड़ा बचेगा।

महात्मा—यह भी एक भूल है। क्या जो घी सामग्री में मिलाओगे वह हवन में न पड़ेगा ? दूसरे-यदि ऐसा विचार है तो सामग्रीको थोड़ें दूधसे चिकना कर लेना चाहिए या खोया, मूंगफली इत्यादि सामग्रीमें कूट लेनी चाहिये ताकि उनकी चिकनाहटसे सामग्री स्निग्ध रहे और थोड़ा-सा घी मिलानेसे अच्छी बन जावे। सामग्री कितनी लेनी चाहिये ? यह सब सामर्थ्य पर है। यदि ६ माशेका सामर्थ्य नहीं, कम है, तो कमसे कम परिमाण 'मृगी मुद्रा' है अर्थात् मध्यमा● और तर्जनी● अंगुलियाँ और अंगूठेको मिलाकर इसमें जितनी सामग्री आवे यह मृगी मुद्रा है।"

घर वाला—मध्यमा और तर्जनी मिलाकर ऊपर अंगूठा आ जावे—इन उंगलियोंसे भरकर देना क्यों लिखा है पहली और दूसरी उंगलीसे क्यों नहीं ?

महात्मा—यज्ञ करने वालेको आदेश मिलता है कि बड़े और छोटेका मिलाप हो जाय, तब मिलकर संसारका काम चल सकता है। और याजक कोई बड़ा भी हो, तो छोटेको अपने बराबर बना लेता है। यज्ञ बल और धनसे हो सकता है और धनकी रक्षा बल करता है और राज बल धनके बिना चल नहीं सकता।

मध्यमा—बड़ी उंगली—राजा क्षत्रिय और तर्जनी

●दरमियानी बड़ी उंगली। ●मध्यम और कनिष्ठका [सब से छोटी] के बीच वाली उंगली।

वैश्य धन की गिनी जाती है और यह अंगुष्ठ धर्मके लि
गिना गया है। यह दोनों अंगुलियां मिलकर भी कुछ न
ग्रहण कर सकतीं, सामग्री नहीं उठा सकतीं जब त
अंगुष्ठ-धर्म-साथ न दे। धर्म सदैव ऊपर रहता है और
वश में रखता है। फिर सामग्री इन अंगुलियोंसे उठा
मुट्ठी बन्द कर लेनी चाहिये और अंगूठा सामग्रीके
में आ जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्म
क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (चार अंगुलियां) धर्म और
धन वस्तु की जो प्रभुके अर्पण होती है मिलकर रक्षा करें
और देनेमें गुप्त रीतिसे दिया जावे ताकि अपनी आंख
बार-बार न देखती रहे।

घर वाला—महाराज ! हम लोग तो नहीं जानते।
ही हम प्रतिदिन हवन करते हैं। आज ही किया है। आ
के उपदेशों में सुनते रहे हैं कि सब रोग इससे दूर हो जा
हैं। हमारे घरमें चेचकका रोगी था। हमने हवन
लिया कि उसे आराम हो जायगा।

महात्मा—बहुत अच्छा विचार है। परन्तु चेचक
लिये तो सामग्री का नुस्खा पृथक् है। अगर तुम चाहते
तो मैं तुमको बतला दूं।

घर वाला--बड़ी कृपा।

चेचक के लिये सामग्री का नुस्खा

[१] हल्दी [२] नीमकी निमोली [३] बहेड़ा [४] मेंहदी [५] चिरायता [६] मधुयष्टि (मुलहटी) [७] खूबकलाँ [८] मुनक्का हरेक आधा-आधा छटांक, [९] सरसों सफेद (१०) हरमल प्रत्येक एक एक छटांक, खांड दो छटांक-कुल आठ छटांक। इसमें एक तोला शहद मिला देवें। आधा सेर साधारण हवन सामग्रीमें यह आधा सेर सामग्री चेचककी मिलाकर उचित मात्रामें घी मिलाकर उपयोगमें लावें।

जिस कमरेमें हवन किया जावे उसमें रोगी रहे कमरा लाल शीशेदार हो तो अच्छा है। अन्यथा लाल कपड़े दरवाजों पर टांग देने चाहियें ताकि सूर्यकी किरणें लाल रंग पर पड़नेसे चमकने पर बहुत लाभदायक हों।

----०-----

ओ३म्

चौदहवीं झांकी
देव पूजन

आर्यसमाज मन्दिरमें साप्ताहिक हवन हो रहा था महात्माभी इस सत्संगमें बुलाये गये और कहा गयाकि "आज आप यज्ञके सम्बन्धमें हमें यह बतलायेंकि पुरोहित

का आसन क्यों पूर्वमें रक्खा जाता है और यजमानका पश्चिममें क्यों ?"

महात्मा--प्यारे सज्जनों ! जितनी क्रियायें मनुष्य स्वयं करता या संसारमें होती हुई देखता है, यह सबकी सब इसको शिक्षा देने वाली है । शास्त्रकार कहते हैं कि वह घर आर्य घर नहीं जहाँ नित्य अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमासी, चतुर्मास्य तथा अन्य यज्ञ नहीं होते । आपको मालूम हैकि सकल देवता यज्ञ करते हैं । मनुष्यको उनसे शिक्षा लेनी चाहिये । लो सुनो । 'आर्य' नाम है पुत्र श्रेष्ठका। अर्य और अर्यम परमात्माके नाम है और उनके पुत्रको आर्य कहते हैं । हम सब आर्य हैं । इसका यह अर्थ हुआ कि हम सब आर्य परमात्माके पुत्र हैं, इसलिए हम सब भाई हो गये, किन्तु हम सबमेंसे किसीका घर कहीं हैं, किसीका कहीं, कोई वकालत करता है, कोई डाक्टरी, कोई दुकानदारी और व्यापार इत्यादि अब हमने भ्रातृभाव बनानेके लिये संगठन किया तो उसका नाम बन गया समाज ? किसीकी समाज ? आर्योंकी समाज अर्थात् आर्यसमाज । अब संगठनकेऐसे लिए स्थानकी आवश्यकता पड़ी, तो इस स्थान विशेषका नाम मन्दिर रक्खा गया । अब इस मन्दिरमें क्या कियाजाये ?

भिन्न-भिन्न व्यवसायोंके लोग यहाँ इकट्ठे होते हैं । इस

स्थानको मन्दिर क्यों कहा गया ? क्या इसलियेकि वकील साहबके लिये अभियोक्ताओं (मुवक्कलों) को पैदा किया जाय, या डाक्टर साहबके रोगियोंको एकत्रित किया या व्यापारी हिसाब वा क्रय-विक्रय हो, या दुकानदारोंकी दुकान चले ? नहीं यहाँ तो व्यवसायका भेद किये बिना कुछ और ही कर्त्तव्य उपस्थित है। जो सबकी एकही इच्छा है, वह है हमारा आर्य बनना, सच्चा आर्य कहलाना दूसरोंको आर्य बनाना और आर्य धर्म फैलाना। तब हम आर्यके पुत्र बन सकते हैं।

यह कब हो सकेगा ? जब हम इकट्ठे होंगे, संगठित होंगे और यह कैसे होसकेगा ? जब हम त्याग [दान] करना सीखेंगे। यह कौन सिखलायेगा ? जब किसीको हम अपने सम्मुख बिठलायेंगे। वह हमारा क्या लगेगा ? वह हमारा देव होगा। फिर हम उससे किस रीतिसे सीखने योग्य होंगे ? जब हम उसकी पूजा करेंगे। (एक नादान उतावला) तो फिर आप हमको मनुष्य पूजाका उपदेश करते हैं।

महात्मा—नहीं पुत्र, नहीं। जरा सुनतो लेते। (सबने उसे भर्त्सना की) चुप रहो।

महात्मा--बोले, इस सम्मुख बैठने वालेको पुरोहित कहते हैं। वह हमारे लक्ष्यका आदर्श है, आदर्श कहते हैं

दर्पणको। हमने अपना सब कुछ इसी दर्पणके द्वारा देखना है। दर्पणही हमारे मुखड़ेकी स्वच्छता, मलीनता तथा पगड़ीके टेढ़ेपन या सीधेपनको बतलाता है। जैसे दर्पण बतलाता है वैसे हम ठीक करते हैं। बस देव पूजाका अर्थ हुआ देवकी आज्ञाका पालन करना, उसकी आज्ञाका आदर करना, यही उसकी पूजा है। इस ब्रह्माण्ड का दर्पण सूर्य है, जिसकी दिशा पूर्व है। इसीका नाम अग्नि है और वही पुरोहित है। 'ओं अग्निमीडे पुरोहितम्......' ऋ० १।१।१। इसलिए पुरोहितकी दिशा पूर्वमें स्वाभावितः स्थापित है।

पुरोहित

पुरोहितका अर्थ है--पुर+हित जो गुप्त रीतिसे हित करता है, वही पुरोहित है। बिना बुलाये, बिना जितलाए, बिना आभार चढ़ाए जो हित करता है वही पुरोहित है। अब तुम सूर्य और अग्निका तनिक अवलोकन कर लो। ये सबके सब बिना पुरस्कारकी प्रत्याशाके काम करते हैं। अपने आप हमारे हितके लिये दिन-रात काम करते हैं। इसलिये प्रभुका नामभी सूर्य, आदित्य, अग्नि और पुरोहित है। दूसरा अर्थ पुरोहितका है जो पहलेसे हो। इस संसारमें प्रभु पहलेसे हैं। सूर्यप्रकाशमें सबमें पहलेसे है। इसीके द्वाराही सबसे पहले ज्ञान हुआ। तीसरा 'पूर्व'का अर्थ सामने है। आत्माके सामने परमात्मा और मनके

सामने आत्मा है। इन्द्रियोंके सामने सूर्यहै जिसकी दिशा पूर्व है। चौथा पू+ख-'ख' का अर्थ है शब्द। 'पू' का अर्थ है पुष्ट करने वाला, पालन करने वाला, रक्षा करने वाला, पहुंचाने वाला। प्रकाश, (बिजली) शब्दको ले जाती है (जैसे तारके द्वारा)। पांचवां जो सबकी पूर्ति करे, वह पूर्व है। पूर्ति होती है कमीकी। यही पूर्व दिशा ही सब कमियोंको पूरा करती है। छठा अन्धकार का नाश सूर्यसे होता है। जिससे अन्धकार का नाश हो, वह पुरोहित है।

यज्ञ, यजनीय

जिस कार्यमें दान, संगठन और देवपूजा हो उसे यज्ञ कहते हैं। यज्ञ के करने वाले को यजमान कहते हैं, कराने वाले को पुरोहित कहते हैं।

यज्ञ क्यों किया जाता है ? अन्धकार, आपत्ति, दुःख और न्यूनता के नाश के लिए। अन्धकार तीन प्रकार का है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक या इसे विस्तृत अर्थों में लिया जावे तो आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक कहलाता है।

हिन्दुओं में यह प्रचलित लोकोक्ति है कि यज्ञका देवत इन्द्र है, यज्ञसे इन्द्र प्रसन्न होता है और इसकी प्रसन्नतासे सब कार्य पूर्ण कराये जा सकते हैं, इसका अभिप्राय यह है कि

आधिदैविक जगत् में सूर्य ही इन्द्र है। जो रात्रि के कारण से अन्धकार हो या मेघों के कारण अन्धकार हो तो अन्तरिक्ष में सूर्य के उदय होने से या सूर्य की कृपा से वे दोनों प्रकार के अन्धकार नाश हो जाते हैं। जब आधिभौतिक जगत में पापी [चोर, डाकू, कुकर्मी, व्यभिचारी] बढ़ जावें और अन्धेर मचा देवें तब राजा [जिसे इन्द्र भी कहते हैं और यज्ञपति भी कहते हैं] के द्वारा उनका नाश कराया जाता है और आध्यात्मिक जगत् में आत्मा को इन्द्र कहते हैं। मनुष्य पर दिन रात पाप [काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ] आक्रमण करते रहते हैं। इन्होंने अन्तःकरण में अन्धकार कर रखा है। अन्तःकरण अज्ञानावृत होगया है। मनुष्य जानता है कि यह पाप है, नहीं करना चाहिये, तो भी वह रुक नहीं सकता।

साधक पुरुष इन्द्रियों को रोकता है, मन से विचारता है, बुद्धि से निश्चय करता है, फिर भी पाप के प्रलोभन में, पापके पंजे में फंस ही जाता है, इसलिए जो यज्ञ करने वाला यजमान होता है वह इस अन्धकारका नाश करनेके लिये ही यज्ञ करता है और पुरोहित उसे कहता है—

ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते संसृजेथामयञ्च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।

तब यजमान अग्निकुंड में अग्नि रख देता है। यह मत समझो कि "उद्बुद्ध्यस्वाग्ने" का मन्त्र केवल अग्नि को ही जगाने का है।

मैंने बतलाया है कि सब क्रियाएं मनुष्य की शिक्षा के लिये हैं। वह शिक्षा आध्यात्मिक शिक्षा के प्रयोजन से दी जाती है, इसीसे पुरोहित यजमानको बतला रहा है कि [उद्] उठ, श्रद्धासे उठ। क्यों उठ? [प्रतिजागृहि] अर्थात् जगाओ। किसको जगाओ? अग्नि को जगाओ। कौनसी अग्निको जगाओ? [बुद्ध्यस्वाग्ने] चेतन अग्नि को। वह कौन-सी चेतन अग्नि है? आत्मा, जो बुद्धिसे सम्बन्धित है, ज्ञानसे सम्बन्धित है। क्यों जगाओ? बस, अपने उद्देश्यके लिये। वह उद्देश्य कौनसा है? वह उद्देश्य जो मैंने प्रथम वर्णन किया कि अन्धकार का नाश करनेके लिए यज्ञ किया जाता है। वह अन्धकार कैसे दूर होगा? नाश होगा? जैसे अग्नि के प्रज्वलित होते ही कृष्णवर्ण धूम तुरन्त बाहर निकलने को करता है ऐसे ही आत्मा के चेतन जग जाने पर पाप रूपी कृष्ण धूम बाहर भागता दृष्टिगोचर होता है। पुरोहित को सूर्य समान सामने अपनी पूर्व दिशा में समझना चाहिये और पुरोहित की आज्ञानुसार करना और चलना चाहिये। परन्तु नित्य कर्ममें कोई पुरोहित नहीं होता, इसलिए यजमान अपनी आत्मा को, जो इन्द्र है पुरोहित का रूप बना लेवे क्योंकि नित्य कर्म

में नित्य रहने वाली उसकी आत्मा ही है। जैसे यजमानको पुरोहितका अनुयायी बनकर, उसके वशमें होकर उसके पीछे चलनेकी आज्ञा है तभी यज्ञ सफल होता है, ऐसे ही यजमान को अपनी इन्द्रियोंको आत्माका अनुयायी बनाकर आत्माके वशमें रखकर उसके पीछे चलाना चाहिए। जिससे फिर कभी पाप सामने आ ही न सके, समूल नाश हो जावे। आशा है कि अब आप लोग समझ गये होंगे कि पुरोहित की स्थापना क्यों पूर्वमें की जाती है। यदि किसीको और कोई शंका हो, तो पूछ लेवे, यथा सामर्थ्य उत्तर देनेका प्रयत्न करूंगा।

इष्टापूर्त्त

श्रद्धाप्रकाश–इस मन्त्र (उद्‌बुद्‌ध्यस्व) में इष्टापूर्त्त से क्या अभिप्रेत है? क्या यही कि सम्पूर्ण इष्ट अर्थात् इच्छाओंकी पूर्ति हो जाती है?

महात्मा–आध्यात्मिक अवस्थामें जब मनुष्यकी आत्मा जग जावे तो फिर कौनसी इच्छा या इष्ट है जो इसका शेष रह सकता है? उच्च कोटिका तो अर्थ यही है। मध्यम कोटि का अर्थ–यज्ञका नाम इष्टकामधुक है अतः यज्ञों से यथा विधि संपूर्ण कामनाएं पूरी हो जाती हैं। और भौतिक रूपमें, निकृष्ट रूपमें इष्ट+पूर्त्त दो वस्तुएं हैं। इष्ट भी छः हैं और पूर्त्त भी कई हैं (१) अग्निहोत्र

(२) तप (३) सत्य (४) वेदों की रक्षा (५) अतिथि सत्कार (६) प्राणियों का पालन करना, ये सब इष्ट-कहलाते हैं और (१) बावली, कूप तालाब (जलस्थान) बनवाना (२) मन्दिर, यज्ञशाला, गुरुकुल (पूजास्थान) बनवाना (३) गोशाला, अनाथालय, धर्मशाला बनवाना (४) अन्नदान देना (५) वाटिका लगाना इत्यादि ये सब पूर्त कहलाते हैं।

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापी कूपतड़ागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते॥

इनका अभिप्राय यह है कि यज्ञ कर्मके दो भाग हैं। इष्टका सम्बन्ध नित्यसे और अनित्यसे भी है और पूर्त्त का नित्यसे है। भावना के अनुकूल फल होता है।

श्रद्धाप्रकाश--महाराज हम नहीं समझे, नित्य अनित्य का झगड़ा कैसे पड़ गया ?

महात्मा--नित्य कर्मका नाम नित्य है ही, इसलिए कि इनका सम्बन्ध नित्य रहने वाली आत्माके साथ है। जिन कर्मों से ठोस वस्तु प्राप्त होती है अर्थात् द्रव्य प्राप्त होता है वे कर्म अनित्य है और अनित्य का सम्बन्ध शरीर के साथ है, जो अनित्य है।

जिन कर्मों के करनेसे गुण प्राप्त होते हैं वे मनके साथ सम्बन्ध रखते हैं, सूक्ष्म हैं और सूक्ष्म गुण यश, बल को उत्पन्न करते हैं। परन्तु वे मन की आयुके साथ-साथ नित्य अनित्य है और जिस कर्मसे नित्यता अमरपन प्राप्त होता है वही वस्तुतः नित्य कर्म है।

इनकी व्याख्या इस तरह है :--

व्यवहार–अनित्य कर्म है। कभी इसमें अनध्याय भी हो जाता है रोग से, विवाह आदिमें व्यस्त होने से, शोक मोह में, या कई दूसरे कारणों से। यह कर्म तो है किन्तु यज्ञ नहीं कहलाता। सम्पूर्ण अयज्ञ काम कर्म नहीं हैं।

यज्ञ–देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथि यज्ञ, नित्य कर्ममें समाविष्ट हैं इनका सम्बन्ध मनसे है, इनके शुभ संस्कार मनके साथ रहते हैं और मनको निर्मल तथा उज्ज्वल करते हैं, यश और बल देते हैं। इनमेंभी कई बार विवश होकर कभी नागाकी सम्भावना हो सकती है। मन जितनी सृष्टियोंमें रहेगा उतने तक ये कर्म रहेंगे।

ब्रह्म यज्ञ–जिसमें कभी अनध्याय का विधान नहीं है। प्रभु उपासना, प्रार्थना, आत्म-चिन्तन, स्वाध्याय (अपनी आत्माका अपने जीवनका, और सृष्टिका स्वाध्याय) इससे अमरत्व प्राप्त होता है। यही नित्य कर्म है। आत्मा नित्य है, परमात्मा नित्य है। इन दोनोंका

सम्बन्ध जोड़ने वाले कर्म का नाम नित्यकर्म है। इन्हीं यज्ञोंको महर्षि दयानन्दजी ने महायज्ञ लिखा है।

समाज वाले—महायज्ञ तो हमनेभी पढ़ा है परन्तु हमारा सन्तोष नहीं होता कि अग्निहोत्रादिको ही महायज्ञ कहा जाय। अनेक बड़े-बड़े कार्य हैं। महात्मा गांधी जैसा महायज्ञ और कोन कर रहा है? इसको तो महायज्ञमें गिना नहीं, इन्हें देवयज्ञ, पितृयज्ञ, आदिको आप महायज्ञ कह रहे हैं। इसकाभी समझना आवश्यक है, और समाज का समयभी समाप्त हो चुका है, कृपा करके पुनः दूसरे समयमें समझाने का कष्ट करें।

महात्मा—बहुत अच्छा।

ओ३म्

पन्द्रहवीं झांकी

पंचमहायज्ञ

आज आर्य सज्जनों ने फिर अपने मन्दिरमें इकट्ठे होकर पंच महायज्ञके शब्द को समझने के लिए महात्मा जीसे प्रार्थनाकी है। महात्माजी ने अब अपना उपदेश आरम्भ किया।

भद्र पुरुषो ! आर्य धर्मकी विशालताका यह एक लक्षण हैकि उसमें मनुष्योंको पढ़ने वाले बालकोंके समान समझकर उनके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जावे जितनी समझका कोई मनुष्य होता है उससे न्यून बातको सरलतासे समझ सकता है, योग्यतासे अधिक बातको नहीं समझ सकता। बी० ए० श्रेणी वालेकी बात मिडिल वाले को नहीं समझ आ सकती। सनातन आर्य धर्मके अनुसार विशेष लोग विशेष कर्म अपने-अपने ढंग पर करें। परन्तु ऐसे कुछ नित्य कर्म हैं जिन्हें सभी गृहस्थी जन प्रतिदिन किया करें। धनी हो या निर्धन, बड़ा हो या छोटा, सबके लिये आवश्यक होनेसे महायज्ञ कहलाते हैं। महान् वही है जिसमें अभिमान नहीं। जो समान है, वही महान् है। जिस कर्मको राजा भी करता है और रंक भी, तो दोनों उस कर्ममें समान हैं, किसीको अभिमान नहीं हो सकता और जब जिस कर्मको राजा ने किया और रंक ने कर लिया तो वह स्वयमेव महान् हो गया।

यह तो मैंने कही हंसते हंसते। जरा रहस्य की बात भी सुनो। बीज बड़ा कि वृक्ष ! बीज है तो नन्हा परन्तु कारण है वृक्ष का जो लम्बा-चौड़ा, ऊंचा नीचा होता है इसलिए जिससे सबकी उत्पत्ति हो वह होता है महान्। ये पन्चमहायज्ञ नित्यकर्म होने से, सबका अधिकार सबके लिए आवश्यक होनेसे और सबका बीज होनेसे महान् है।

अब जरा ध्यान से सुनो। मैं विस्तार से समझाता हूं। महात्मा गांधीका काम इसीमें आ जाएगा। महात्मा गाँधी जो काम करते हैं वह इसी बीजसे पैदा हुआ है।

ब्रह्मयज्ञ, क्यों महायज्ञ है ? ब्रह्म यज्ञमें महान् प्रभुका ध्यान कर साधक महान् बनना चाहता है। क्योंकि जिस प्रकारके संकल्पमय आदर्श हमारे सम्मुख होते हैं हम वैसे ही ढलते जाते हैं। इसलिए साधक ब्रह्मयज्ञमें विशेष रूपसे प्रभुके आन्तरिक प्रकाश को देखनेके लिए उत्सुक होकर अन्तर्मुखका अभ्यास करता है।

देव यज्ञ

देवयज्ञमें वह भौतिक देवताओंमें प्रभुकी ज्योतिको अनुभव करता हुआ उनके समान उपकारी बननेका यत्न करता है। उसकी (प्रभुकी) बाह्य विभूतियों और चमत्कारोंका ध्यान करता हुआ उसके विराट् स्वरूपका चिन्तन करता है। प्रत्येक भौतिक देवतामें प्रभुके प्रकाश की रेखाको देखनेका अभ्यास करता है। प्रतिक्षण उसके रचे हुए यज्ञका चिन्तन करता हुआ अपने अन्दरसे स्वार्थ तथा तुच्छताके बीजों और अंकुरोंको बाहर उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करता रहता है। एक प्रकारसे देवयज्ञ सारे छोटे बड़े यज्ञोंका बोधक है।

देवयज्ञ एक प्रकारका प्रायश्चित्त कर्म है। वायुकी

शुद्धि तो होगी घी, सामग्री और समिधासे, परन्तु लक्ष्य तो आन्तरिक चित्त शुद्धिका है। जिस प्रायश्चित्त कर्मसे चित्त की शुद्धि नहीं होती, वह कर्म पूरा नहीं होता।

अन्तःकरणकी शुद्धि कैसे हो ? अन्तःकरण चार भागों में विभक्त है मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। मनकी शुद्धि श्रद्धासे, बुद्धिकी विश्वाससे, चित्तकी तपसे और अहंकार की शुद्धि त्यागसे होगी और इन सबका साधन ज्ञान, कर्म और उपासना है। बुद्धिमें विश्वास बिना ज्ञानके नहीं टिक सकता। त्याग और तप कर्ममें ही होता है और मनमें श्रद्धा, भक्ति न हो तो कर्म हो नहीं सकता। इसलिए यज्ञ कर्म ही अन्तःकरणकी शुद्धिका एकमात्र साधन है।

पितृयज्ञ

यह परिवारिक एकताका बढ़ाने वाला है। प्रतिदिन अपने माता-पिता गुरु तथा अन्य आश्रित सम्बन्धियों की सेवा तथा तृप्ति का ठीक ठीक प्रबन्ध करना इस यज्ञका तात्पर्य है। इस यज्ञकी महत्ता इसलिए है कि माता पिता बिना किसी प्रतिफलके भावके अपनी सन्तान की रक्षा, पालन-पोषण, त्याग भावसे प्रेम और स्नेह रस से करते हैं। उनका अंग अंग सन्तान के लिए प्रेम का स्रोत

होता है। उनका ऋण चुकाना सन्तान के लिए असम्भव है। इसलिए कि जो संतान के लिये बिना कामना के अपना कर्त्तव्य समझकर अपना सब कुछ न्यौछावर करते हैं और जिन अंगों को माता पिता ने प्रेम से सींचा है उन अंगों की कमाई को प्रेम के स्रोत की सेवा में लगावें आर्य धर्म में कुल की मर्यादा की रक्षा करना धर्म का अंग माना गया है। यह तभी हो सकता है जब वृद्ध माता पिता के प्रति सन्तान अपने कर्त्तव्य का पालन करे।

अतिथि यज्ञ

यह जातीय प्रेम तथा संगठन का अभ्यास क्षेत्र है। यह चौथा महायज्ञ वही हो सकता है जहाँ पितृ यज्ञ की प्रतिष्ठा हो। जब कोई विद्वान् सदाचारी सन्यासी महात्मा अनुभवी सज्जन हमारे यहां आ पहुंचे तो हमारा द्वार उसके स्वागत के लिए सदा खुला रहना चाहिए। वेदादि शास्त्रों में ऐसे ही अतिथियों का वर्णन किया गया है। अपने इष्ट-मित्र तथा सम्बन्धी-वर्ग की सेवा करना अतिथि-यज्ञ नहीं हो सकता। वे तो अपने अपने अधिकार से सेवा करा लेते हैं और वह कुल-मर्यादा की रक्षा निमित्त पितृ-यज्ञ में गिना जाता है। अतिथि महात्मा सामाजिक मर्यादा की रक्षार्थ प्रचार करते घूमते रहते हैं।

भूत यज्ञ

अन्त में सब संकोच का त्याग भी सिखाने के लिए भूतयज्ञ है। जैसे ब्रह्म सबके हृदयमें निवास करता है ऐसे ही साधक भी प्राणीमात्रके हृदयमें प्रविष्ट होकर उसी ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करता है। किसीके हृदयमें निवास करना हो तो उसके साथ सच्चा प्रेम और उसकी सदा सहायता करो। जब घरमें भोजन तैयार हो तो अपने आप ही न खा जाया करो। कोई पापी रोगी, कुष्ठी, पंगु, कंगाल द्वार पर खड़ा हो या भूखा पास हो, किसी अन्नदाता की प्रतीक्षा करता हो, तो जाओ प्रथम उसका पेट भरो। इसी प्रकार कुत्ता, बिल्ली, चिड़िया, कौआ आदि प्राणियों का पालन करो। आर्य जातिमें इस पवित्र धर्म का अंकुर अभी तक विद्यमान है। लाहौर में मैंने देखा कई भले पुरुष कुत्तोंको बाहर रोटियाँ डाला करते हैं, कौओंको ज्वार, मक्कीकी फुलियां, कोड़ों मकोड़ोंको तिल शक्कर। सिन्ध देशमें मैंने देखा कि नदी और समुद्रमें मछलियोंको आटेकी गोलियां बनाकर डालते हैं। मण्डियोंमें पक्षियोंके लिए छोटा अनाज डालते हैं। कहीं बड़े-बड़े नमक के ढेले पशुओं, गाएं, भैंसों आदिके मार्गमें रख छोड़ते हैं। कहीं

घास बखेर डालते हैं। यह प्रथा न केवल लाहौर, करांची में है बल्कि हिन्दू आबादीकी हर जगह पर ऐसा रिवाज है। सभी नहीं परन्तु कोई न कोई दयावान् ऐसे काम करता ही रहता है। अब समयके प्रभावसे यह रिवाज विरले आदमियोंके भाग्यमें रह गया है, आम घटता जा रहा है। यह धर्म जातीय समृद्धि और ऐश्वर्यका एक चिन्ह था। मनु भगवान् कहते हैं:—

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥ (४।२१)

यथाशक्ति, जहां तक हो सके, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथियज्ञ और पितृयज्ञ को न छोड़े।

अहन्यहनि ये त्वेतानकृत्वा भुञ्जते स्वयम्।
केवलं मलमश्नन्ति ते नरा न च संशयः॥

महाभारत १०४।१६

अर्थात् प्रतिदिन जो इन महायज्ञोंको किये बिना खाते पीते हैं, वे नर केवल मल खाते हैं, वस्तुतः इसमें संशय नहीं।

जब आप लोग यज्ञ कुण्डमें अग्नि धरनेके लिए अभी केवल कपूर या बतीको अग्निसे जगाते ही हो तो तुरन्त उसी क्षण 'ओं भूर्भुवः स्वः' कहते हो और फिर मन्त्र सारा पढ़कर अग्नि कुण्डके मध्यमें, तलदेशमें धरते हो। अगर

तुम कभी इस ओर ध्यान दो तो आपको पता लग जावे कि इस कुण्डकी रचनाका और मन्त्रका क्या आशय है ? और यजमान अपने मुखसे वेदकी यह ऋचा पढ़कर अपने लिए किसी बड़ी महत्ताको प्राप्त करनेके लिये प्रार्थना करता है। वह क्या बनना चाहता है ? कुण्डके आकारसे प्रकट है कि तल बिल्कुल छोटा है। ज्यों-ज्यों ऊपर बढ़ता है चौड़ा होता जाता है और अन्तमें बिल्कुल विशाल हो जाता है। यह नीचे का तल भूलोक है। मध्य का भुवः है, अन्तरिक्ष है। ऊपर का भाग विशाल स्वःलोक है। यजमान जब थोड़ी-सी अग्नि भूमिके तल पर रखता है तो 'भूर्भुवः स्वः' से बतला रहा है कि हे प्रभो ! जिस प्रकार यह अग्नि अपनी ज्वाला नीचेसे ऊपर तक फैला देगी, ऐसे ही मेरी दी हुई आहुति, मेरा यह यज्ञ कर्म भूः से स्वः लोक तक विस्तृत हो जाय। भूः से स्वः तक के प्राणियोंको पहुंचा दो। मेरा सब भूतोंमें निवास हो जाय। कितना महान् त्याग और महान् उत्तम भाव है।

अब अर्थ भी सुन लो। हे पृथिवि (देवयजनि) जिस पर देवता नित्य यज्ञ करते हैं और जहां उनकी पूजा होती है (तस्याः) इस प्रकार की (ते) तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नाद्याय) भक्षण योग्य अन्नके लिये (अन्नादम्) सर्व-भक्षक (अग्निम्) अग्निको (आदधे) रखता हूँ, ताकि मैं

(भूः) भूलोक (भुवः) अन्तरिक्ष लोक (स्वः) स्वः लोक के रस रूप गुणोंको धारण कर सकूं। (भूम्ना) बड़ाई में (द्यौः इव) नक्षत्र आदि की महिमासे महान्, देवलोकके समान तथा (वरिम्णा) विस्तारमें (पृथिवी इव) पृथिवीके समान सब प्राणियोंका आश्रय बन सकूं।

सेठ दिलबागराय—महाराज! हम भी तो चिरकाल से यज्ञ किया करते हैं। शोक कि कोरे रहे। हम तो अपने आपको कर्मकाण्डी, अग्निहोत्री कहते हैं। अपने मन के सन्तोष और लोगोंकी प्रशंसाके अतिरिक्त हमारे पल्ले तो कुछ नहीं पड़ा।

महात्मा—कर्मण्यताको छोड़कर ज्ञान धारण करना तो बालू पर मकान बनानेके समान है और ज्ञानसे पृथक् होकर कर्म अन्धे घोड़ेके समान है जिसे घसीटकर ही ले जाना पड़ता है। उसे स्वयं मार्ग दिखाई नहीं देता। त्यागसे युक्त होकर जो कर्म करना सीख जाता है उसके अन्दर ज्ञान द्वारा विकास पराकाष्ठा को पहुंचकर उसे सिद्ध तथा मुक्त बनानेमें बड़ा सहायक होता है, ऐसा विद्वान् और शास्त्रकार कहते हैं। ज्ञान रहित मनुष्य सुकृतके मार्गको नहीं जान सकता अर्थात् ज्ञान और कर्म मिलकर ही सुकृतके मार्ग पर चलानेमें सहायक बनते हैं। कर्म सुकृतका मार्ग है जिसे ज्ञान दिखाता है। कर्मका बल ज्ञानसे बढ़ता है और ज्ञान

की रक्षा कर्मसे होती है। उदाहरणार्थ—एक रोगी पित्त रोगसे पीड़ित है। वैद्यके पास गया। उसने कहा मधुर और शीत वस्तुका प्रयोग करो। अब यदि रोगी कहे कि इनमें से कौनसी वस्तु अर्थात् मधुर या शीत मुझे लाभ देगी तो उसकी भूल है। वैद्यने तो बतला दिया कि वह वस्तु जिसमें दोनों गुण हों, पितके रोगको शान्त करेगी अकेली एक गुण वाली नहीं।

ऐसे ही शास्त्रकारोंने बतला दिया कि जन्मसे छूटने [आवागमनके रोग] का इलाज है ज्ञान सहित कर्म। न अकेला ज्ञान, न अकेला कर्म। इसलिये प्यारे भाइयो! यदि यज्ञरूप बनना चाहते हो, अग्निहोत्री कहलाना चाहते हो, आर्य धर्मको जगतमें फैलाना चाहते हो, तो अपने कर्मों को ज्ञानसे, विचारसे, विधिसे, श्रद्धासे स्वादिष्ट बना दो ताकि दूसरे चखकर मुग्ध हो जावें।

—: ० :—

ओ३म्

सोहलवी झांकी

स्वाहा शब्दकी व्याख्या—आज वही महात्मा प्रातःकाल के समय एक बागमें सैर करते करते एक बूटीके पास टकटकी लगा बैठे ही थे कि कुछ आर्य सज्जनोंकी एक मण्डली

आई, कई हैट लगाये, कई नंगे सिर, कई पगड़ी और टोपी पहने थे वे आकर खड़े हो गये और महात्माकी इस कार्यवाहीको देखने लगे कि यह क्या देख रहे हैं। कुछ देर बाद महात्माकी आंखोंसे पानी टपकने लगा और मुखसे 'अहा' निकला। परन्तु खड़े हुए भद्र पुरुषोंने 'स्वाहा' समझा और तत्काल बोल उठे कि महाराज ! आप पर यज्ञकी धुन इतनी सवार है कि न यहाँ अग्नि है, न कुण्ड है, न घी न सामग्री, फिर भी आप 'स्वाहा' बोल रहे हैं। क्या यहां भी हवन कर रहे हैं ?

महात्मा मुस्करा दिये और कहा भाई, प्रभुका धन्यवाद है कि तुममें भी मेरी तरह पागलपन है आपको मेरी 'अहा' भी 'स्वाहा' प्रतीत हुई। आप धन्य हो, भला आप ही बतलाओ कि मनुष्य 'अहा' का शब्द कब कहता है ?

लोग--जब कोई खुश होता है, किसी चीजको देखकर सुनकर या पाकर, तब उसके मुखसे 'अहा' स्वयमेव निकल पड़ता है।

महात्मा--और स्वाहा कब कहा जाता है ?

लोग--जब अग्निमें आहुतिदी जाती है।

महात्मा--तो क्या अग्निमें आहुति देनेके अतिरिक्त कभी स्वाहा नहीं कहा जाता ?

लोग--नहीं।

महात्मा--जरा चुप होकर शान्तिसे विचार करो कि बिना अग्निकी आहुतिके भी 'स्वाहा' बोला जाता है या नहीं सब चुप हो गये और विचार करने लगे, किसीको कुछ स्मरण न आया।

अब महात्मा बोले, भाई! आचमन मन्त्रोंको ही दुहरा लो। अब सबके कान खड़े हो गये। कहा, हां महाराज! वहां तो तीन आचमनों में तीन बार स्वाहा कहते हैं परन्तु हमारी तो मति ही मारी गई। प्रतिदिन करते हैं पर अब याद ही नहीं आया। अब यहां पर एक संशय और भी बढ़ गया कि आचमन-मन्त्र तो पानीका घूंट पीने के लिये है, जिससे कण्ठ की कफ-निवृत्ति हो जावे स्वाहा भी कहते हैं तो यह कैसे आहुति बन गई? महाराज! अब आप ही समझायें। हम तो और चक्करमें आ गये।

महात्मा--यह आचमन केवल कफ-निवृतिके लिये नहीं इसमें बड़ा भारी रहस्य है। अग्निमें हविके स्वाहा करनेसे क्या परिणाम होता है?

सेठ दिलबागराय--हविष्य पदार्थके गुण अग्निके संगसे सूक्ष्म होकर आकाशमें दूर-दूर फैल जाते हैं और जहां जलवायुको शुद्ध करते हैं वहां पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों को भी सुगन्ध और पुष्टि देते हैं, रोगोंका नाश करते हैं।

महात्मा--ठीक कहा। तो जो हवि मनुष्यके अन्दर

जाय, वह भी पिण्डके अन्दर फैल जानी चाहिये ?

सेठ०--हां जी, और फैल जाती है। जैसे हम जल पीते हैं, रोटी खाते हैं, वह सूक्ष्म होकर हमारे अंग-अंगमें फैल जाती है और सबको शक्ति देती है।

महात्मा--जो चीज मनुष्य खाता है उसके कितने गुण शरीरमें पैदा होते हैं।

सेठ--यह तो महाराज ! कोई वैद्य बतलायेगा।

केशवदेव--जितने पदार्थ हम खाते हैं एक तो उनमें रंग होता है, दूसरे गन्ध आती है, तीसरे स्वाद होता है, चौथे गर्मी-सर्दी तरी खुश्की होती है। इन सबका असर होता है, मलसे, मूत्रसे पता लगता है, और वह ठोस भाग (स्थूल) मल बनकर बाहर निकलता है। जैसे साग खानेसे मल हरे रंगका आता है। प्याज आदि खानेसे मलमें वैसी दुर्गन्ध आती है। मिर्च खानेसे मूत्रमें और शौचके समय गुदामें बहुत जलनसी होती है। ऐसे इसका सूक्ष्म भाग रुधिरमें असर करता है जिससे गर्मी सर्दी या वात, पित्त, कफ की अधिकता या न्यूनताका ज्ञान होता है। इससे अधिक मुझे भी कुछ ज्ञान नहीं। मैं साधारण वैद्य हूं।

महात्मा--ठीक ऐसे ही जो हवि हम अन्दर देते हैं उसका असर भी हमारे शरीरमें हो जाना चाहिये, स्थूलका

प्रभाव स्थूल पर, सूक्ष्मका प्रभाव सूक्ष्म भागों पर। जब कहते हैं "ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा" तो जलरूपी हविसे हमारे अंग-अंगमें सत्य, यश, शोभा संपत्ति समा जानी चाहिये, फैल जानी चाहिये। आदमी जो हवन कुण्डके पास बैठा है और हविके से उसे सुगन्ध नहीं आती तो यही कहा जाता है उसकी नाक बन्द है। उसे सुगन्ध नहीं आती वह नजदीकही बैठा है। ऐसे ही जो मनुष्य अग्नि करता है और आचमनसे ऐसा कहकर स्वाहा पर जलकी हवि लेता है और वह हवि अपने गुणोंको फैला है और हमारे मनमें सत्य और आत्मामें यश, शरीर शोभा और बुद्धिमें ज्ञान (सम्पत्ति) उत्पन्न नहीं होता समझोकि सबकेसब तालेसे बन्द हैं। खुशी और आन तो तबही आता है अग्निहोत्रीको, जब उसके अंग-अंग की हवि बन जायें। असली उद्देश्यतो आहुतिका अन्तःकरणकी पवित्रता और ऊंचाईका है। बाहरकी ह से तो जलवायु पवित्र हो गये और ज्वाला प्रकाश चढ़ गया। अपना अन्तर कोरा रहा तो फिर वही हा हुआकि दीपकने दूसरोंको प्रकाश दिया और खुद उस अपने तले अन्धेरा रहा।

कृष्ण—जलके लेनेसे सत्य किस तरह उत्पन्न होगा ऐसे अपने आप कल्पना कर लेनी है ?

महात्मा—कल्पना तो करनीही पड़ती है परन्तु इस कल्पना शक्तिका कोईभी असर नहीं होता जब तक इसके साथ एकाग्रता और इच्छा-शक्ति प्रबल न हों। और कल्पनाभी वही होती है जो यथार्थमें सम्भव हो गलत कल्पनाका नाम कल्पना नहीं है वह विकल्प होता है। अदालतों के अन्दर जब अभियोक्ता (मुदई) या अभियुक्त [मुदालिया] को गवाहों पर किसीभी कारणसे किसी एक पक्षके षड्यन्त्र, चालबाजी, जोर या रोबसे दूसरे पक्षको विश्वास नहीं होता तो वह कह देता है कि जलका लोटा हाथमें लेकर यह कह दे तो बस उसीका कथन स्वीकार अर्थात् जल सत्यकी सोगंधकी एकमात्र जमानत या ...त है। परमात्मा और आत्माके मिलनेका साधन सत्य और संसारकी चीजों के मिलापका साधन एक जल ही है। जो दो चीजें आपसमें मिलेंगी उनमें जलतो अवश्य आयेगा।

असली अभिप्राय आचमन और अंगस्पर्शका तो यही है कि पवित्रता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। धन तो मनुष्यको ...नके बदलेमें मिलता है परन्तु स्वतन्त्रता तो कभी धन-दान ...से नहीं मिलेगी। पवित्रतासे ही स्वतन्त्रता मिल सकती है। पवित्रताके लिये त्याग वृत्तिकी जरूरत है। यज्ञतो बिना त्याग-वृत्तिके पूर्ण ही नहीं हो सकता। हवि, अन्न-धनका त्यागभी त्याग कहलाता है पर यह अन्य भूतों, प्राणियोंके साथ सम्बन्ध रखता है। वास्तविक त्याग मम

वृत्तिका है जो आत्मासे सम्बन्धित और इसी से स्वतन्त्र
मिलती है। होताका अर्थ है, त्याग करने वाला। त्या
वह कर सकता है जो स्वामी हो। दासोंका त्याग उपह
होता है और अपने आपको धोखा देना है। इसलिये य
करने वालेको स्वतन्त्र होनेका यत्न करना चाहिये। प
तन्त्रतामें अग्निहोत्र करनेका पूरा अधिकार नहीं
सकता। स्वराज्य प्राप्तिके लिये आत्मसिद्धि श्रेष्ठ उपा
है। तीसरे आचमन मन्त्रसे तो जब मनमें सत्य बस जा
तो पवित्रता आ जाती है। और अंग-स्पर्शका अन्ति
मन्त्र यह शिक्षा देता है कि शरीर तुम्हारा है और पह
मन्त्रोंमें यही भाव है। उदाहरणार्थ--"ओं वाङ्
आस्येऽस्तु" अर्थात् यह जबान जिह्वा, वाणी, वाक्शक्ति
मेरे मुखमें रहने वाली मेरी हो, मेरे अधिकारमें हो, मे
इस पर पूरा काबू हो। आज संसार इस जिह्वा,के उल
आधीन हुआ है। एक तोलेकी जीभ तेरह नाच नचा
है। जरा किसीने प्रतिकूल बातकी, मेरी जबान अपने
बाहर निकल खड़ी ? मैं इसे नहीं रोक सका और परि
णाम यह हुआ कि परस्पर कलह होगया और मुकदमा
बाजी हुई और मुझे गवाहों, वकीलोंकी लल्लो-चप्पो
प्रार्थना, खुशामद और आधीनता करनी पड़ी।

किसी अच्छी चीजको देखा, मुंहमें पानी भर आया
जबानने बाहर निकलकर या भीख मांगी या चापलूसी

या बेईमानीका पाप कराया। यदि यह वाणी मेरे काबूमें हो तो मैं इसका स्वामी हूँ। यही स्वतन्त्रता है।

फिर कहा "ओं नसोर्मे प्राणो अस्तु" अर्थात् मेरी नासिकामें चलने वाला प्राण मेरे आधीनहो। मुझे अपने प्राण पर पूरा वश हो। अंग स्पर्शका मतलब तो यही था पर प्राण मेरे वशसे बाहर है। मैं इसे एक मिनट भी नहीं रोक सकता। मेरा दम निकलता है। और जिन योगियों ने अपने प्राणको वशमें किया उन्होंने अपनी वासनाओंको वशमें किया। वही मुक्त हुए इस प्राणके काबू न कर सकने से ही तो मेरी सब इन्द्रियोंकी मति उल्टी है। फिर कहा–"ओं अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु" मेरी आँखके गोलकमें रहने वाली दर्शनशक्ति मेरी हो जाय, लेकिन मैं अपनी आँखको पाँच मिनट भी नहीं मूंद सकता। जरा झंकार हुआ, झट खुल जाती है। जरा कोई सुन्दर वस्तु देखी उसीकी ही बन गई, मतवाली हो गई। इसीके बाहर निकलनेसे तो इसकी शक्तिको कमजोर कर दिया और अब देखनेमें भी ऐनक की दास हो गई। जिसका आँख पर वश हो गया, पवित्रता तो भाग गई।

आगे है "ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु"। यह सबसे बड़ा देवता है। इस पर नियन्त्रण करना कठिन है। आज संसार में वैर-विरोधका बड़ा कारण कान और जिह्वा है जिह्वा निन्दा चुगली करती है और कान निन्दा सुनते हैं। ये

आपसमें एकता न करें तो आज लड़ाई बन्द हो जाय। कान पर काबू नहीं। दिन रात दूसरेकी निन्दा और अपनी स्तुति सुनकर खुश हो रहा है। अपनी निन्दा और दूसरेकी स्तुति सुनकर जल भुन रहा है। "चश्म बन्दो गोश बन्दो लब बबन्द। गर न बीनी सिरेहक बर मन वखन्द"। किसी महात्माने बड़ा सुन्दर कहा है कि आँख, कान, मुख बन्द करो तो फिर प्रभुकी गुप्त ज्योतिके तुम्हें दर्शन होंगे। इस अंग स्पर्शका यही उद्देश्य है कि मेरे कान मेरे वशमें हों, मेरे हो जायें। 'ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु' मेरे बाहुका बल मेरा हो जाय अर्थात् मुझे जो आन्तरिक शत्रु सताते हैं, मेरा बल उन पर व्यय हो और दीन-दुःखियोंकी रक्षा कर सकूं। अगर मेरी बाहुका बल किसी दूसरेके आधीन है तो जहां जायगा वहीं लड़ावेगा। बल शब्द 'ब'+'ल' से बना है। 'ब' से बुराई 'ल' से लय। जो बल बुराईको लय कर सकने वाला हो, नाश करने वाला हो वही बल है। और जो बुराईको फैलाने वाला हो वह क्या बल कहलायगा ?

"ओं उर्वोर्मे ओजोऽस्तु" मेरी टांगोंका ओज मेरा हो। ओज वह वस्तु है जिससे सामने खड़े व्यक्ति पर छाप पड़ जाती है। वह आधीन बन जाता है।

अगर यज्ञ करने वाला साधक काल्पनिक तौर पर अंग स्पर्श न करे तो अपने संकल्पोंसे जल द्वारा इन अंगों

को वह सम्मोहित (mesmerised) कर दे। जब प्रतिदिन ऐसा अभ्यास हो तो क्यों न फिर बल शक्तिका विकास हो। पर शोककी बात है कि हमारी सब क्रियायें अज्ञानत के कारण विफल सी रहती हैं। परमात्मा करे हम सबमें ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हो कि हम अपने आपको यज्ञ क्रियासे पवित्र और स्वतंत्र बना सकें।

—०—

ओ३म्

सतरहवीं झांकी

यज्ञकुण्ड की जलनाली का रहस्य

"ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा" इत्यादि मंत्रका रहस्य—

केवलकृष्ण जी बड़े श्रद्धालु और धर्मसे प्रेम रखने वाले थे। आज प्रातःकाल महात्मा जी को बुलाने आ गये कि "महाराज आओ, मेरे घर पर हवन करें।" महात्माने कहा, "आपने कल तो कहा नहीं।"

कृष्ण—मैं केवल नित्य कर्मके लिए आपको बुलाने आया हूं कि मेरे साथ कर लेवें। मैंने कोई विशेष यज्ञ नहीं कराना, न लोगोंको सूचना दी है।

महात्मा—यह विचार क्यों पैदा हो गया? क्या मेरे पास हवनकुण्ड नहीं है, या मैं स्वयं नहीं कर सकता?

कृष्ण—न महाराज, मेरा यह भाव तो नहीं, मुझे ऐसे विचार आ गया कि इस बहानेसे वेदिकी नाली और पानी का अभिप्राय पूछ लूंगा।

महात्मा—तो ठीक है, लो आओ, यहाँ ही बैठ जाओ, मैं अब हवन करूंगा, मेरे साथ ही करलो, और पूछलो, जो बात दिलमें उठी है।

कृष्ण—नालीके पानीके सम्बन्धमें हम तो ऐसा सुनते आते हैं कि कीड़े मकोड़े अन्दर न जा सकें पर आध्यात्मिक अर्थ तो और होगा ?

महात्मा—एक वैदिक शब्दके जैसे कई अर्थ होते हैं, ऐसे यज्ञकी या वेदकी क्रियाओंके कई अभिप्राय होते हैं। जो कुछ आपने सुना कि कीड़े मकोड़े की रक्षा होती है, यह भी ठीक है, दूसरा अभिप्राय यह है। हमारे पूर्वज बड़े सूविज्ञ थे, दूरदर्शी थे। वे अपने बालकों और शिष्यों को बिना मस्तिष्क पर बोझ डाले ऊंची बातें सिखा देते थे। वे पुरुषार्थ तो केवल आध्यात्मिक उन्नतिके लिये करते थे। देखो ! जब अग्न्याधानके मंत्रसे इस वेदीको पृथ्वी आदि तीनों लोकोंमें बांटनेकी कल्पना की, तो पृथ्वीके चारों ओर पानी ही पानी है। ऐसे मंत्रों द्वारा क्रिया कराके मस्तिष्कमें बिठा दिया कि पृथ्वीके चारों तरफ ऐसे समुद्र जल है। तीसरा अर्थ यह है, देखो यह हवन कुण्ड है, हवन

कुंडके बीच का भाग प्रकाश लोक है और जिस प्रकार यजमान का स्थान है वह मर्तलोक पृथ्वी है। इन दोनोंके मध्यमें जलकी नाली है। निष्कर्ष तीन लोक-भूः (बैठनेका स्थान), भुवः (नाली जल भरी) और स्वः (प्रकाश) बन गये। हमने अब पृथ्वी लोकसे प्रकाश लोकमें पहुंचना है। इस नालीके दो

जल
त्याग
जल त्याग अग्नि का प्रकाश त्याग जल
त्याग
जल
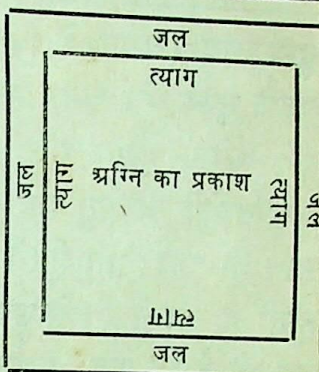
श्रद्धा
पृथवी

किनारे हैं। जो किनारा यजमानकी तरफ पृथ्वी पर है वह श्रद्धा का है और जो किनारा पार का प्रकाश (कुंड) की दीवार सा है वह त्यागका है। श्रद्धा और त्यागके मध्यमें प्रेमका जल भरा हुआ है और यह प्रकाशरूपी अग्निकी रक्षा करनेके लिये बह रहा है। अग्नि अपनी प्रकाश रूपी ज्वालासे प्रेमके जलको अमृतके रूपमें भाप बना "भूः" से ऊपरके 'भुवः' लोकमें ले जा रही है और "स्वा" लोकका सम्बन्ध जोड़ रही है।

यदि श्रद्धाका किनारा टूट जाय (श्रद्धा यज्ञमें टूट जाय) तो प्रेम (यज्ञ रूपी जल) मर्त लोक मिट्टी में मिल जायगा। बिना श्रद्धा यज्ञ तम रूप हो जायगा। अगर अन्दर की तरफ का किनारा त्याग टूट जाय तो अग्नि ही

बुझ जाय (त्याग के बिना यज्ञ की मृत्यु है)। इसलिये यज्ञके मुख्य अंग श्रद्धा और त्याग है।

'ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेद....की पांच आहुतियोंके पश्चात् जब अग्नि कुण्ड चारों ओर से प्रकाशमान हो रहा होता है तो कुण्ड के चारों ओर जलकी क्रिया होती है, नाली जलसे भर दी जाती है। इसका अभिप्राय यह भी है कि जब मनुष्यको पांच चीजें—स्वास्थ्य प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस और अन्नादि—मिल जावें तो फिर उसे शान्ति आ जानी चाहिए और सर्व संसारके प्राणियोंके साथ प्रतिज्ञा अनुसार 'इदमग्नये इदन्न मम' चारों ओर पानी नालीमें डाला जाता है, जो शान्ति और संसारके उपकारका एकमात्र चिन्ह है।

इष्ट कर्म का करना और आध्यात्मिक लाभकी आशा करना ही आस्तिकता का स्वरूप है। जिसका प्रभुकी विभूतियों और आत्मिक प्रेरणाओं पर विश्वास न हो वह सच्चे हृदयसे इन कर्मोंमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। अरुचिपूर्वक किया हुआ कर्म ग्लानि ही पैदा करता है। इन कर्मों का भौतिक रूप लोगोंके सामने रहता है। भौतिक प्रेरणा का फल भी भौतिक ही होता है। आत्मिक कल्याण के भावसे किया हुआ यज्ञ एक प्रकारके अदृष्ट फलको पैदा करता है। जब यजमानके साथ इसका सम्बन्ध हो जाता है तो वह स्वर्गका अधिकारी बन जाता है। अर्थात्

यज्ञका परिपक्व फल आत्मिक विकासके पूर्ण होने पर ही अनुभव होता है, पहले नहीं। इसी अवस्था को स्वर्ग या मोक्ष की अवस्था कह सकते हैं।

कृष्ण—पांच बार जो आहुतियां "ओं अयन्त इध्म आत्मा" आदि मन्त्रसे दी जाती हैं उनमें क्या भावना रखनी चाहिये ?

महात्मा—प्रत्येक गृहस्थीको पांच चीजोंकी उन्नतिकी आवश्यकता है। प्रतिदिन पांचों चीजें इस मन्त्रमें मांगी गई हैं। एक मन्त्रके साथ एक एक भावना करनी चाहिये। जो भावना हो उसी शब्द पर जरा जोर हो ताकि बोलते समय मन पर प्रभाव पड़े। जो मनमें है वही वाणी पर हो और जो वाणी पर है वही 'स्वाहा' के कहने पर हाथकी क्रियासे हो।

इससे दो लाभ हैं। एक तो अपने मन पर प्रभाव पड़ता है दूसरा आहुति न्यूनाधिक नहीं होती। नहीं तो बहुत बार यज्ञ करने वाले का ध्यान कहीं और होता है और मन्त्र पढ़ता है तो पता नहीं रहता कि पाँच आहुतियां पूरी हो गई या न्यूनाधिक हुईं। कभी चार आहुतियां देकर पानी का लोटा उठाने लग जाता है, कभी छः दे बैठता है। मन्त्र उच्चारण करते समय शब्दके अर्थके साथ हृदयमें सम्बन्ध बनाता जाय और उन विशेष शब्दों पर अर्थ के साथ भावनाको जोड़ लेवे। पहली भावना तो

"चेद्धवर्धय" पर, अर्थात् हे जातवेद अग्ने ! जैसे तू इस काष्ठ रूपी अपनी आत्मासे उन्नत होती, प्रकाशित होती है ऐसे [च] और हमको भी "इध्यस्व" चमकाओ, प्रकाशित करो। तेजस्वी, ओजस्वी, यशस्वी करो। दूसरी "प्रजया" शब्द पर भावना, पुत्र पौत्रादिक सन्तानसे बढ़ाओ। यहां "प्रजया" का अर्थ केवल साधारण सन्तान न समझना। यज्ञ करने वाले को जो सन्तान मिलती है वह "प्र" का अर्थ है प्राप्त करने वाली और "जया" विजय, जो सदा जय को प्राप्त करने वाली होती है। ऐसी भीरु, दुर्बल, अयोग्य सन्तान नहीं होती जो हार पाती रहे।

तीसरी "पशुभि" शब्द पर भावना, गौ, बैल, घोड़े हाथीसे बढ़ा। चौथा "ब्रह्मवर्चसेन" शब्द पर भावना, ज्ञान तेज, या ब्रह्म जानने वाले महात्माओंके ओजसे बढ़ा। पांचवीं 'अन्नाद्येन' शब्द पर भावना, खाने योग्य अन्नसे, सब खाद्य पदार्थों से हमें बढ़ा। प्यारे कृष्ण ! मेरा तो विश्वास है कि यदि गृहस्थी शुद्ध भावनाके साथ प्रातः सायं स्त्री पुरुष मिलकर अग्निहोत्र करें तो वह गृहस्थ इन पांचों वस्तुओंसे कभी खाली नहीं रहेगा। आज गृहस्थी सन्तानके लिये रोते हैं। किसीके सन्तान नहीं होती तो दवाइयां करता फिरता है और किसीके होती हैं तो वह सन्तान अयोग्य और कमजोर माता-पिता को कलंकित करने वाली होती है।

यज्ञ करने वाले की गोद कभी खाली नहीं रह सकती, सदा हरी भरी रहेगी। दुष्काल क्यों न पड़ जाय, किन्तु उसके पास ईश्वरकी कृपासे अन्नकी कमी न होगी। दूध भले वह आलस्यसे न पीवे, परन्तु उसके यहां दूधकी सामर्थ्य रहेगी। प्रायः माताओंको बच्चेको जन्म देकर, स्तनोंमें दूध सूख जानेसे या दूषित दूध होनेसे दूसरोंके मुख की ओर ताकना पड़ता है, बच्चेको पालन करनेके लिये अग्निहोत्री गृहस्थीको यह कष्ट न होगा।

दूसरी बात जिसका मैं तुम्हें ध्यान दिलाना चाहता हूं। उसको भी सुनो। वह आपकी वृत्तिके अनुसार है। संतान, पशु, अन्न तो साधारण भी चाहते हैं और बहुतोंके पास है भी, परन्तु यज्ञ करने वाले के भाग्य तो यह हैं कि वह योगियों और परमेश्वरके जिज्ञासुओंके तेजसे युक्त होना चाहता है। छान्दोग्योपनिषत् में लिखा है कि ऋषि श्वेतकेतु यात्रासे लौटकर जब अपने शिष्यको देखते हैं तो शीघ्रही ये शब्द उनके मुखारबिन्दसे निकलते हैं, कि 'ब्रह्म-विद् इव सौम्य ते मुखं भाति' हे प्रिय! तेरा मुख परमेश्वर को जानने वालोंके समान चमक रहा है। साधु महात्माओं के शिरकी छवि सारे संसारमें प्रसिद्ध है, सो इस तेजको प्राप्त करनेकी कामना इस मन्त्रमें की गई है।

कृष्ण—हम प्रतिदिन इस मन्त्र द्वारा पांच बार आहुति देते हैं और पांच पदार्थोंके प्राप्त करने की परमात्मासे

प्रार्थना करते हैं। यज्ञके द्वारा जो पदार्थ मांगा जाता है, वह अवश्य मिलता है परन्तु हम कोरे रह जाते हैं। क्या यज्ञ इष्टकामधुक नहीं हैं ?

महात्मा—यज्ञ तो इष्टकामधुक है परन्तु परमात्मा भी क्या करे ? कैसे दे ? कहाँ दे ? बालक रो रहा है। यज्ञ शेष बांटा जा रहा है। मुझे भी मिले। रोता हुआ कहता है मुझे बहुत दो, थाली भर दो। बाँटने वालेने कहा, लो! बालकने हाथ किया। उसको भर दिया परन्तु थाली नहीं दी। बालक रोता है, सारी थाली दो। हाथ उसका छोटा-सा है, वह तो भर गया है। अब बांटने वाला कहां देवे? कैसे देवे ? वह कहता है, लो परन्तु हाथमें स्थान नहीं। ऐसे ही प्रभु इस मन्त्रमें मांगी हुई वस्तुओंका यज्ञ शेष देने के लिये तैयार है परन्तु लेने वालेके पास स्थान नहीं।

[१] प्रकाश मांगा। प्रकाश का स्थान है, अन्तरिक्ष, जो खाली हो। हृदय अन्तरिक्ष है परन्तु वह खाली नहीं। द्वेष अग्नि से पहले जल रहा है। अब प्रभु प्रकाश कहां प्रकट करें ?

[२] प्रजा मांगी। प्रजाके लिये स्त्री चाहिये। और फिर स्त्री पुरुष कैसे हो ? प्र-प्राप्त करने वाली, जया-जय को प्राप्त करने वाली जब सन्तान मांगी तो दोनों स्त्री पुरुष पवित्र हों, बलवान हों, नीरोग हों।

[३] पशु मांगे। पशुके लिये स्थान हो और उसके लिये आहारकी सामग्रीहो, यह धन आदि का काम है। धन मिलेगा पुरुषार्थसे। मनुष्य आलसी न हो, पुरुषार्थी हो। पशुमें चूहेसे लेकर हाथी तक पशु हैं परन्तु जिन पशुओंसे मनुष्यकी आत्माका सम्बन्ध है अर्थात् जिनके सम्बन्धसे मनुष्यकी आत्मा प्रयत्नशील बन सकती है। वे पशु मनुष्यकी दृष्टिमें रहते हैं।

[४] ब्रह्मवर्चस मांगा यह चीज सबसे कठिन है। यह मिलती हैं भक्ति से, ब्रह्मकी समीपतासे। भक्ति बिना ब्रह्मचर्यके नहीं हो सकती। ब्रह्मचर्य तो पहलवान भी रखता है परन्तु ब्रह्मवर्चस उसमें नहीं आता। वेदमें प्रार्थना की गई है—

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि देह्योजोऽस्योजोमयि धेहि मन्यु रसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

यजु० अ० १६ मंत्र ६।

एक तेजको प्राप्त करनेके लिये पाँच चीजोंका संग्रह पहले चाहिये। तेज मिलेगा वीर्यसे, वीर्य मिलेगा बलसे, बल मिलेगा ओजसे, ओजको प्रकट करने वाला मन्यु है। मन्यु सहन शक्तिसे, धैर्यसे आता है। सात्विक आहारसे ओज बनाया जाता है। ६० कतरा दूधसे एक कतरा घी, ६० कतरा घीसे एक कतरा रक्त, ६० कतरा रक्तसे एक

कतरा वीर्य और ६० कतरा वीर्यसे एक कतरा ओज बनता है। विषय वासनाओंका विरोध मन्यु द्वारा किए बिना ओज उत्पन्न नहीं होता। अतः ब्रह्मवर्चसके लिये अति तपस्या की आवश्यकता है।

[५] अन्न मांगा गया है। यह पांचवीं चीज है। यही भोग है। मनुष्य इस भोगके लिये जो सबसे आखरी चीज है, जो अदृष्ट है और प्रभुने अवश्य देनी है, अपनी सारी आयु इसीमें लगा देता है। बाकी चीजोंका विचार ही नहीं, जिससे मनुष्यका छुटकारा होता है।

यदि प्रकाश नहीं, तो सन्तान किस कामकी? मोहमें पड़कर आवागमनका चक्कर ही काटना पड़ेगा। यदि प्रकाश है, सन्तान नहीं, तो पशु किसके लिये? दूध मक्खन किसके लिये? यदि सन्तान और पशु हैं और ब्रह्मवर्चस नहीं तो, बन्धन। यदि अन्न है और भक्ति नहीं, तो पशु से अधिक क्या मूल्य है? यह सब कुछ कैसे हों। 'इदम् अग्नये इदन्नमम' अर्थात् मैं प्रकाश मांगता हूं तो अपने लिये नहीं परन्तु प्रभु अर्पण करनेके लिये। अब 'इदन्न मम' अपने लिये नहीं 'इदमग्नये' सब भगवान् की पूजाके लिये माँगता हूं। ऐसा उपासक अग्निहोत्री कहलाता है।

कृष्ण—यह तो गृहस्थोके लिये आपने कहा परन्तु वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी भी तो इस मंत्रको पढ़ता है, वह भी तो पांच बार आहुति देता है।

महात्मा--भाई मेरे ! [१] प्रकाश [२] पशु [३] ज्ञान तेज या महात्माओंका संग [४] अन्न ये चार वस्तुएं तो वानप्रस्थीको भी चाहियें और ब्रह्मचारीको भी। शेष रही प्रजा, सो प्रजाका अर्थ संतान, परिवार, सहपाठी, शिष्य, यजमान, प्रजा और भृत्य, सेवकके भी हैं। वानप्रस्थीका शिष्य मण्डल ही प्रजा है। ब्रह्मचारी का परिवार उसके सहपाठी, गुरुके कुलके वासी हैं। ब्राह्मणके लिये प्रजा उसके यजमान, राजाके लिये प्रजा, उसकी अपनी प्रजा (रियाया) है। वैश्यके लिये भृत्य सेवक, गुमाशते परिवार पुत्र पौत्र होते हैं।

तीनों वर्णों वाले जब भी आहुति देवें, अपने वर्णानुकूल इस अग्निकी ज्वालामें दृष्टि रखकर यही उद्देश्य या भावना करनी चाहिये। ब्राह्मण सदा प्रकाशकी भावना करे। क्षत्रिय अग्निके भस्म करनेके गुणको देखकर यह भावना करे कि 'जैसे अग्नि पर जो आक्रमण करता है तो अग्नि उसे भस्म कर डालती है, ऐसी मुझमें शक्ति आवे कि मैं पापी, दुरात्मा, प्रजाके दुःख देने वाले शत्रुओंको भस्म करदूं'। वैश्य अग्निके स्वर्णमय वर्णको देखकर स्वर्ण वृद्धिकी इच्छा करे।

कृष्ण—ये सब अर्थ तो सकाम हुवे, अतः अग्निहोत्रके समय हमारी भावना तो सकाम ही रहेगी।

महात्मा--इसके आगे "इदमग्नये इदन्न मम" कहनेसे सारी भावना शुद्ध हो जाती है। पाँचबार पाँच वस्तुएं मांगोगे और पाँचबार "इदन्न मम" कहोगे।

कृष्ण--वह तो घी सामग्रीकी आहुति "स्वाहा" कहकर छोड़ दी और कह दिया कि अब यह मेरा नहीं रहा अग्निके लिये है।

महात्मा--यही रहस्यकी बात है। बाह्यक्रिया तो चिह्न मात्र है। बाह्यक्रिया करके दिखाया कि ऐसा मैं चाहता हूं या प्राप्त होने पर ऐसा करूंगा, जैसा अब सचमुच अग्निकी भेंट आहुति कर दी है। शुद्ध भावना यह है कि मैं यह प्रकाश पाकर प्रभुके अर्पण करूं। प्रजा, पशु, तेज, ज्ञान, अन्न पाकर भी मैं अपना न समझूंगा। अपितु वास्तवमें जो अग्नि स्वरूप प्रभु है उसके अर्पण करूंगा। उसकी सन्तानके लिए त्याग करना प्रभुके अर्पण करना है।

कृष्ण--महाराज ! साधारण मनुष्य तो ऐसी भावनायें नहीं कर सकता।

महात्मा--आर्य जीवन सांसारिक तथा पारलौकिक ऐश्वर्यकी कामना करता है। साधककी कक्षानुसार उसकी रुचि बदलती रहती है। पर साधारणतया प्रत्येक मनुष्य की यह कामना होनी चाहिये कि मेरा शरीर उन्नत हो, ज्ञान बढ़े, यशस्वी बनूं, और परोपकार करता रहूं। इन कामनाओंका संकेत आहुति देते हुए आत्म-समर्पणके भाव द्वारा कराया जाता है।

एक एक आहुतिको स्वर्ग प्राप्तिका साधन बनाना चाहिये। प्रभुकी रचनामें प्रत्येक छोटा और बड़ा देवता

यज्ञ कर रहा है, तो मैं क्यों छः छः माशेकी आहुति डाल कर 'मेरा मेरा' करके तुच्छ बनूं ? क्यों न देवताओंके मण्डलका सदस्य बनूं ? एक हाथसे दूं और दूसरे हाथको पता न लगे, यह भाव आहुतिके साथ साथ पैदा करो, तो बेड़ा पार है।

------o------

॥ ओ३म् ॥

अठारहवीं झांकी

इदन्न मम

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागेगा मोर ?

केवल कृष्ण जी प्रातःकाल का हवन करके घर चले गये और अपना काम काज करते रहे। पर इनको बार बार शंका होती रही कि महात्मा जी ने कहा है "मेरा मेरा" करनेसे मनुष्य तुच्छ बनता है। अब अगर किसी चीजमें मेरापन न आवे तो उसकी रक्षा नहीं होती। मां बच्चेको अपना पुत्र न समझे तो उससे प्यार न करे, उस का पालन-पोषण न कर सके। अनाथ, जिसके माता-पिता मर जाते हैं, उसको मेरा या अपना कोई नहीं जानता तभी

वह अनाथ और दुःखी रहता है। धनी आदमी मेरापन त्याग दे तो एक पैसा भी कोई न रहने दे, मुंह की आई रोटी भी उठा लेवें। संसार ऐसा बना हुआ है। सारा दिन काम करते हुए शंका बनी रही। सायंकाल अवकाश पाकर फिर महात्माजीके पास आया और नमस्ते कहकर बैठ गया।

महात्मा--क्यों फिर कोई और बात कहनी है? अकेले ही आते हो।

कृष्ण--हाँ महाराज! लोगोंमें प्रश्न तो करना चाहता हूं किन्तु मुझसे वर्णन नहीं किया जाता। लज्जा आ जाती है। इसलिये अकेला आता हूँ कि अगर बातको नहीं कह सकूंगा तो फीका तो न होऊंगा।

महात्मा–यही तो अंहकार है, श्रीमान्! प्रतिदिन "इदन्नमम" कहते हो परन्तु ममत्व नहीं गया। हाँ, आप भी सच्चे हो। आप तो घी सामग्री के लिये "इदन्न मम" कहते हो, न कि अपने ममत्व का।

कृष्ण–हां इसी शंका को लेकर आया हूँ। परन्तु महाराज मैं तो लज्जावश नहीं कह सकता। अहंकार तो नहीं करता।

महात्मा–समझने में भेद है। कहते जैसे भी रहो लज्जा इस लिये आती है कि अगर अशुद्ध वर्णन कर दिया या वर्णन ही न कर सका तो लोग हंसेंगे या तुम स्व

अपमान अनुभव करोगे, लज्जा अनुभव नहीं होती। कहो अपमान अनुभव होगा ? अपमानका समझना बिना अहंकार के नहीं। छोटे बच्चे को गाली दो तो वह अपमान नहीं समझता। किन्तु जब वह बड़ा हो जावे उसे गाली दो तो तेज हो जाता है। तब वह उस चीज को जिसकी गाली दी उससे ममता रखता है। खैर, इसे जाने दो। अब ममता को तनिक ध्यान से सुनो।

एक मकान है। मैं कहता हूँ मेरा है। पिता कहता है मेरा है। भाई कहता है मेरा है। पुत्र कहता है मेरा है। पर है वह ईंटों का, और अगर चार भाई हों और पृथक् पृथक् होने लगें तो वही मकान जिसे सब मेरा मेरा कहते हैं, अब उसकी चौथाई चौथाई उनको मिलेगी। किसीके पास एक लाख रुपया धन है और बाँट लिया गया तो कम हो जायगा। मेरा घोड़ा है। अगर मैंने बेच दिया, अब मेरापन इससे हट गया। एक शरीर ही है जिसके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं। माँ ने अपने पेट से उत्पन्न किया परन्तु वह नहीं कह सकती कि 'यह शरीर मेरा है'। भाई नहीं कह सकता कि 'यह शरीर मेरा है। सारांश यह कि पिता मित्रादि किसी का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। केवल मैं ही अपने शरीर के विषय में कह सकता हूं कि यह शरीर मेरा है या मेरा शरीर है। चाहे मैं इस शरीर से किसी की नौकरी करूं तो भी यह शरीर मेरा है, मेरे

स्वामी का नहीं। अब इस शरीर को देखो, जिस पर कोई अपना अधिकार नहीं जमा सकता और मैं, चाहे अमीरी हो या गरीबी, सुख हो या दुःख, रात्रि हो या दिन, वन हो या नगर, सबमें कह सकता हूँ यह शरीर मेरा है और संसार के सब सम्बन्धी या वस्तुएँ किसी न किसी समय मुझ से पृथक् भी होती हैं परन्तु यह शरीर किसी क्षण भी मुझ से दूर पृथक नहीं। किन्तु सोचो तो जरा, इस शरीर के मुख को तो देखो, आंख तो मेरी है, यह कह सकता हूँ पर रूप मेरा नहीं और रूपके बिना आंख निरर्थक है अर्थात् मेरी जो वस्तु है वह तो अपने आप निष्प्रयोजन है और रूप के बिना आंख को आंख तो कहता ही कोई नहीं और रूप है मेरे प्रभु का, जिसके कारण से मेरी आँख आँख कहलाती है। उसकी समझें या न ? कान तो मेरा है पर शब्द मेरा नहीं। जिह्वा तो मेरी है पर रस मेरा नहीं। अहा ! नासिका तो मेरी है पर प्राण मेरे नहीं। जब प्राण, श्वास मेरा नहीं तो शरीर मेरा कैसे है? निरर्थक है। प्राण तो मेरें प्रभुका है। बस जिसका प्राण है उसीका यह शरीर है और जिसका यह शरीर है, सब कार्य जो शरीरसे किये जाते हैं, वे उसी मेरे प्रभुके हैं, बस अब बतलाओ, ममता कहाँ रही। अग्निहोत्री यज्ञ करने वाला तो इसी सिद्धान्तको समझकर कहता है "ओ३म् अग्नये इदन्न मम"।

दूसरा पहलू भी समझो जिस भूमि पर हवनकुण्ड बनाया गया, उस भूमिको भी तो प्रभुने पैदा किया, मैंने नहीं किया। जिस यन्त्रसे खोदा वह लोहेका है, लोहा भी तो प्रभुने पैदा किया। क्या कोई वैज्ञानिक लोहेकी खान पैदा कर सकता है ? और जिस घीसे आहुति दी वह गाय आदि पशुओंने केवल घास चरकर पैदा किया। क्या मैं या आप सामर्थ्य रखते हैं कि इस घाससे घी या दुग्ध बना लेवें ? प्रभुकी कला है जो किस प्रकार एक चीजका परिवर्तन अनेक रूपोंमें करके संसारके प्राणियोंकी भलाई कर रहा है। जिस हाथसे स्रुवा पकड़ कर आहुति दी है, ये हाथ भी मेरे प्रभुने घड़े हैं, मेरी माताने तो नहीं बनाये। यदि वह इनको लूला ही बना देता तो मैं स्रुवा कैसे पकड़ता। यह हाथ और हाथों में सामर्थ्य भी मेरे प्रभुकी ही है। सबसे श्रेष्ठ बात यह है कि जिस मनसे मैं यज्ञ कर रहा हूं, उस मनका बनाने वाला और उस मनमें श्रद्धा उत्पन्न करने वाला भी मेरा भगवान् ही है। यदि श्रद्धा भगवान् की देन न होती तो सब कोई हवन न करने लग जाता। इसलिए मैं तो समझता हूं कि यह सब प्रभुका था जो प्रभु की भेंट हुआ। न पहले मेरा था, न अब मेरा है। ऐसा ऊंचा भाव होना चाहिये, तब कोई क्लेश और चिन्ता उत्पन्न नहीं होते। संयोग और वियोग सब उसीके आधार पर है।

तात्पर्य यह है कि जब तू अग्निहोत्र करने लगे फिर यह न समझ कि मैं अपने घरसे यज्ञ कर रहा हूं यदि तू ऐसा विचार करेगा तो अवश्य संकोच आता रहेगा मनुष्यका हृदय बड़ा संकुचित है। उदार कोई कोई होता है। वह भी सब कामोंमें और सब दानोंमें उदार नहीं हुआ करता। यज्ञके समय तो यही समझना चाहिये कि यह लूट का माल है। इसे ऐसे लुटाना चाहिए जैसे लूटने वाले बिना किसी भयके लूटते हैं। प्रभुके खजानेसे आई हुई दे लूटके समान ही होती है। वह जिसे अपने अन्दर दाखिल होने देता है, उसे कहता है लूट ले जितना चाहे लूट। जो दिनोंमें राजा बन जाते हैं, वे कैसे बन जाते हैं? इसलिये यज्ञ करने वाले को अपनी देने वाली आहुति अपनी समझ कर नहीं देनी चाहिये।

—: ० :—

ओ३म्

उन्नीसवीं झांकी

आत्मिक विकास के चार क्रम

आघारावाज्याहुति

कृष्ण—अब मेरी समझ में आ गया कि "इदन्नमम" का वास्तविक प्रयोजन क्या है। आघारावाज्याहुति चार

जो दी जाती हैं, उत्तर, दक्षिण और मध्य में, उनका भी कोई विशेष अभिप्राय होगा ?

महात्मा--पहली दो आहुति उत्तर, दक्षिण वाली का नाम तो आघार है, और दो मध्य वाली का नाम आज्या-हुति है।

'आज्या' तो घीको कहते हैं और 'आघार' पिघलने को कहते हैं। अर्थात् पिघले हुए घीसे आहुति देनी।

अग्नि, सोम, प्रजापति और इन्द्र ये आत्म विकासके चार क्रमोंके संकेत जानने चाहियें। ये सब नाम ईश्वरके हैं और उसीके अर्पण आहुति होती है। कई विद्वान् ऐसा अर्थ भी लगाते हैं कि उत्तर दिशामें जो आहुति दी जाती है वह अग्नि अर्थात् विद्वान् ब्रह्मविद्के निमित्त है। इस आहुतिसे हमारा उनसे सम्बन्ध हो और हमको प्रकाश मिले। दूसरी दक्षिणमें सोमके लिए है। सोम अर्थात् शान्ति का विस्तार करने वाले, रोगोंको दूर करने वाले वैद्यराजों से हमारा सम्बन्ध हो ताकि उनसे हमें शान्ति मिले।

मध्य की दो आहुतियां प्रजापति अर्थात् गृहस्थी, और इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् ही से संबन्ध जोड़ने के लिये दी जाती है। क्योंकि सद्गृहस्थी और ऐश्वर्यवान् ही सब ब्रह्म-चारियों, वानप्रस्थियों और संन्यासियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, और गृहस्थी को भी गृहस्थियों और ऐश्-

श्वर्यवानों की वृद्धि के लिये शुद्ध भावना हो ताकि परम
संसार के मनुष्यमात्र का एक दूसरे से सम्बन्ध शुद्ध
से बना रहे। जैसे अग्नि पर घी पड़ने से वह बढ़ती
चमकती है, ऐसी ही ये सब विद्वान् वैद्यराज् गृहस्थ
ऐश्वर्यवान बढ़ें।

दूसरे, आत्म विकास के लिये अग्नि अर्थात् ज्ञान सो
अर्थात् शान्ति, प्रजापति अर्थात् इन्द्रियों का पति मन और
इन्द्रजीवात्मा अर्थात् ज्ञान और शान्ति बढ़कर वे मन और
आत्मा की रक्षा के लिये हों।

भक्त–अग्नि के लिये उत्तर दिशा में और सोम के लिये
दक्षिण दिशा में आहुति क्यों दी जाती है ? प्रजापति
और इन्द्र के लिये मध्य में आहुति क्यों दी जाती है ?

महात्मा–(१) (अग्नि) प्रकाश तो होगा ज्ञान से
इसका स्थान शरीर में मस्तिष्क में है। यह उत्तर स्थान
है। इसलिये तो नाम-करण संस्कार में भी माता ग्यारह
दिन के बच्चे का सिर उत्तर की तरफ करके आती है।

(२) (सोम) शान्ति मिलेगी त्याग से। इसका स्थान
है हृदय। यह मस्तिष्क से दक्षिण में है। शान्ति भी हृदय
में होती है और त्याग भी हृदय से हो सकता है, इसके
बिना नहीं।

(३) प्रजापति तो तब बन सकता है जब प्रजा

पालक, पोषक और रक्षक बने। पालन, पोषण और रक्षण सब रसके द्वारा होता है। प्रत्येक वस्तु में रस मध्य में होता है जो सब जगत के पालने–पोसने और रक्षाका लीला है, वह पसारा भी मध्य में है। इसलिये वह आहुति मध्य में दी जाती है। पालन, पोषण और रक्षण का कार्य भी बिना त्याग के नहीं होता। इसलिये त्यागी ही प्रजापति है।

(४) इन्द्र तो तब बने जब इसमें चमक [तेज] हो। इस चमक (तेज) के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये ज्ञानी ही इन्द्र होता है। चमक और तेज अग्नि ज्ञानी के अंदर होता है। अतएव मध्य में ही यह आहुति दी जाती है।

मनुष्य शरीर में भी कण्ठ और नाभि दो स्थान मध्य के हैं। कण्ठ इन्द्र का स्थान है और नाभि प्रजापति का।

'स्वः' पुनात कण्ठे' जनः पुनातु नाभ्याम्' इस सचाई की तरफ संकेत करते हैं। नाभि इस सारे शरीर की, प्रजा की पालक पोषक है। 'संसार की नाभि यज्ञ' भी सारी प्रजा का पालक पोषक है। नाभि से, यज्ञसे ही जनन शक्ति कायम रहती है और प्रजा उत्पन्न होती है।

स्वप्न के समय कण्ठ में जीवात्मा रहता है। मृत्यु के समय भी जीवात्मा कण्ठ में आ जाता है। जीवात्मा

इन्द्र है और स्वप्न में इसे स्वयं प्रकाश होता है और मृ
के समय भी बाहर की सब ज्योतियाँ इससे दूर होती हैं
यह भी ध्यान में रहे कि यज्ञ का आदेश है ज्ञान, शान्ति
अपने लिये, और संसार के लिये कर्म पुरुषार्थ, दान, त्याग,
प्रजा का बढ़ाना। बस, हम देखते हैं कि (१) आत्मा की
शान्ति का साधन ही ज्ञान है। कर्म के लिये भी आत्मा
के अन्दर पूर्ण व वास्तविक, ज्ञान की आवश्यकता है
ज्ञान का स्थान मस्तिष्क--उत्तर--में है। मस्तिष्क में ही
ध्यान लगाने से "देवमुत्तरावन्तं सनातनम्" के दर्शन
होते हैं। जो उसके समीप हो गया, जिसने उसकी उपा-
सना की, वह विचार-शील, तथा उपकारी कर्मशील हो
जाता है और उसके पास भोग्य पदार्थ अन्न, धन, प्रजा
बहुत हो जाती है। सो पहला क्रम, यथार्थ ज्ञान का है।
यह तो हुआ आत्मा का कल्याण।

(२) अब दूसरे क्रम पर शरीर है। यह भोग का
साधन है। शरीर के स्वास्थ्य का रक्षक वैद्य डाक्टर है।
सोम स्वयं वैद्य है। यह संजीवनी बूटी है। कायाकल्प
करने वाली औषधि है, इससे बूढा जवान रहता है। यह
रस दक्षिण दिशा में मिलता है। दक्षिण दिशा जल की है।
यह नीचे की दिशा है, निचला भाग त्याग का है। सो
शान्ति त्याग से मिलती है। उत्तर दिशा ग्रहण की है।
ज्ञान से ग्रहण करो। त्याग से शान्ति प्राप्त करो। ऊपर

भाग में ज्ञानेन्द्रिय हैं। ग्रहण किये हुवे ज्ञान का भी अपने से छोटों के लिये त्याग होना चाहिये, उनके उपकार और भलाई के लिये।

आत्मा और शरीर के कल्याण को प्राप्त करके ज्ञान और शान्ति को प्राप्त करके हमने प्रजापति के ऋण से उऋण होना है। प्रजापति अन्नदाता है जो शरीर का पालन--पोषण करता है, यह गृहस्थी है, ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थियों, त्यागियों और अभ्यागतों के लिये। और गृहस्थी के लिये प्रजापति वह है जो प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ बनाता है, उदाहरणार्थ--सास, ससुर। इनका भी ऋण होता है फिर राजा का भी ऋण होता है, उससे भी उऋण होना है। ये सब प्रजापति त्याग से ही बनते हैं। परन्तु त्याग वह हो जो शान्ति पैदा करे, यदि शान्ति पैदा नहीं करता तो वह त्याग नहीं है। "ओं इन्द्राय स्वाहा" यह आहुति इन्द्र के लिये है। यदि हम इन्द्रियों के स्वामी हैं तब तो इन्द्र हैं, स्वर्ग के राजा हैं। शरीर सचमुच अयोध्या नगरी बन जावे। उसमें युद्ध न हो रहा हो, कोई इन्द्रिय विद्रोही न हो। अतः हमें इन्द्र बनने के लिये यज्ञ करना चाहिये। इसके लिये तीन शर्तें हैं।

१. अग्नि, ब्राह्मण और विद्वान् की सेवा करो, ज्ञानोपार्जन से और ज्ञानदान से। २. शरीर हृष्ट पुष्ट करो,

शान्ति की प्राप्ति और सोम रस के पान से। ३. अन्न, धन, प्रजा आदि भोग को बढ़ाओ लोक कल्याण के लिये, भग-वान् प्राप्ति के लिये।

--००--

ओ३म्

बीसवी झांकी

हवि--(एक अंक (ओंकार) की प्राप्ति)--स्वाहा

भक्त—आपने एक बार कहा था कि उपस्थित सज्जन जो मन्त्र नहीं भी जानते उनको भी शब्द 'स्वाहा' गुंजा-कर बोलना चाहिये, ऐसा करने का क्या लाभ है ?

महात्मा—स्वाहा का वर्णन करने से प्रथम जरा "इद-न्नमम" शब्द जिसका पीछे कुछ वर्णन किया है, इस समय उसके सम्बन्ध में कुछ और याद आ गया है, पहले उसे सुन लीजिये:—

यज्ञ (अग्नि) में पड़ी आहुति विभक्त हो जाती है। विभाग में जब सारे का सारा बाँट दिया जावे तो भाग फल एक होता है, शेष शून्य रहता है, जैसे ३।३।३ और घटाने में, सारे में से सारा ऋण करने से केवल शून्य रहता है।

भाग में यज्ञ के अन्त में जब स्वाहा कहकर "स्व" अपना "आहा" त्याग दिया जाता है और "इदन्नमम" अपना ममत्व भी शेष नहीं रहता, "इदमग्नये" अर्थात् वह प्रभु का हो जाता है तो प्राप्त भी वही एक अग्नि स्वरूप प्रभु होता है। शेष शून्य के समान प्रकृति दिखाई देती है। यदि वह शून्य (प्रकृति माया) भी उठाकर एक-के संग लगा दिया जाय अर्थात् उसे दक्षिणा में दे दिया जाय, तो वह शून्य भी (प्रकृति माया) दस गुना सामर्थ्यवान हो जाती है, जैसे दस (१०)। अर्थात् वह यज्ञ करने वाला अपना आत्मसमर्पण (स्वाहा) करता हुआ सब संसारी माया को शून्य समझे और उसे भी प्रभु दक्षिणा में लगा दे तो उसकी शक्ति दस गुना हो जायेगी। लोग कहते हैं एक के साथ शून्य लग जाय तो एककी शक्ति दस गुना हो जाती है। किन्तु नही, एक तो एक है ही। शून्य की कोई शक्ति अकेली नहीं। अब यदि १० से १ को हटा लें तो शून्य की कोई कीमत नहीं रहती। हां ! शून्य दक्षिण में आ जाने से, एक की शरण से दस गुना बन जाती है।

शब्द स्वाहा का महत्व—(१) यज्ञ में स्वाहा का शब्द जोर से मिलकर उच्चारण करने और आकाश गुंजाने का फल एक यह भी है कि मनुष्य के हृदय व मस्तिष्क में प्रत्येक समय कुसंस्कारों की तरंगें उठती हैं, परन्तु जब

मंत्रों की आहुति पर स्वाहा जोर से गुँजाया जाता है तो वह आवाज मस्तिष्क के अंदर एक लहर पैदा कर देती है। ऐसे ही वह शब्द आकाश में लहरें उत्पन्न करते हैं।

उस आवाज का काम यह है कि उठने वाले कुसंस्कारों की लहरों को वह आवाज काट डालती है और बहार आकाश में अशुद्ध परमाणु जो मनुष्य कुसंस्कारों का स्वागत करने के लिये दौड़ते हैं वे शब्द उसे दूर दूर भगा देते हैं।

संसार की हर एक वस्तु में उसकी सत्ताको प्रकट करने के लिये उसकी अपनी आत्मा होती है, जैसे सूर्य की आत्मा प्रकाश है। बिना प्रकाश के सूर्य नाम-रहित है और बिना प्रकाश दान करने से सूर्य निष्फल है, अतः प्रभुके सब देवता इसलिये देवता हैं कि वे अपनी अपनी आत्मा को प्रभुकी प्रजा के लिये त्याग कर रहे हैं। इस त्याग का नाम यज्ञ परिभाषा में "स्वाहा" कहलाता है, इसलिये प्रत्येक मन्त्र के अन्त में स्वाहा कहा जाता है। जब तक मंत्रके शब्द पढ़े जाते हैं तब तक तो चरू आदि हाथ में बंद होता है परन्तु जब स्वाहा का शब्द मुख से निकलता है वह वस्तु अग्नि की भेंट हो जाती है और उसी क्षण वह फैलकर लघु से महान् बन जाती है।

जब मनुष्य किसी दुःख में होता है तो उसका स्वरूप के शब्द से प्रकट करता है और जब वह खुशी की

अवस्था में होता है तो "अहा" कहता है, किन्तु यह "स्वाहा" शब्द निराला है। यह ऐसा अमोघ शस्त्र है कि इसको समझने से दुःख सुख की सीमा से मनुष्य ऊपर हो जाता है। मिलकर जोर से उच्चारण करने से जब आवाज आकाश में जाती है तो इसके पश्चात् आकाश में "आ" ही सुनाई देता है जो प्रभु का नाम है।

प्राण जब अंदर लिया जाता है तो "स स" की आवाज निकलती है और जब बाहर निकलता है तब "हा हा" की आवाज निकलती है यह स्वाहा यज्ञ का प्राण है।

स्वा+हा=अपना त्याग अर्थात् मेरा-पन, किसी वस्तु और मेरे मध्य अहंकार ही स्वत्व को प्रकट करता है। जब मैं कहता हूँ कि यह मेरा मकान है तो यद्यपि मकान ईंटों का बना है, वे ईंटें पृथ्वी से बनी हैं, वह मेरी नहीं, इसमें मेरा-पन अहंकार का कारण है। जब अहंकार का नाश हो गया या इसको त्याग दिया या समर्पण कर दिया तो यही आत्मसमर्पण है जो अहंकार का नाश करता है। उसके निकट कोई पाप नहीं आ सकता, वह प्रभु का यंत्र बन जाता है।

भक्त—कई दिनसे एक शंका उठी है, उसकी निवृत्ति कीजिये। यदि स्त्रीको मासिक धर्म आ जावे तो उसे हवन करना चाहिये या न ?

महात्मा—नहीं, प्रसूता स्त्री चालीस दिन तक और

साधारण स्त्री रजोदर्शनमें हवन न करे, उसके स्थान पर उसका पति एक मंत्र दो दो बार पढ़कर आहुति देवे। हवन करनेसे पहले उसे सन्देह हो तो पहले ही से सम्मिलित न हो। यदि हवन करते समय रजोदर्शन हो जावे तो उसी क्षण कुण्ड या यज्ञशालासे बाहर चली जावे।

भक्त--तो क्या पुरुषके लिये भी कोई ऐसा अवसर है जबकि वह हवन न करे ?

महात्मा--स्पष्टतया तो कोई ऐसा बन्धन नहीं मालूम होता। हां, बिस्तर पर बीमार पड़ा है, उठ नहीं सकता, या डाक्टरने मना किया है, सख्त जुकाम व खाँसी की हालत है, रोगकी अवस्था या कोई आपत्काल हो या कोई कर्त्तव्य (ड्यूटी) जैसे रणभूमिमें या रेलवे में ट्रेन क्लर्कों (Train Clerks) गार्डों (Guards) आदि की जरूरी हो जो ठीक उस समय उसे रोकती हो, तब उसके स्थान पर उसकी स्त्री वैसा करे जैसा कि पुरुषने उसकी लाचारीमें किया।

ऐसे सब बन्धनोंमें गुरु शिष्यके लिये, शिष्य गुरुके लिये कर सकता है। मनुष्यकी भावना शुद्ध हो, यज्ञके स्वरूपको जानता हो तो वह बैठे हुए जहाँ भी हो, मानसिक संकल्पसे मनमें आहुति दे सकता है। बाह्यदर्शी लोग तो केवल वायुकी शुद्धिके लिये हवन करते हैं और अन्तर्दर्शी लोग अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये हवन करते हैं।

अपने हाथसे आहुति दो—

भक्त--क्या यह आवश्यक है कि अपने ही हाथसे हवन किया जाय ? जब बहुतसे लोग एकत्रित होते हैं और दो चार आदमी हवन करते हैं और शेष केवल मंत्र बोलते हैं, क्या वह हवन नहीं हो जाता, या मनुष्य चन्दा दे देता है, हवन पर नहीं पहुंच सकता ?

महात्मा--अपने मनकी सन्तुष्टिके लिये तो जैसा मनुष्य समझ ले। जैसे खाना और पाखाना मनुष्य स्वयं करता है तो उसे बल और लाभ हो सकता है। दूसरेके खानेसे उसे शक्ति नहीं मिलेगी और न दूसरेके शौच जानेसे ही उसे लाभ है। ग्रहण और त्याग प्रत्येक मनुष्यके लिये जरूरी है। जो इन्द्रियां परमात्माने एक एक बनाई हैं उनका ग्रहण और त्याग स्वयं ही करनेसे संतोष होता है। हां, आँखोंसे आपने न देखा, कह दिया किसीको, जा भाई देख आ। सन्तोष हो गया। कानोंसे स्वयं न सुना। पुत्रको कह दिया तू ही सुन ले, मुझे बता देना। यह भी हो सकता है। हाथोंसे आपने न लिखा, दूसरेसे लिखवा दिया। दूसरेसे रोटी बनवा ली। कहीं जाना हुआ तो दूसरेको भेजकर काम करा लिया। परन्तु यह यज्ञका काम तो ज्ञान और त्यागका है। स्वयं करना चाहिये।

यजुर्वेदके अध्याय २३, मन्त्र १५ में आता है—

ओं स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व यजस्व जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।

अर्थात् हे ज्ञान चाहने वाले जन! तू स्वयं अपने शरीरको समर्थ कर (मनुष्य स्वयं व्यायाम करेगा तब ही शरीरसे बलवान् होगा। अगर दूसरेसे व्यायाम करावे, अखाड़े बनवा देवे, उन्हें पौष्टिक आहार खिला देवे तो इससे तो बल उसे नहीं मिलेगा, जब तक स्वयं व्यायाम न करे।) स्वयं अच्छे विद्वानोंसे मिल सत्संगति कर, यज्ञ कर, दान कर, उनकी स्वयं सेवा कर जिससे तेरी बुजुर्गी, बड़ाई, महिमा या बड़प्पन, और तेरा प्रताप किसी कीमत पर नष्ट न हो।

यज्ञसे वाणी, चित्त और मनकी शुद्धिः

देखो भक्तजी! यज्ञमें तीन वस्तुएं काष्ठ, घी और सामग्री जलाई जाती हैं। जहाँ बाहरकी जलवायु और पृथ्वोकी शुद्धि होती है वहां वाणी, चित्त और मनकी भी शुद्धिका उद्देश्य है। जो केवल वाणी मात्रसे यज्ञ करते हैं उन्हें काष्ठके समान समझो। जैसे काष्ठ अग्निका संग करती है, उससे प्रकाश होता है परन्तु सुगन्धि नहीं होती बल्कि धुंआ ही होता है। ऐसे जो लोग केवल वैखरी वाणीसे यज्ञ करते हैं उनकी वाणी तो पवित्र हो जाती होगी पर जीवन सुगन्धित नहीं होता। वाणीमें अहंकारका दोष

(धुआँ) रहता है और जो चित्त शुद्धिकी भावनासे यज्ञ करते हैं मानो उसका घी जलता है। घी विषका नाश करता है और स्निग्धता लाता है। अमृत वर्षाका हेतु है।

और जो मनके ईश बननेके लिये यज्ञ करते हैं उनकी मानो सामग्रीभी साथ जलती है। पूरी भावनासे यज्ञ करने वाला मनुष्य मनका स्वामी, शुद्ध चित्त और वाणी के प्रकाश वाला होता है।

नित्य कर्मतो अवश्य अपने हाथसे करने चाहियें। हां, बड़े-बड़े यज्ञ जो ऋत्विजोंकी सहायताके बिना नहीं हो सकते, वहां निस्संन्देह उनके द्वारा आहुति दिलाई जा सकती है, परन्तु प्रधान अंग तो यजमानको अपने हाथसे करना चाहिये, यदि शेष न कर सके।

यज्ञकी जो आत्मा है वह "स्वाहा" शब्द है और इस यज्ञका जो शरीर है वह 'उद्' शब्द है जो उद्बुध्यस्वाग्ने ·····मन्त्रमें आया है। इनदो वस्तुओं को दिमागमें बिठाने की जरूरत है। "उद्" श्रद्धा और पुरुषार्थको कहते है। "श्रद्धया अग्निः समिध्यते, श्रद्धया हूयते हविः" (ऋ०१०, १५१,१) वेद कहता है श्रद्धासे अग्नि प्रकाशित करो, श्रद्धासे हविकी आहुति दो। तात्पर्य यह है कि श्रद्धाही सामग्री है, श्रद्धाही तन है, श्रद्धाही मन है, श्रद्धाही धन है।

उद्के अर्थ बड़े व्यापक हैं । जब मनुष्व प्रकाश माँगता है तो उद्का अर्थ यह समझना चाहिये कि वह अपनी श्रद्धासे आत्माग्निको जगाए । प्रकाशका सम्बन्ध आत्मासे है । जैसे सूर्यका प्रकाश बाहर विद्यमान है । मैंने आंख बन्द करली । अब प्रकाश मुझे वहीं मिलता, किन्तु एक मनुष्य मरा पड़ा है, आंख उसकी खुली हैं । सूर्यभी निकला हुआ है, वह नहीं देख सकता । तो मालूम होता है कि प्रकाशको देखने वाली आँख नहीं, बल्कि आत्मा है। इसलिये प्रकाशकी पहली आहुतिका सम्बन्ध आत्माग्नि से है ।

शवकी खुली आँख बड़ी भयानक और डरावनी मालूम होती है, स्वयं अपने प्रिय पुत्र, कलत्र भी डर जाते हैं, इसलिये कि उसमें आत्मा नहीं रही । इसलिये जिस मनुष्यमें आत्माग्नि नहीं जगी वह संसारमें भयानक ही है।

सामग्री घृत और काष्ठके अतिरिक्त आहुति

भक्त--यज्ञमें सामग्रीके अतिरिक्त फल आदि की आहुति भी देनी चाहिये या नहीं ?

महात्मा--नित्य कर्ममें तो नहीं देनी चाहिये किन्तु बड़े-बड़े यज्ञोंमें ऋतुका ध्यान रखकर देते हैं । उदाहरणार्थ---चावलोंकी खीर ३२ माशा, खीब मुट्ठी भर, अन्न एक ग्रासके बराबर, शाक आधे ग्रासके बराबर, मूलका तीसरा और कंदका आठवाँ भाग, ईख एक पोरी,

लता दो उंगल, चावलोंकी अंजलि, तिल और शत्तू मृगी मुद्राके बराबर (मध्यमा, तर्जनी और अंगुष्ठको मिलाकर किसी वस्तुको उठानेका नाम मृगी-मुद्रा है)। पुष्प और फलकी जहाँ जैसी आहुति लिखी हो वैसा करना चाहिये। चन्द्र, श्रीखण्ड, कस्तूरी, कुंकुम, अगरु, क्रोम चनेके बराबर गुगुल बेरके बराबर दही ३२ माशा, गुड़ और शक्कर ३२ माशा, पत्ता फूल एक-एक, बिजूरेके चार टुकड़े, कटहरके दस टुकड़े, नारियलके आठ टुकड़े, केलेकी गांठ के चार, बेलके तीन और किस्थके दो टुकड़े करने चाहियें।

धान्य, मूँग, उड़द, जौ मुट्ठी भर, चावल टूटे हुवे न हों, हव्य-द्रव्यका हाथसे हवन करना चाहिये और कठिन द्रव्य ग्रास बराबर। ऐसा "सिद्धान्त शेखर" में लिखा है, मैंने ऋषि कुलमें देखा था, अधिक ज्ञान नहीं है।

भक्त—लिखा हुआ तो ऐसा है कि चार प्रकारके पदार्थ सामग्री (हवि) में डाले जायें। अन्न, मिष्टान्न, पुष्टि कारक, रोग नाशक। किन्तु कैसे पता लगे? जितनी दवाईयाँ पंसारियोंके पास हैं वे सब रोग नाशक हैं। क्या सब डाल दी जावें?

महात्मा—ऋतुके विचारसे या रोगकी दृष्टिसे जो सूचित हों, डालनी चाहियें। "हविष्" शब्द बड़ा पूर्ण है,

"ह" अर्थात् दूर करने वाला "विष" जहर, जो जहरको दूर करने वाला पदार्थ है वह "हविष्" है। भौतिक अग्नि में रोग-विनाशक औषधियाँ हवि हैं। आध्यात्मिक अग्नि में क्रमशः इन्द्रियां, मन, आत्मा हवि हैं। जो मल, विक्षेप, आवरण आदि विषोंको दूर करते हैं।

इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि जो वस्तु एक व्यक्तिको खानेमें देनेसे उसका रोग दूर हो जाता है और उसके जलानेमें उसको तथा दूसरोंकी हानि होती है उसको नहीं डालना चाहिये, उदाहरणार्थ-काली और लाल मिर्च, नमक, सोंठ जिन्हें मसालेके तौर पर प्रयोग करनेसे पेटके रोग दूर किये जाते हैं, ऐसे पदार्थ सामग्री या हवि नहीं कहलाते।

यज्ञ रक्षाके लिये होता है और रक्षा वह होती है। जिससे अन्दर और बाहरकी रक्षा हो। (व्यष्टि) अन्दर और समष्टि बाहरको समझो। 'र' आन्तरिक बल देना, पुष्टि करना, प्रकाश, दान। 'क्ष' बाहरकी आपत्तियोंको रोकना, क्षय करना।

यज्ञ करने वाले मनुष्यको सब देवता अपने आशीर्वादमें अपनी-अपनी भेंट देते हैं। यजुर्वेद अ० २ मं० ६ में लिखा है----

ओ३म् घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रिय

ँसदऽग्रासीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँ सदऽग्रासीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँसद ग्रासीद । प्रियेण धाम्ना प्रियँसद-ग्रासीद । ध्रुवाऽग्रसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञं पज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

यज्ञ करने वालेकी दो बाहुसे (श्रद्धा त्यागसे) दी हुई ग्राहुति जब वसु, रुद्र, ग्रादित्यमें फैल जाती है तो उसे इस यज्ञसे क्या-क्या प्रिय सुख मिलता है–

ग्राठ वसुः—

ग्रग्नि–उसे उसके नामकी प्रसिद्धि देती है ।

पृथ्वी--उसे सुखसे तृप्त करने वाला शोभायमान स्थान देती है ।

वायु--उसे उत्तम सुखकी सिद्धि देता है ।

ग्रन्तरिक्ष--उसे सबके समीप प्रीति देता है ।

सूर्य--उसे हित क्रिया, पुरुषार्थका जीवन, उत्साह, दुःखोंका नाश करने वाला ग्रारोग्यपूर्वक सुखदायक ग्रौषधि देता है ।

प्रकाश--उसे स्थिर सुख, ग्रायुके निमित्तकी देने वाली विद्या देता है ।

चन्द्रमा--उसे आनन्द कराने वाला जीवन देता है।

तारागण--उसे ज्ञान-विज्ञान रीति देता है।

इसी अध्यायके आठवें मन्त्रमें आता है।

ओ३म् अस्कन्नमद्यदेवेभ्यऽआज्य ँ संभ्रिया समंघ्रा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीग्ने ते च्छायामुपस्थे विष्णो स्थानमसीत इन्द्रोऽवीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ॥२।८॥

यज्ञसे धारणा बुद्धि बनती है। जैसे यज्ञसे कार्बन डाइआक् साइड (कार्बन दूयम्लजिद) उत्पन्न होती है जो पृथ्वीमें समाविष्ट हो जाती है और सूर्यकी किरण पड़नेसे फिर वह गैस बाहर नहीं निकलती है और वनस्पतियोंको खूब पैदा करती है। ऐसे ही यज्ञसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है और जो यज्ञका गुण अग्निहोत्रीको मिलता है वह फिर नष्ट नहीं होता, निश्चल सुख देने वाला गुण हो जाता है, अस्थिर नहीं।

सेठ—महात्मन्! मेरा विचार है कि मुझे सौभाग्य प्राप्त हो तो अच्छा है कि मैं अपने गृह पर ब्रह्म पारायण महायज्ञ वेदों द्वारा करवाऊँ। आप कोई समय इसके सम्बन्धमें निश्चित्त बतलाइये और उसके लिये प्रारम्भिक निर्देशोंसे मुझे कृतार्थ कीजिये, यज्ञ प्रारम्भ होने से पहले जिनको मैं आचरण में ला सकूँ या जो प्रबन्ध पहले इस

विषयमें करना आवश्यक हो, वह बतलाइये ताकि मैं वैसा कर सकूँ।

महात्मा--बड़ी खुशीकी बात है किन्तु इसके लिये पर्याप्त समय लगेगा और नियमभी कुछ और कड़े रूपमें पालन करने होंगे। कभी अवकाशके समय ब्यौरे वार (विस्तृत क्रम पूर्वक) नियम और निर्देश आपको बताऊँगा।

पहला भाग समाप्त हुआ

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

॥ ओ३म् ॥

दो शब्द

वेद का वचन है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा ॥

यजु० ३१-१६

प्रिय पाठक ! विद्वानों ने सर्वप्रथम परमेश्वर की पूजा यज्ञ द्वारा की और उससे ही मोक्ष रूपी सुखको उन्होंने प्राप्त किया। आर्य समाज में तो पञ्च महायज्ञकी बड़ी चर्चा है और भाग्यवान् जीव करते भी हैं परन्तु ऐसे विरले सज्जन देखे जाते हैं जिनका जीवन यज्ञमय बन गया हो और वह सब प्रकार से स्वस्थ, शान्त और शुद्ध अन्तःकरण वाले होकर अपने जीवनको गर्वसे सफल जीवन कह सकें। उसका एकमात्र कारण यह है कि हम यज्ञको यज्ञकी भावना से नहीं करते हम तो परमेश्वरके भक्तों और ऋषिके अनुयाइयोंकी सूची में अपना नाम लिखाना चाहते और लिखा देखना चाहते हैं। परन्तु, माननीय भाइयो ! इस बातको याद रखो कि जब तक यज्ञके वास्तविक मर्मको न जानेंगे तब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

दुर्भाग्यवश इस विषय पर आधुनिक विद्वानों और अनुभवियोंके लेख बहुत कम देखनेमें आते हैं। समाचार पत्रों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त

करना कोई दुष्कर कार्य नहीं, यह वे लोग तो भली प्रकार कर सकते हैं जिनकी इधर रुचि हो परन्तु सरल सादा वेष-भूषा से सुसज्जितको कौन महात्मा जाने, उसके लिए तो बाह्य कोई छाप होनी चाहिए, परन्तु फारसीके प्रसिद्ध कवि शेखसादी ने कहा है:—

हरवेशा गुमांमवर कि खालीस्त। शायद कि पलंग खुफ़ता बाशद।

अर्थात् हर झाड़ीको ख्याल मतकर कि खाली है, हो सकता है कि कोई चीता उसमें सो रहा हो।

इन्हीं गोदड़ियोंमें लाल होते हैं। लालकी परख तो जौहरी को होती है। जिन लोगोंने श्री महात्मा जीकी पुस्तक "यज्ञ रहस्य प्रथम भाग" को पढ़ा है वह तो दूसरे भागको देखनेके लिए तड़प रहे होंगे। श्री महात्मा जी केवल प्रचारक ही नहीं, सुधारक भी हैं। हजारों घरोंको सुधारा, नास्तिकसे सच्चे आस्तिक बना दिए। यह गौरवकी बात है कि उनके भक्त प्रायः ९९ प्रतिशत दैनिक यज्ञ और सन्ध्योपासना आदि करते हैं। जब तक नित्य कर्म न करें, भोजन नहीं खाते। परमेश्वर करे कि सब वैदिक धर्मी भाई और बहिनें उन पाँच महायज्ञोंको अपनाते हुए देशके नाम और परमेश्वरके कामको संसार भर में फैला दें।

यज्ञ रहस्य, प्रथम भाग के २३-२४ वर्ष बाद यह दूसरा भाग अपनी निराली शान के साथ यज्ञ प्रेमियों के पास आ रहा है। यज्ञ क्रियाओंमें कितनी आध्यात्मिकता भरी है, यज्ञसे किस प्रकार स्वास्थ्य, सुख विशेष और ईश्वरकी प्राप्ति हो सकती है, यज्ञ कैसे योग वाली सिद्धियाँ प्रदान कराता है, यज्ञमें किस प्रकार सावधान होकर हम शीघ्रातिशीघ्र लाभ उठा सकते हैं, ब्रह्मचारी, गृहस्थी और वानप्रस्थीको यज्ञसे क्या शिक्षा और कैसे लेनी है, इत्यादि इत्यादि

मार्मिक बातें सरल स्पष्ट शब्दोंमें लेखक महोदयने वर्णनकी हैं कि जिनको एक बार देख अथवा सुन लेनेसे तृप्ति नहीं होती, बार बार मन देखना सुनना चाहता है।

पुस्तकको तरतीब देने और संपादन करनेमें विनीतके अस्वस्थ रहनेके कारण देरी हो गई है, पाठक वृन्द क्षमा करेंगे और पुस्तक को अनुष्ठान रूपसे पढ़ सुनकर आचरण करेंगे तो अतुल सुखकी प्राप्ति होगी, ऐसा विनीतका निश्चय है। प्रभुदेव हमारी यह कामना सिद्ध करें।

रोहतक
१६-५-१९६१
ज्येष्ठ शुदि पञ्चमी
२०१८ विक्रमी
शुक्रवार

विनीत—
सत्य भूषण आचार्य
अधिष्ठाता
वैदिक भक्ति साधन आश्रम

।। ओ३म् ।।

यज्ञ रहस्य—द्वितीय भाग

लेखक की भूमिका

यज्ञ रहस्य प्रथम भाग २८ फरवरी १९३८ ई० में लिखा गया था। वह कई बार छपा और यज्ञ प्रेमियोंने उसे पढ़ा। उसके दूसरे भागकी मांग प्रेमियोंसे होती रही। टोबा टेकसिंह भक्ति साधन आश्रमके वार्षिक यज्ञ पर सन् १९४३ में मन्त्रोंकी व्याख्या होती रही और वह सब लेख बद्ध होकर छपनेके लिए लाहौर प्रेसमें भेजा गया। १९४७ में वह छप भी गया। पुस्तक अभी दफ्तरीके पास थी कि पाकिस्तान बन गया और उपद्रव प्रारम्भ हो गए। असल प्रतिलिपि और सब सामान पुस्तकें आदि लाहौर ही रह गईं। अक्टूबर १९४७ से दिल्ली आनें पर अब तक भी मांग बनी रही परन्तु न अवकाश मिलता और न पुरानी बातें याद आतीं। कई बार पुत्री समप्यारी धर्मपत्नी श्री लोकनाथजी जवाहर गलास कम्पनी ने कहा कि पिताजी ! "दूसरा भाग जरूर लिख देवें।" अब कुछ दिन हुए एक मंत्र आया और उसीके विचारते यह फुरना बन गई कि अब अवश्य लिखना चाहिए चाहे वह पुराना मैटर (Matter) सामने नहीं आता। कल २०–९–५६ को मैं एकान्त बैठकर यज्ञ भवनकी अपनी पुरानी कुटीमें यज्ञ रहस्य प्रथम भाग का स्वाध्याय करने लगा कि देखूं मुझे कहांसे प्रारम्भ करना है। सो आज सवितः देव गुप्त प्रेरकके आश्रयसे आरम्भ कर रहा हूं। परम गुरु सच्चिदानन्द प्रभु इन यज्ञ प्रेमियोंकी इस मांगको पूरा करा देंगे।

। ओम् शम् ।

शनिवार श्राद्ध कृष्णपक्ष द्वादशी
आश्विन २०१४ विक्रमी।

प्रभु आश्रित

॥ओ३म्

यज्ञ रहस्य-द्वितीय भाग

इक्कीसवीं झांकी

अधिकारी कौन !

सेठ—मैंने वेद यज्ञों के नियम तो पढ़ लिए हैं, अच्छे हैं, परन्तु दो बाधाएं यदि दूर कर दी जाएं तो सबको यज्ञ करने का अवसर और सौभाग्य मिल जायगा, नहीं तो मेरे जैसे लाखों मनुष्य वंचित रह जावेंगे और वेद प्रचार भी न हो सकेगा। बहुत संकुचित क्षेत्र आपने बना दिया है।

महात्मा—कौनसी ऐसी दो बातें आपको खटकती हैं?

सेठ—एक तो आपने लिखा कि जो मांस, मदिरा, तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी आदि का सेवन करता है वह आहुति नहीं दे सकता। दूसरी शर्त यह लगा दी कि धोती पहनकर आहुति दें, पतलून पाजामा से आहुति न दें। आज वह पुरातन युग नहीं रहा। माँस, सिगरेट से आज विरला ही कोई बचा हुआ है। बंगाल, मद्रास, आसाम, बिहार, सिन्ध, उड़ीसा, तो मांस मीन के बिना रह नहीं सकते, हां पंजाब और उत्तर प्रदेश हैं परन्तु पंजाब में भी बहुत लोग खाते हैं। सिगरेट, बीड़ी का तो आज सिनेमा

की तरह बाजारों में प्रचार होता है। अमुक नम्बर की बीड़ी बहुत स्वादिष्ट होती है। और क्या धोती के बिना अग्नि आहुति को स्वीकार नहीं करती और आपकी आज्ञा है कि यम नियम का पालन भी आवश्यक है। यम नियम के पालन से कार्य व्यवहार में बड़ा हरजा (बाधा) होगा।

म०--अच्छा! आपको इनका उत्तर तो बाद में दूंगा पहिले आप यह बताइए कि आप हिन्दू हैं अथवा मुसलमान, क्रिस्तान।

सेठ--वाह जी वाह! मुझे जानते भी हैं और फिर यह भी पूछते हैं कि तुम हिन्दू हो अथवा मुसलमान? मैं तो भगवन्! पक्का आर्य समाजी और वैदिक धर्मी हूं। ऋषि दयानन्द का भक्त हूं।

म०--आपका नाम क्या है?

सेठ--मच्चलदास।

म०--फिर तुम्हारा सार्थक नाम माता पिता अथवा ब्राह्मण ने रखा है? मच्चलदास के अर्थ हैं मत्+चल अर्थात् सदुपदेशों को सुनकर, जानकर उन पर न चलने वाले को मच्चलदास कहते हैं।

देखो, शास्त्रों में लिखा है:—

नानृतं वदेन्न मांसमश्नीयान्न स्त्रियां उपेयाम्॥

तै० सं० १-५-५-३२

अर्थ--यज्ञ विशेष में असत्य न बोलें, मिथ्या भाषण आदि न करें, मांस भक्षण भी न करें और स्त्री संग भी वर्जित है।

मा शिशन देवा अपिगु ऋतं नः ॥ऋ० ७-२१-५॥

उपस्थ इन्द्रिय से व्यवहार करने वाले, ब्रह्मचर्य से रहित, कामी जन सत्य धर्म को न पहुंचे और न हम लोगों को प्राप्त हों। व्यभिचारी लोगों को यज्ञ में न लो।

यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र २१ में लिखा है :-

उत्सुक्थ्या अवगुदंधेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीव भोजनः ॥२१॥

अर्थात् हे राजन ! जो लोग परस्त्री गमन करते या हिंसा करके जीव का भोजन करते, मांस, अण्डा आदि खाते हैं उनको उलटा लटका कर सिर नीचे और टांगे ऊपर बांध कर कोड़े पर कोड़ा लगाओ और तड़पा तड़पा करके उनके प्राण निकाल दो।

अरे मच्चलदास ! तुम अपने आप को इसलिए वैदिक धर्मी कहते हो कि तुम सेठ हो और आर्य समाज को बहुत दान देते हो। महर्षि दयानन्द महाराज ने स्पष्ट लिखा है कि अधो वस्त्र अर्थात् धोती या पीताम्बर

धारण करके क्रिया करें। देखो संस्कार विधि सम्वत २००५ पृष्ठ ११८ समावर्तन संस्कार। यही तुम्हारी ऋषि दयानन्दकी भक्ति है कि तुम उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते और कहते हो कि मैं ऋषि भक्त हूं। हमारी प्रचानी सभ्यता है उसे भी तुम ठुकराना चाहते हो। विदेशों का बाना (भेष), विदेशों का (सा) खाना, विदेशों में रहना पसंद है, ऋषि मुनियों आर्यों का भेष, खान पान रहन सहन पसंद नहीं। क्या आचरण हीन लोग अपनी मर्यादा सभ्यता का हनन करने वाले वेद का प्रचार कर सकेंगे ?

पाकिस्तान की बात है जब हम वहां थे, एक बार हमारे प्रदेशका डिप्टी कमिश्नर जो मुसलमान था, दौरा पर आया। तहसीलका तहसीलदार हिन्दू था, वह पड़तालके लिए साहिब बहादुरके साथहो लिया। पड़ताल कार्य करनेके बाद शेष कर्मचारी पीछे मौके पर रह गए परन्तु ये दोनों अपने-अपने घोड़ों पर चल पड़े। मार्गमें जङ्गल था। नमाज (प्रार्थना) का समय हो गया। साहिब डिप्टी कमिश्नर घोड़ेसे उतर पड़ा और तहसील-दार साहिबसे कहा मैं नमाज पढ़लूं। तहसीलदार साहिब ने अपने और साहिबके घोड़ेको पकड़ रखा। साहिब डिप्टी कमिश्नरका भेष निक्कर आदिका था उसने जीनके

थैले से धोती (तहमत) निकाली। बिरजिस उतारकर बाँधी और जलके अभावसे मिट्टीसे तयमुम किया अर्थात् मिट्टीसे हाथ पाऊँ साफ किए और एक वस्त्र बिछाकर भूमि पर नमाज पढ़ने लगा। जब तहसीलदार ने देखा तो मनमें कहने लगा कि कितना यह साहिब डिप्टी कमिश्नर होते हुए मजहबका पक्का है, नमाज़के लिए धोती, वस्त्र बिछानेका अपने साथ रखा है नौकरके पास नहीं रखा और परमेश्वर कितना प्यारा है, मैं उसकी अपेक्षा क्या हूँ, कुछ भी नहीं, परन्तु मैं अपने पदके मदमें किसी मन्दिर में, सभामें, सत्सङ्ग में नहीं जाता और ब्राह्मण होकर कोई पूजा पाठभी नहीं करता। अपने पर खेद प्रकट किया और मनमें धारणा करली कि अब से मैं भी पूजा किया करूँगा, वस्त्र पूजाके अलग बना रखूँगा। हमारे तो सब विद्वान् ब्राह्मण भोजन और भजनके समय वस्त्र उतार, एक धोती ऊपर नीचे ओढ़ कर खाना बनाते और खाते हैं और भजन करते हैं। जब डिप्टी कमिश्नर साहिब निवृत्त होकर सवार होने लगे तो तहसीलदारने पूछा, हजूर ! (श्रीमान् जी) आप इतने बड़े अधिकारी होकर भी ऐसी सावधानी बरतते हैं। साहिब ने कहा हमारे रसूल करीमका हुकम ऐसा है [अर्थात् हमारे दयालु गुरु की आज्ञा ऐसी है], यदि आज्ञाका पालन न करें तो हम मुसलमान नहीं कहलायेंगे, काफिर कहलायेंगे। प्यारे

सेठ ! आज लोग तो चाहते हैं कि ईश्वर हमारे पीछे चले। वेद और धर्मभी हमारे पीछे चलें हम उनके पीछे न चलें। अरे सेठ ! अपने मदमें न रहो। सत्यके ग्रहण करने और असत्यके त्यागनेमें सर्वदा उद्यत रहना चाहिए यही आर्यसमाजका सिद्धान्त है हमारे गुरु महाराजका बनाया हुआ।

सेठ–बस बस महाराज ! अब काफी हो चुकी, मैं प्रतिज्ञा रूपसे सब दुर्व्यसनोंका त्याग करता हूँ। सचमुच मैं बालकपनमें अपनी मनमानी करता था। माता पिता की न सुनता था उन्होंने मेरा नाम "मचलाधचला" रख रखा था और इसी नामसे पुकारते थे। नाम मेरा ब्राह्मण ने मन चला रखा था। गद्दी सम्भालने पर मेरा नाम मच्चलदास प्रसिद्ध हो गया। अब मेरे नामका अर्थ हो गया, कर्मों पर न चलने वाला। कृपा करके मेरा यज्ञ कीजिए।

अब आपने समझ लिया कि यज्ञका अधिकारी कौन है, वही अधिकारी है जो मांस, मदिरा, तम्बाकू आदिका सेवन नहीं करता और जो यम, नियम का पालन करता है।

सेठ–हाँ महाराज ! बड़ा धन्यवाद। अब यज्ञकी आज्ञा कीजिए।

॥ ओ३म् ॥

बाईसवीं झांकी
वर्षेष्टि यज्ञ

सेठ—भगवन् ! इस प्रदेश में वर्षाके अभावसे खेतियां [स]ूखने लग गई हैं अतः मुझे विचार आया कि हमारे [श]ास्त्रों में लिखा है कि

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः ।
यज्ञात् भवन्ति पर्जन्या यज्ञ कर्म समुद्भवः ॥गी०॥

अर्थात् अन्नसे प्राणी जीते हैं, अन्न वर्षासे होता है, [व]र्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ कर्मसे पैदा होता है और [व]ेद से ।

और इसे कई बार देखा है कि जब-जब कहीं वेद का [य]ज्ञ हुआ, अवश्य वर्षा हुई । अब भी एक बड़ा भारी [य]ज्ञ कराना चाहिये । प्रभुने धन सम्पत्ति दी है [त]ो ऐसे पवित्र कार्यके लिए यज्ञ कराऊँ तो कमाई भी [स]फल होगी और वर्षा से जनहित भी होगा । चल [प]ड़ा और अपने संकल्पको प्रभु आश्रित के सामने प्रगट [क]िया है ।

प्रभु आश्रित–सेठ जी ! संकल्प आपका बहुत शुभ है और यज्ञों पर प्रभु कृपा भी अवश्य हो जाती है, वर्षा आ ही जाती है परन्तु वह वर्षा हमारी विद्या से नहीं आती, हम तो उस वृष्टि यज्ञ विद्याको जानते ही नहीं। प्रभु कृपा और जन शुभ भावनाओंके आधार पर अपने आप हो जाती रही है।

सेठ--मैं तो सदा यज्ञोंमें सुनता रहता हूं "निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु"--यजु २१-२२ अर्थात् कि जब जब भी हम कामना करें, जलधर जल बरसावें और बरसाता है, तो फिर क्यों शंकामें डालते हैं।

प्रभु आश्रित--न शंकामें हम आपको डालते हैं न हमको कोई शंका है। हम तो वेद शास्त्रके विश्वास पर श्रद्धासे यज्ञ करते कराते हैं। कई पुत्रेष्टि यज्ञ भी कराए और वृष्टि यज्ञ भी और प्रायः प्रत्येक यज्ञ पर वृष्टि होती भी रही परन्तु हम इस विद्याके वेत्ता नहीं हैं। वेदोंमें आकाशकी सबसे बड़ी शक्तिको इन्द्र कहा है। "इन्द्रो विश्वस्य राजति"। इसीके आधीन ही वर्षा है। इस इन्द्रको "मरुत सखा" कहा गया है। अग्नि दूत जब मरुतमें प्रेरणा करता है तब वह इन्द्रके द्वारा वृष्टि करता है। इस प्रकारका सूक्ष्म विज्ञान जो वायु, जल, अग्निसे सम्बन्ध रखता है उसका वेदोंमें विस्तारसे वर्णन है।

गणित विद्याका जानना आवश्यक

यज्ञोंमें निम्न निम्न प्रकारके कुण्ड बनाए जाते थे जिनके लिए अंकगणित, बीजगणित और रेखागणितका जानना भी आवश्यक है। यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र २ देखिये--

इमा मे अग्न इष्टकाः धेनवः सन्त्वेका च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं चन्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रा-मुष्मिंल्लोके ॥ यजु० १७।२॥

भावार्थ--जैसे अच्छे प्रकार सेवनकी हुई गौ दुग्ध आदि के दानसे सबको प्रसन्न करती है वैसे ही वेदिमें चयनकी हुई ईंटें वर्षाकी हेतु होके वर्षादिके द्वारा सबको सुखी करती हैं। मनुष्योंको चाहिये कि एक संख्याको दश बार गुणनेसे १० दश, दशको दश बार गुणनेसे सौ १००, उसको दश बार गुणनेसे हजार १०००, उसको द० गु० से दश हजार १००००, उसको द० गु० से लाख १०००००, उसको द० गु० से दस लाख १०००००० इस को द० गु० से करोड़ १००००००० , इसको द० गु० दस करोड़ १०००००००० ,इसको द०गु० से अर्ब १०००००००००, इसको द० गु० करने से दस अर्ब १००००००००००,

इसको द० गु० करने से खर्ब १०००००००००००, इसको द० गु० करने से दश खर्ब १००००००००००००, इसको द० गु०करने से नील १०००००००००००००, इसको द.गु. करने से दस नील १००००००००००००००, इसको द.गु. करनेसे एक पद्म १०००००००००००००००, इसको द. गु. करनेसे दस पद्म १००००००००००००००००, इसको द.गु. करने से एक शङ्ख १०००००००००००००००००, इसको द.गु. करने से दस शङ्ख १००००००००००००००००००, इन संख्याओं की संज्ञा पड़ती है। ये इतनी संख्या तो कही परन्तु अनेक प्रकारों के होनेसे और भी अंकगणित, बीजगणित और रेखा गणित आदिकी संख्याओंको यथावत् समझें जैसे इस भूलोक में ये संख्या हैं वैसे अन्य लोकोंमें भी हैं। जैसे यहाँ इन संख्याओंसे गणनाकी और अच्छे कारीगरोंसे चिनी हुई ईंटें घरके आकारको शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदिसे मनुष्यादिकी रक्षा कर आनन्दित करती है वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियाँ जल, वायु और औषधियोंके साथ मिलके सबको आनन्दित करती हैं।

वायु, अग्नि जल का ज्ञान आवश्यक

यज्ञोंमें पदार्थ विज्ञानकी आवश्यकता है। यज्ञोंका अधिकतर उपयोग जल वर्षाने और वायु शुद्ध करने में

होता है इसलिये याजकों को वायु, जल, अग्निके सूक्ष्म कार्योंका ज्ञान अवश्यही प्राप्त करना पड़ता है क्योंकि वर्षा वायु चक्र पर, वायु चक्र शीतोष्ण पर और शीतोष्ण ग्रह उपग्रह और पृथ्वीकी चालों (गति) पर अवलम्बित है इसलिए जब तक इन तीनों तत्वोंका ज्ञान प्राप्त न हो तब तक न तो इच्छा पूर्वक जल वर्षाया जा सकता है और न वायुकी शुद्धिकी जा सकती है।

सूर्यके ताप और वर्षाके जलसे वायु सूक्ष्म हो कर वेगसे चलने लगती है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतुमें आँधी चलती है। इसी प्रकार वर्षा ऋतुमें वायु स्थानमें जल भर जाने से भी वायुमें हल चल (गति) उत्पन्न हो जाती है इसलिये ज्योतिषके द्वारा गृह चालोंसे ऋतुओं को स्थिर करके यज्ञ किए जाते हैं।

वर्षा अन्तरिक्षसे आती है और अन्तरिक्षका राजा वा देवता वायु है। "वायुरन्तरिक्षस्याधिपतिः" अथर्व वेद ५-२४-८ अर्थात् वायु अन्तरिक्षका स्वामी है।

और

"वायु यजुर्वेदः" के अनुसार वायु ज्ञानसे सम्बन्ध रखने वाला एक यजुर्वेदी अलग कर दिया गया।

वायु के भेद

वैद्यकों को वायुकी सूक्ष्मता दो प्रकारकी ज्ञात थी:-

एक पिण्डकी दूसरी ब्रह्माण्ड की। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय नामी वायुके सूक्ष्म भेद पिण्ड से सम्बन्ध रखते हैं और ४९ प्रकारके सूक्ष्म भेद ब्रह्माण्डसे सम्बन्ध रखते हैं। इन ४९ प्रकारके भेदों को जानकर उनके अनुसार यज्ञ करने से सफलता होती है।

जल वर्षाने वाले यज्ञोंमें इसका अधिक विचार किया जाता है। इस विचार विधिका वर्णन ऋग्वेद मण्डल १० के शान्तनु सूक्तमें बहुतही विस्तार रूपसे किया गया है। इसलिये याजक लोग अपनी इच्छासे जल वर्षाते और बन्द करते थे।

वर्षा यज्ञके मन्त्र

मोटा सिद्धान्त यह है कि जिस द्रव्यमें उद्रजन (Hydrogen) अधिक होती है उसको वृष्टि यज्ञकी सामग्री बना यज्ञमें डाली जाती है, उससे वर्षा होती है। जैसे कैर और बेदकी समिधासे मनों भरे गोघृतमें डुबो डुबोकर गायत्री मन्त्र तथा निम्न मन्त्रोंसे आहुति दी जाती है।

समुत्पतन्तु प्रदिशोनभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु। महाऋषमस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ॥ अथर्व ४।१५।१॥

अर्थ--बादलसे छायी हुई दिशायें भले प्रकार उदय हों,

पवनसे चलाये गये जल भरे बादल छा जावें। बड़े गम्भीर शील गरजते हुए आकाशमें छाये बादलकी धड़घड़ाती जल धारायें पृथ्वीको तृप्त करें।

मण्डप कैसा हो ?

मण्डप ऐसा बनाया जाएकि इधर-उधरकी वायु बिखर न जावे। धुआँ सीधा ऊपरको जाये। मण्डप की शाला दोनों ओरसे ढलवान बनाये जावें और ऊपर ऊंचे और धुआं निकलनेके लिये ऊपरको सीधा चौकोन मार्ग (अवकाश-रोशनदान-दूदकश-धूम्र खैंचनेका स्थान) बनाये जावें। एक स्तम्भ खड़ा करें उस पर एक टूटीदार आधा टीन घीसे भर रखा जावे और उस टूंटीसे अग्निकुंडके मध्यमें अनवरत धारा चलाई जावे तो प्रभु कृपासे वर्षा हो जाती है। इस प्रकारका परीक्षण मैंने स्वयं और आचार्य सत्यभूषणजी ने कराकर देखा है। चाहे एकही मन्त्रसे १। लाख आहुति दी जावें अथवा अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त १५की ७५ माला आहुति दी जावें। ऋग्वेदके अन्दर एक मन्त्र आता है जिसमें बताया गया है कि ६६००० आहुति के बाद मेघ आकाश पर मण्डराने लग जाते हैं।

नोट--भानकी समिधा आठ-आठ अंगुल सवा लाखकी कैरकी प्रचण्ड अग्निमें गो दुग्धमें भिगोकर एक-एक समिधा से एक-एक आहुति देनेसे वर्षा यज्ञमें सफलता प्राप्त हुई

कर सूखा अथवा गीला दोनों प्रकारकी समिधा काममें लानी चाहिएँ।

तेइसवीं झांकी

नित्य कर्म का आध्यात्मिक रहस्य

सेठ--अच्छा, वृष्टि और पुत्रेष्टि आदि यज्ञ याग तो आपने कहा, यज्ञ विद्याके पूर्ण विद्वान् करा सकते हैं, इसके लिए तो खोज पूरी पूरी अभी किसीने नहीं की। शेष रहा नित्य कर्म अथवा वह यज्ञ जो समाजमें साप्ताहिक अथवा परिवारोंमें विशेष स्वस्ति वाचन, शान्ति प्रकरण का पाठ करके सामान्य प्रकरणसे आहुतियां डालना, तो उसीके सम्बन्धमें ही समझा दें जिससे आध्यात्मिक लाभ हो सके। हवन तो मैं नित्य प्रति कर लेता हूं, वायु तो शुद्ध हो ही जाती है। और अपनी उन्नतिका पता नहीं लग सका।

प्रभु आश्रित–हवन यज्ञके मन्त्रोंसे क्रिया करनेमें दो शब्दोंका महत्व महान् है जिनके समझ लेने पर मानव इस पृथ्वी पर देव बन सकता है, वह शब्द हैं "स्वाहा" और "इदन्नमम" एक प्रकारके ... हैं जिनमें केवल

स्वाहा कहा जाता है, दूसरे प्रकारके मन्त्र वह हैं जिनमें स्वाहा के बाद इदन्नमम भी कहा जाता है।

सुन्दर क्रम

हवन यज्ञ पद्धतिका कैसा सुन्दर क्रम है कि पहिले व्यष्टि वृत्ति कर्म शुद्धि उन्नति और फिर समष्टिसे सम्बन्ध गठन वृत्ति और विराट स्वरूपका दर्शन, ज्योति, उषा और सूर्यके प्रकाशमें कराती है और तत्पश्चात् प्रभु की शक्ति, उसकी व्यापकता तथा आनन्ददायत्वका चिन्तन प्राणोंकी उपमासे याजक कर पाते हैं।

विशाल दृष्टि

सेठ–यह कैसे ? समझ नहीं आई।

प्रभु आश्रित–हवन यज्ञसे दृष्टि विशाल हो जाती है, मोहका आवरण दूर होकर संसारके प्राणियोंके लिए प्रेम हो जाता है और जप यज्ञसे दृष्टि ज्योतिर्मय हो जाती है, उसमें अहंकारका परदा दूर होकर परमात्मामें विलीन होना होता है और यज्ञ हवनसे संसारके प्राणियोंमें विलीन होना होता है जैसे व्याहृत आहुतियाँ।

यज्ञ का प्राण 'स्वाहा'

सेठ–हवन मंत्रोंमें स्वाहासे अग्निमें आहुति डाली जाती है, यह तो समझ आती है कि जहां स्वाहा

होती है वही यज्ञ है परन्तु आचमन लेते समय भी, स्वाहा ही बोला जाता है, यह क्यों ?

प्रभु आश्रित–नित्यकर्म यज्ञमें दो प्रकारकी स्वाहाकार की क्रियाएँकी जाती हैं एक स्वाहा अपने व्यक्तित्वके लिए और एक संसारके लिए। प्रायः सभी याजक दूसरी स्वाहा को तो क्रियात्मक रूपसे करते हैं और पहिली क्रियासे स्वाहाको शाब्दिक रूपसे करते हैं।

व्यक्तिगत स्वाहा

आचमन और अङ्गस्पर्शकी क्रिया अपने लिए होती है जो जलसे की जाती है अपने हृदय तथा आत्माकी शान्तिके लिए और इन्द्रियोंके सङ्गठन और देव पूजाके लिए अथवा आत्माके लिए। नित्यकर्मके यज्ञमें जीवनकी तैयारीके लिए भारतीय विचारकों और ऋषियोंने मानव जीवनका परम लक्ष्य अमृत पदकी प्राप्ति माना है, चुनांचि कहा है :–

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।।

अर्थात्–हे प्रभो ! असत् से छुड़ाकर हमें सत्की ओर ले चलो, अन्धकारसे छुड़ाकर प्रकाशकी ओर ले चलो और मृत्युसे छुड़ाकर अमृतकी ओर ले चलो। और इस लक्ष्यकी

प्राप्तिके लिए सर्वप्रथम सोमयाग और फिर संसारके लिए आग्नेय याग की आवश्यकता है।

सोमयाग

सोमयागका उद्देश्य शान्ति प्राप्त करना है। जल शान्तिका देनेवाला है। उसके लिए तीन आचमन किए जाते हैं।

पहला–अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

इस आचमनका भाव है नीचेके लिए अमृत लाना अर्थात् काम, क्रोध, लोभसे शान्ति प्राप्त करनेके लिए यह आचमन है।

दूसरा–अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।

इस आचमनका भाव है ऊपरके लिए अमृत लाना अर्थात् मोह और अहंकार शान्त करनेके लिये यह आचमन है।

तीसरा--सत्यं यशः श्रीर्मयि श्री श्रयताम् स्वाहा ॥

इस आचमनका भाव सब द्विजवर्ण आश्रमोंके लिए अमृत प्राप्ति करना है। ब्राह्मणके लिए अमृतका साधन सत्य है।

क्षत्रियके लिये यश अमृत है।

वैश्यके लिये श्री अमृत है ।।

यज्ञके तीन अंग और स्वाहा सर्वांग

यज्ञमें स्वाहा क्या है ? स्वाहा ही यज्ञका सब कुछ है। जैसे मनुष्यमें तन, मन और आत्माके मेलसे ही मनुष्य बनता है और कार्य व्यवहार कर सकता है। इन तीनोंमे से एक भी न हो अथवा निर्बल हो तो कार्य सफल नही हो सकता ऐसे ही सत्य यज्ञकी आत्मा है, यश यज्ञका मन है और श्री यज्ञका तन है। 'स्वाहा' का अर्थ भी यही है (१) 'सु' = ठीक, भद्र, सत्य 'आहा' = बोलना, कहना, अर्थात् सत्य बोलना। (२) 'स्व' = आपा, 'हा' = त्याग करना। मनुष्यका यश तब होता है जब वह आपापन = स्वत्वका किसी देश, जाति, समाज अथवा प्रभु, धर्मके लिए अर्पण करता है। (३) 'स्व' = स्वत्व–मिलकियत, सम्पत्ति, 'हा' = त्यागसे प्राप्ति अर्थात् सम्पत्ति या श्रीलक्ष्मीसे किसी दूसरेका आश्रय बनता है।

सत्यकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ?

अब प्रश्न यह है कि यदि स्वाहासे सत्यकी प्राप्ति होती है तो क्या कारण है कि याजकको सत्य प्राप्त नही होता। मनुष्य असत्य बोलता है मोह और अहंकारके कारणसे और इसलिये वह ज्योति को प्राप्त नहीं कर सकता और एकाग्र वृत्ति नहीं हो सकता। आचमन करने से जो जल कण्ठसे हृदय तक जाता है उस आचमनके

प्रभावसे उस समय कण्ठ और हृदयकी नाड़ियां आर्द्र हो जाती, प्रभावित हो जाती हैं जिससे मनुष्य की एकाग्रता बन सकती है। (शतपथ और अथर्ववेद) विधि यह है कि जब हथेलीके गढ़ेमें जल भरें तो स्वाहाकी भावनासे भरें तब जल अमृत बन जायगा। भावना ही बीज है जो सजातीय परमाणोंको खींचेगा, बिना भावनाको परिपक्व किए और जलमें एकाग्र दृष्टि द्वारा प्रवेश किये बिना जल अमृत न बनेगा अमृत बन जाने पर मृत्यु या दुःखके कारण जो काम, क्रोध, लोभ हैं, उनको सुला देगा अथवा उनपर विजय प्राप्त कर लेगा।

फल

कामके शान्त होनेसे सत्यकी प्राप्ति, क्रोधके शान्त होनेसे शोभाकी प्राप्ति, लोभके शान्त होनेसे यशकी प्राप्ति और मोहके शान्त होनेसे श्रीकी प्राप्ति अर्थात् उस सम्पत्ति की प्राप्ति जो दूसरोंका आश्रय बने और प्रजाकी विपत्ति का नाश करनेवाली हो।

अंग स्पर्श मन्त्रोंमें इन्द्रियोंके अहंकारके आत्म समर्पण होनेसे आत्मबल और सोमयागकी सफलता है और आग्नेय याग द्वारा फिर जो कामना हो, वह सिद्ध हो सकेगी।

संसार सेवा

अग्नि कुण्डमें जो आहुतियाँ दी जाती हैं, वह संसारके

सुखके लिए होती हैं और अपना शारीरिक सुख तो मिल ही जाता है। अग्नि और जल गृहस्थीकी सुख उन्नतिके साधन हैं। वायु और पृथ्वी तो मनुष्यके लिये पहिले से प्रभु मौजूद रखते हैं परन्तु अग्नि और जल मनुष्यको अपने आप साधना पड़ता है जैसे शरीरमें कान और नाक तो प्रभु आधीन हैं, वह सदा खुले रहते हैं और मुख और आंख मनुष्य जब चाहे खोल ले, जब चाहे बन्द कर दे। जितना जल और अग्नि मनुष्य अपने घरमें स्थित रखेगा उतना ही उसे सुख मिलेगा। अग्नि रूप पैदा करता है और जब उसे धारण करता है। जलमें मनुष्य अपना स्वरूप (आकार) देखता है।

अंग स्पर्शका मुख्य तात्पर्य मन्त्रोंसे प्रकट है। याजक कहता है और चाहता है (वाङ्म आस्ये अस्तु इत्यादि) कि वाणी मेरी हो, प्राण, आँख, कान मेरा हो, बाहुबल मेरा हो। उसका अर्थ यह है याजककी वाणीसे उसकी आत्मा प्रगट हो। आंख, नाक, कान, प्राणमें उसकी आत्मा प्रगट हो। जैसे एक धनीकी तिजोड़ीमें धन रखा है, तिजोड़ीका बन्द धन उसे प्रगट नहीं करता यदि वह तिजोड़ीका धन भेंट, दान अथवा अर्पण करदे तो उसका नाम तत्काल प्रगट हो जायगा। भवन जब तक अपने लिए है तब तक भवन पतिका नाम प्रगट नहीं परन्तु जब वह भवन प्रजाके, जनताके सुखार्थ अर्पण हो जाए तो फिर वह भवन अपने

स्वामीका नाम प्रकट कर देगा। ऐसे ही अन्न जब तक घरमें रखा है तब तक नाम नहीं। जब अन्नका क्षेत्र चला दिया तो अब वही अन्न उस दाताका नाम प्रकट कर रहा है। ठीक इसी तरह वाणी, आँख, प्राण, कान और बाहु आत्माको प्रकट करेंगे।

आत्मा निर्लेप और शुद्ध पवित्र है दूसरी आत्माओंके समान। जब वाणी शुद्ध, पवित्र और निर्लेप होकर दूसरी आत्माओंके लिए प्रयोग होगी तो अपनी आत्माको प्रगट कर रही होगी। आंख जब प्रेम दृष्टिसे दूसरी आत्माओं को देखेगी तो अपने ही स्वामीको प्रगट करेगी। देखेगी तो आँख परन्तु नाम द्रष्टाका होगा। बोलेगी वाणी, नाम वक्ताका होगा, बाहुबल दीन दुःखियों और अन्याइयोंके जब उधार सुधार करेगा तो नाम आत्माका होगा।

जलमें अपना स्वरूप नजर आता है, इसलिए जहां जहां जल लगाया जाता है वह वह स्थान आत्म स्वरूप दिखाने वाला सिद्ध हो।

शान्ति कब मिलेगी ?

जब जलके गुण, कर्म, स्वभाव, नम्रता, पवित्रता, उदारता याजक धारण करेगा, यह सब अंग पवित्रतासे कार्य करने वाले होंगे, उदार होंगे और फिर उनमें उन गुणोंका या उपकारोंका अभिमान भी न होगा और

पवित्रता होगी तब शान्ति ही शान्ति प्राप्त होगी। मनुष्य जड़ पदार्थोंको तो पृथ्वी, अग्नि, वायु शुद्ध कर सकती परन्तु स्वयं मनुष्यके शरीरको तो केवल जल ही शुद्ध, पवित्र और शान्त कर सकता है।

अङ्ग स्पर्शसे तात्पर्य पवित्रता से स्वतन्त्रता

ओ३म् वाङ्म आस्य अस्तु।

वाणीसे मनुष्य पतित होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारके कारण वाणीका स्वामी वाचस्पति तब होता है, जब आत्माके वशवर्त्ति होकर चले। जब वाणी इन्हीं शत्रुओंके आधीन होकर चलती है तब परतन्त्र और तिरस्कृत रहती है।

१-जब लोभवश असत्य बोलता है तो छल कपटसे बोलता है।

२-क्रोधसे कटु कठोर अशुभ बोलता है।

३-मोहसे मिथ्या अनृत बोलता है।

४-कामसे चाटुकारी तथा दम्भी वाणी बोलता है।

५-अहंकारसे असभ्य बोलता है।

ओ३म् अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु॥

आंखसे काम वश कुदृष्टि, मोह वश पक्षपात दृष्टि क्रोध वश वैर दृष्टिसे देखता है।

कानसे अहंकारसे अपनी स्तुति, द्वेष, क्रोधसे दूसरेकी निन्दा सुनकर प्रसन्न होता है। कामसे अश्लील राग सुनना पसन्द करता है।

सेठ—सनातन धर्मी पण्डित जब यज्ञ करते हैं तो वह मन्त्रको मनमें बोलकर स्वाहा जोरसे उच्चारण करते हैं। क्या यह ठीक है या कैसे करना चाहिए ?

प्रभु आश्रित—स्वाहाके जोरसे मन्त्रके अन्तमें उच्चारण करनेसे रोग निवृत्ति, अस्थमा, यक्ष्मा और उदरके रोग दूर होते हैं। ऐसा श्रद्धालु इसे उच्चारण करने वालेंको यह रोग होने ही नहीं पाते। यदि अहंकारसे बलपूर्वक उच्चारण किया जावेगा तो वह दिखावा दूसरोंके सुनानेके लिये होगा, इससे रोगकी दूरीकी बजाय अपने अन्दर क्रोधके परमाणुओंको आकर्षित करना होगा। यदि श्रद्धा भक्ति से बलपूर्वक उच्चारण होगा तो रोग निवृत्तिके साथ दया के परमाणु अन्दर प्रवेश करेंगे।

चौबीसवीं झांकी

सूक्ष्म शरीर को जगाओ

जाग जाने का फल

कर्मइन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि यह सूक्ष्म शरीरके अंग हैं। बाह्य इन्द्रियां अन्तःकरण मन बुद्धिके द्वारा कार्य करती हैं। इसलिये मनुष्य जप, यज्ञ, दान आदि शुभ कार्योंको इस वास्ते करता है कि उसका सूक्ष्म शरीर शुद्ध हो जाए। जब तक सूक्ष्म शरीर शुद्ध न हो, वह जगता नहीं और जब तक जगता नहीं तब तक उस मनुष्यको प्रभु स्वीकार नहीं करते।

एक बार जब सूक्ष्म शरीर जग जाता है तो फिर प्रभु जिम्मेवारी ले लेते हैं वह उसे फिर सोने नहीं देते। वैसे भी मनुष्य जब सो जाता है तो उसका सूक्ष्म शरीर बिना प्राण के सो जाता है। फिर जब जागता है तो उसका सूक्ष्म शरीर ही जागता है। उसकी निशानी यह है कि जागने पर सर्वप्रथम अपने मुख ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियोंका मल त्याग करता है, उसे शुद्ध करता है और शुद्ध होकर पुरुषार्थ करने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार आन्तरिक क्रिया होती है। सूक्ष्म शरीर जब जग कर बाह्य मुखी

होता है तब आत्माकी प्रेरणा जो प्राणमें होती है उसके सहयोगसे संसारका व्यवहार शरीरके लिये करता है और जब सूक्ष्म शरीर जगकर अन्तः में परलोकके कार्यके लिए लग जाता है तो आत्माके लिये कार्य करने लग पड़ता है। फिर अन्तर्वृत्ति महापुरुषोंसे बल मिलता रहता है। उसके विचारोंमें उन्हींसे विचारधारा आकर सहायता करती है।

साँसारिक कार्यके लिये तो सूर्य, अग्नि, वायु आदि जड़ देवता सहायता करते हैं, परन्तु आन्तरिक आत्मिक कार्योंमें चेतन देव विद्वान्, योगी सिद्ध पुरुषोंसे धाराएं मिलती हैं। गीतामें कहा है:—

यज्ञदानतपश्चैव पावमानी मनीषिणाम् ।

अर्थात् यज्ञ, दान और तप मननशील, विचारक पुरुषों को पवित्र करते हैं।

सेठ—यज्ञसे मनुष्यका अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर कैसे शुद्ध हो जाता है ?

प्रभु आश्रित—यज्ञ सकाम तो सकाम विधिसे होता है परन्तु जो यज्ञ अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये किया जाये, यश, बल, धन, पुत्र आदि किसी प्रकारकी इच्छाओं नाम मात्र तक न हो तब अन्तःकरणकी शुद्धिकी इच्छावालेको निम्न मन्त्रोंसे प्रतिदिन आहुति देनी चाहिये:—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥
य० ३२-१४

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्नि प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥
य० ३२-१५

एक एक मन्त्रको समझकर स्वाहा बोलकर आहुति नी चाहिये । मन और बुद्धिको एकाग्र करके (भावना और अर्थ समझकर) आहुति देनेसे कितना ही पापी क्यों न हो उसके संस्कार विचार बदल जायेंगे । साधक याजक की भावनाएं आकाशसे सद् भावनाओं, सद् प्रेरणाओंके परमाणुओंको चुम्बकके सदृश आकर्षित करेंगी ।

जब मनुष्य इस भावना से यज्ञ करता है कि प्राणीमात्र का कल्याण हो, परमात्मा तो वायु को उत्पन्न करता है और याजक उस उस वायु को सुगन्धित बनाकर बलवान करता है और आकाश में एकत्रित मेघों में जल को शुद्ध, बलिष्ठ और रोग निवारक बनाता है । जब यज्ञ से कोटि प्राणियों को शुद्ध प्राण मिलेगा तो उनके प्राण में याजक का प्राण दाखिल हो जावे तो प्राण बल बढ़ता जाता है ।

सब इन्द्रियों में शुद्ध प्राण जाने से सब इन्द्रियां पवित्र हो जाती हैं । यज्ञ से दुःख दूर होते हैं तो याजक को

शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक दुःख नहीं होता। सब के सुख की भावना से यज्ञ करने वाले को आत्मिक शान्ति मिलती है।

सात्विकता बढ़ाने अथवा खोई हुई सात्विकता को वापस लेने का एक मात्र साधन यज्ञ है।

यदि मनुष्य अपनी सात्विकता को बढ़ाना चाहे अथवा नष्ट की हुई सात्विकता को फिर से वापस लाना चाहे तो उसका एक मात्र साधन यज्ञ है। "यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्" यज्ञ की भावना से किया हुआ यज्ञ समस्त प्राणी मात्र और प्राणी मात्र के अन्दर प्राण प्रविष्ट कर देता है। जब वह सबका प्राण जीवन बन जाता है तो कोई देव अथवा अदेव (असुर) उससे अमित्रता नहीं करेगा।

मनुष्य के किए हुए कर्म के परमाणु और मानसिक भावों और विचारों की तरंगे उसके इर्द गिर्द भ्रमण करती रहती हैं और वहां तक पहुँचती हैं जहां तक कर्म का लक्ष्य होता है। यह परमाणु अथवा तरंगें पद चिन्ह खोज का काम करती हैं। जैसे चोर की खोज उसके पाद चिन्हों से लगाई जाती है और घातकों का कुत्तों और च्योंटियों के द्वारा खोज लगाई जाती है। दैनिक उर्दू

समाचार पत्र 'प्रताप' ८-९-५७ में लिखा था कि ५-९-५७ की रात्री को लखनऊ में एक मानव के वध की घटना हो गई। बैजनाथ संज्ञक एक व्यक्ति अपनी रखेली स्त्री के साथ सोया हुआ था। तीन व्यक्ति उस गृह में प्रविष्ट हुए। बैजनाथ और उसकी रखेली को खड़ग से घायल करके भाग गए। बैजनाथ मर गया। पुलिस ने प्रातः समय घटना स्थल पर पहुँचकर कुत्ते से काम लिया। कुत्ते ने उस कमरे की वायु को सुंघकर जहां घटना हुई थी, रखेली घायल पड़ी थी, कुछ प्राण उसके बाकी थे। उससे पुलिसने पूछा वह केवल इतना कह सकी कि तीन व्यक्ति थे, एक सीताराम था। इससे अधिक न बोल सकी अथवा न बता सकी। कुत्ता फिर बहार निकल कर एक मार्ग पर चल पड़ा और पड़ोसके एक मुहल्ला के एक मकान में पहुंच गया और एक कमरे में दाखिल होकर एक पत्र को जो वहां पड़ा था सूंघनेके बाद सम्मुख बैठे हुए एक व्यक्ति की तरफ संकेत करने लगा जिसे पुलिस ने तुरन्त गिरफ्तार कर लिया उस आदमी से नाम पूछा तो उसने कहा मेरा नाम सीताराम है।

इसी तरह बताया गया है "वीर अर्जुन" १०-९-५७ को हावड़ा (कलकत्ता) में पिछले दिन किसी ने किराना की एक दुकान को लूट लिया था। दुकानके बाहर जो व्यक्ति सोया हुआ था उसका वध कर दिया। इस घटना

की खोजके लिए पुलिस ने मित्ता नामी कुत्ते से काम लिया। मित्ता कुत्ता सीधा एक माँस विक्रेता की दुकान में घुस गया जो घटना स्थल से कुछ दूर थी। मित्ता उस दुकान में एक व्यक्ति पर झपट पड़ा। पुलिस ने उसे पकड़ लिया उसकी तलाशी ली तो एक छुरा रक्त रञ्जित बरामद हुआ।

भावना का प्रभाव

यज्ञ करते समय जब हम पुनः पुनः स्वाहा और सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना रखकर यज्ञ करते हैं तो हम अन्नमय, प्राणमय कोषके बल पर बोलते हैं। यह शब्द, भावनाएं हमारे निर्बल परमाणुओं को आकाश में ले जाती हैं और वह इकट्ठी होती रहती हैं, व्यर्थ नहीं जाते। जब कभी मनोमय और विज्ञानमय कोशके बल से वह स्वाहा और सर्वेभवन्तु सुखिनः की ध्वनि निकलेगी तो सहसा वह एकत्रित परमाणु बारूद के गोले के सदृश (बाणी का बाण) समष्टि मनः लोक में जाकर इस व्यष्टि मन का सम्बन्ध समष्टि से जोड़ देगी और याजक का मन शिव सङ्कल्प वाला होकर उसे अपने मन के दर्शन करायेगा तब उसमें प्रभु शिव का संकल्प ही उठेगा।

सेठ—क्या यह जो नित्य कर्म हम करते हैं उससे ही हमारी सब कामनाएं सिद्ध होजाती हैं ?

प्रभु आश्रित–जब हम हवन कुण्ड में आहुति देते हैं एक तो सामान्य नित्य कर्म के भाव से, इससे तो हमारा प्रायश्चित कर्म होता है। जो मल शरीर से नित्य हम निकालते हैं उसके बदले में हम नित्य कर्म की आहुतियां देते हैं, देवऋण उतरता है, दूसरी देते हैं विशेष आहुतियां किसी विशेष लक्ष्य के लिये उसकी सफलता तब हो सकती है जब हम लक्ष्य विशेष की पूर्ति के लिए उस प्रकार की औषधि डालें जिनमें लक्ष्य के पूरा करने वाले देवता के गुण हों तब उसका प्रभाव तुरन्त हो सकेगा।

उदाहरण रूपेण यदि हम रोग दूर करना चाहते हैं और रोग नाशक औषधि नहीं डालते तो रोग दूर नहीं होगा। ऐसे ही जब हम मन की पवित्रता और सद्बुद्धि की मांग करते हैं तो वह औषधियां हम डालें जिन औषधियों में उनके गुण हों। जो देवता हमारी बुद्धि मन को पवित्र करने वाले हों। ऐसे पुत्रेष्टि और वृष्टि यज्ञों लिए विशेष औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

काम क्रोध आदि की निवृत्ति

जैसे (१) उषाकाल अन्धकारके दूर करने वाला है उषा पापों को दूर करने वाली है। जिस पदार्थ में उषा के गुण होंगे जो उषा काल में उगती बढ़ती होगी वह पदार्थ पाप विनाशक परमाणुओं को लायेगा। जिस पदा

का उषाकाल में विनाश होता होगा या बढ़ने की समाप्ति होती होगी वह पदार्थ तम वृत्ति को लाने वाले होंगे।

(२) जितने पदार्थ सोम हैं जैसे घृत, शहद, दुध आदि वह क्रोध और लोभ को दूर करते हैं और जितने पदार्थ सुगन्धित हैं जैसे चन्दन, लोबान आदि वह काम को दूर करते हैं, मध्यवर्ति (Moderate-मोतदिल) पदार्थ अहंकार को और स्थूल मिष्ट पदार्थ मोह को दूर करते हैं।

सेठ—यज्ञों से शान्ति, संसार और व्यक्ति की मानसिक शान्ति कैसे होती है ?

प्रभुआश्रित—सुगन्धित पदार्थों से काम और मोह, मध्यवर्ति पदार्थों से अहंकार और सोम पदार्थों से लोभ और क्रोध शान्त होते हैं।

भौतिक रूप में जो पदार्थ अथवा औषधियाँ रक्त को शुद्ध करती हैं उनका दैविक रूप यज्ञ में चित्तवृत्तियों को शुद्ध करती हैं [जैसे शहद और शाहतरा-(पित पापड़ा) शबा रक्त को शुद्ध करते हैं तो यज्ञ में इनके प्रयोग से चित्त वृत्तियां शुद्ध होंगी—सम्पादक]।

सुगन्धित पदार्थ दो प्रकारके हैं एक औषधियोंके पत्ते और मूल, दूसरे वृक्षों, वनस्पतियों की समिधाएं तृण आदि।

केसर, कस्तूरी, वृक्षों की गोंद, चन्दन धूप, लकड़ी, देवदारू, गुग्गल, राल आदि ।

सोम पदार्थ–घृत, शहद, दुग्ध, सोम लताएं। जितने मीठे पदार्थ सोम हैं उनमें श्रद्धा, प्रेम, स्नेह आकर्षण पैदा करने की शक्ति है और घृत में स्नेह आकर्षण, विकर्षण दोनों शक्तियां हैं ।

एक बात यहां स्मरणीय है कि इन्द्रियों का आहार और व्यवहार पाँच प्रकार का है । व्यवहार का आहारके साथ सम्बन्ध है ।

इन्द्रियों का आहार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। इन्द्रियों का व्यवहार, सुनना, अनुभव करना देखना, चखना और सूंघना है, इन्द्रियाँ जड़ हैं। मनके विचार बुद्धिके आचारके आधीन हैं।

पच्चीसवीं झाँकी

यज्ञाग्नि का चित्त पर प्रभाव

सेठ–यज्ञाग्नि का चित्त पर कैसे प्रभाव पड़ता है ?

प्रभुआश्रित–यज्ञाग्नि से भिन्न भिन्न प्रकारके रङ्ग निकलते हैं। उन रङ्गोंका चित्त पर प्रभाव पड़ता है।

जैसे सूर्यकी रश्मियां हरि, नीली, लाल, पीली संसारकी रक्षा करती हैं, वैसे अग्निसे निकले रंग भी वैसे ही रक्षा करते हैं। हमें सूर्यकी रश्मियां प्रत्यक्ष रूपसे तो प्रतीत नहीं होती कि किस प्रकार वह संसारकी रक्षा करती हैं परन्तु जब भिन्न भिन्न रंग की बोतलों में जल अथवा तेल भर कर सूर्य किरण चिकित्सक वैद्य सूर्यके सम्मुख एक लकड़ी के तख्ते पर बिधि से रखते हैं तब वह बोतलें अपने ही रंग की किरणोंको ग्रहण करती हैं उस क्रियासे बोतलके जल अथवा तेलमें एक विचित्र रोगनाशक गुण पैदा हो जाता है। भिन्न भिन्न रोगों में भिन्न भिन्न रंग की बोतलसे बने जल अथवा तेल का प्रयोग कराकर रोगको दूर करते हैं। ठीक उसी प्रकार यज्ञाग्निमें रूप रंग औषधियोंके अनुसार उत्पन्न होते हैं और रस गन्ध, शब्द भी। सोम पदार्थों का सम्बन्ध क्रोध और लोभके साथ है। कुत्ता लोभी और क्रोधी होता है। कुत्ते को सोम पदार्थ नहीं भाते या नहीं पचते या नहीं खा सकते जो लोभ और क्रोधको शान्त करने वाले होते हैं। हां!

कुत्ता केवल वही पदार्थ खा सकता है जो प्राण मय, अन्नमय कोषसे सम्बन्ध रखते हैं, वह भी चुराकर अथवा जो बेकार (व्यर्थ) समझे जाकर दिए जावें। ऐसे ही मनुष्य जो लोभी, लालची, प्रतिज्ञा भंग करने वाला है

वह सोम रसपान अथवा सोमयज्ञ नहीं कर सकता । उसके भाग्य में नहीं होता ।

मधु, घृत, दुग्ध, जल सोम पदार्थ हैं जिनमें अमृत रहता है, घृत मधुका सम्बन्ध विज्ञानमय कोष से है । जल दुग्ध का सम्बन्ध अन्नमय, प्राणमय कोष से है । कुत्तेको घृत नहीं पचता, मधुको सूंघकर हट जाता है । ऐसे ही मनोमय कोष से जिन सोम पदार्थों या सुगन्धित पदार्थों का सम्बन्ध होगा वह काम और मोह से सम्बन्ध रखते हैं ।

मधुकी आहुति देने पर, धारा बहाने से जब गोल छत्ते के समान गोलाकार अग्नि से प्रतीत हो और उसमें मधु छत्तेके समान छिद्र अथथा कोष्टक प्रतीत हों तब समझो विज्ञानमय कोषका विकास हो रहा है और सहस्रारदल चक्र में प्रवेश हो रहा है । ब्रह्म रस की प्राप्ति है ।

साम मन्त्र ३१

रंगोंका प्रभाव

यज्ञ कुण्ड में अग्निके नाना रंगों पर दृष्टि एकाग्र करने से चित्तवृत्तियों-वासनाओं पर प्रभाव पड़ता है । कुवृत्तियां, कुवासनाएं दूर हो जाती हैं । रंगों में चित्त के आकर्षण करनेकी शक्ति स्वाभाविक है । बच्चा जब किसी रंगावली वस्तुको देखता है तत्काल वह आकर्षित

हो जाता है। ज्ञानी, ध्यानी, कर्मकाण्डी मनुष्य को अपना अपना रंग आकर्षित करते हैं। वीर योद्धाओंको अपना रंग प्यारा लगता है। गर्भवती स्त्रीके लिए वैद्य कहते हैं कि जिस प्रकारका बालक उत्पन्न करने की इच्छा हो, उस प्रकार के रंग से गृहको सजाया जावे। उस प्रकार के वस्त्र गृहस्थी पहना करे। यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ८८ रंगों से रक्षा की साक्षी देता है।

सूर्य रश्मि हरिकेशः पुरस्ता॒ सविता ज्योतिरुदयां अजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्तं सम्पश्यन् विश्वा भुवनानि गोपा॥

भावर्थ–जो यह सूर्य लोक है उसके प्रकाश में श्वेत और हरि रंग बिरंगी अनेक किरणें हैं जो सब लोकोंकी रक्षा करते हैं। इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है, यह जानने योग्य है।

इसी विषय में 'अखण्ड ज्योति' मथुरा का मासिक पत्र अगस्त १९५८ का एक लेख निकला है।

किस किस पदार्थसे निकले रंग किस किस वृत्तिको बदल देते हैं?

जटामांसी, माश, तिल की आहुति से जो रंग पैदा होते हैं वह काम वासनाओंको बदलते हैं।

चावल, जौ—क्रोध की वृत्तियोंको और मूंग और छोटे अन्न लोभ वृत्तिको बदलते हैं।

जो औषधियाँ जिस रोगके दूर करने में प्रयुक्त होती हैं, उनके जलाने से सूक्ष्म रूप होकर वह उन रोगों को दूर करती हैं और जिन कारणोंसे वह रोग उत्पन्न होता है, उस आध्यात्मिक कारण (वासना) को वह बदल देता है। एक औषधि राजयक्ष्माको दूर करती है, यह रोग क्रोध से उत्पन्न होता हैं तो औषधिके जलाने से जो रंग पैदा होगा वह क्रोध वृत्तिको बदल कर शान्त करके दया में बदल देगा।

रंगोंका प्रभाव

रंगोंका प्रभाव मनुष्य और स्वास्थ्य पर पड़ता है। यह बात प्राचीन काल से ज्ञात है। यही कारण है कि हमारे यहां सदा से शुभ कार्यों में लाल और पीले रंगों का प्रयोग किया जाता है। नीले तथा काले रंगोंको अशुभ माना जाता है। पहननेके वस्त्रों में भी देश कालका ध्यान रखने से स्वास्थ्य रक्षा में सहायता मिलती है।

गरम प्रदेशों में श्वेत रंगोंका वस्त्र लाभदायक होता है और ठन्डे देशों में लाल अथवा काला अच्छा समझा जाता है। परन्तु श्वेत रंग में एक सबसे बड़ा गुण यह है कि यह सूर्यकी धूप में से एक शक्ति वर्धक अंशको ग्रहण

करके उससे शरीर को लाभ पहुँचाता है। शरद ऋतु में यदि भीतर का वस्त्र रंगीन हो तो वह शरीर की गरमी को शरीर से बाहर निकलने से रोकता है और इस प्रकार शरीर को शीत से बचाता है। ऊपरी वस्त्र यदि कुछ कालिमा लिए हुए होतो वह सूर्य की किरणों को सोख लेगा और उनको शरीर में प्रवेश नहीं करने देगा। इससे शरीर सूर्यताप से उत्पन्न होने वाले कई विकारों से बच जायगा। अति उष्ण देशों में सूर्यताप की अधिकता से धूप से कारबन इतना निकलता है कि लोगों की त्वचा उसे बहुत सोख लेती है जिससे वह काली पड़ जाती है।

लाल रंग गरम माना गया है और इसका प्रभाव पैरों पर बहुत लाभदायक होता है। पहनने का भीतरी वस्त्र यदि लाल रंगका हो तो शरीरकी सुस्ती (आलस्य) को दूर करके काफी स्फूर्ति दे सकता है पाण्डु वर्ण वाले को भी यदि वह नरवस (Nervous घबराने वाला) न हो तो लाल रंगका वस्त्र बहुत हितकारी सिद्ध होता है परन्तु सिर पर लाल वस्त्र का व्यवहार कदापि उचित नहीं इससे मस्तिष्क तथा आंखों को हानि पहुँचती है।

स्वयं वेद भगवान इसकी पुष्टि करता है—

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान्
र्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छि-
राय ॥ य० २४—११ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (वसन्ताय) वसन्त ऋतु में सुख
लिए (धूम्रान्) धुमैले पदार्थोंके (ग्रीष्माय) ग्रीष्म
तु में आनन्द के लिए (श्वेतान्) सफेद रंगके (वर्षाभ्य)
ऋतु में कार्य सिद्धिके लिए (कृष्णान्) काले रंगके वा
ी की सिद्धि करने वाले (शरदे) शरद ऋतु में सुख
लिए (अरुणान्) लाल रंगके (हेमन्ताय) हेमन्तऋतु में
र्य साधनेके लिए (पृषतः) मोटे और (शिशिराय)
शिर ऋतु सम्बन्धी व्यवहार साधनेके लिए (पिशङ्गान्)
लामी लिए हुए पीले पदार्थों को (आ लभते) अच्छे
ार पाप्त होते हैं वह निरन्तर सुखी होता है।

भावार्थ---मनुष्यों को जिस ऋतु में जो पदार्थ इकट्ठे
ने वा सेवने योग्य हों उनको इकट्ठे और उनका सेवन
नीरोग होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सिद्ध करने
व्यवहारों का आचरण करें।

जिन लोगों के स्वस्थ शरीर में लाल रंग खूबभरा है,
यदि लाल रंग का वस्त्र काम में लावें तो लाभके स्थान
हानि की अधिक संभावना है। यदि हृदय उत्तेजित हो

अथवा हृदय धड़कन का रोग हो तो भी लाल रंगका वस्त्र भीतर धारण करने के लिए प्रयोग में न लाना चाहिए। नीला अथवा हलका नीला रंग ठण्डा माना जाता है और पित्त के रोगों में उसका उपयोग बहुत लाभदायक माना गया है।

जिनकी त्वचा लाला गरम होकर उभर आती है तथा चर्म वाले को नीला वस्त्र ओढ़ना तथा पहिनना उत्तम होता है।

पीत वर्णके वस्त्र भीतर धारण करने (Nervous) स्नायु मण्डल को लाभ पहुँचता है जिनको कोष्टबद्ध की शिकायत रहती हो उनको पीत वस्त्र भीतर पहनना उत्तम माना गया है।

गरमीकी ऋतु में छोटे बालकों को दस्त लग जाते हैं। डाक्टरों की अथवा वैदिक चिकित्सा से वह अच्छे नहीं होते तो उस अवस्था में हलके नीले रंग की शीशी का पानी तुरन्त लाभ पहुंचाता है। गरमी के दस्तों में शिशु प्रायः बहुत रोया करते हैं, आकाशी रंग का जल बराबर देते रहने से बालक को अवश्य आराम होता है। दांत निकलनेके बाद बालकको ज्वर और दस्त हो जाते हैं। इसमें अकाशी रंग का जल अनुपम गुणकारी सिद्ध होता है। यदि शिशु का सिर बहुत गरम न हो तो ललाट और

सिर पर आकाशी रंग की बोतल का जल लगावें और उसे बिना पूंछे वायु से धीरे धीरे सूखने दें।

पीले रंग की बोतल का पानी उन बालकोंके लिए जिनको दस्त न होता हो, कोष्टबद्ध होती हो बहुत हितकारी है। यह जिगर को सुधारता और साफ शौच लाता है। इससे आलस्य दूर होकर चेतनता आती है। जब तक शौच साफ न आए, तब तक एक एक घण्टा बाद पीली बोतल का जल पिलाते जाना चाहिए।

रोग का मूल आध्यात्मिक शत्रु है।

प्रत्येक दुःख अथवा रोग जो मानव शरीर को लगता है उसकी निवृत्तिके लिये प्रभु देव ने औषधि बनाई है जो वैद्य लोग वर्तते हैं। परन्तु उस रोग अथवा दुःख का कारण कोइ न कोई पाप भूल अथवा ग़लती होती है "और वह पाप किसी न किसी आध्यात्मिक शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारके वश ही होता है।" और जैसे इन रंग बिरंगी बोतलों से रोग निवृत्त होता है, ऐसे ही आध्यात्मिक शत्रुओं की निवृत्ति या शान्ति भी इन उन रंगों से जो यज्ञ अग्नि से पैदा होते हैं उनमें एकाग्र वृत्ति से दृष्टि जमाने से होती है। चुनांचि उनके रंग निम्न प्रकार हैं :—

काम का रंग सफेद (श्वेत) क्रोध का लाल "लोभ का हरा मोहका पीला" और "अहंकारका नीला है।"

यज्ञाग्नि कैसे जलाएँ ?

यज्ञाग्नि सात्विक भावों से जलाई जाती है।

श्रद्धया अग्नि समिन्धते श्रद्धया दीयते हविः ॥

अर्थात् श्रद्धा से हवि प्रकाशित की जाती है और श्रद्धासे हवि अर्पण की जाती है। तो फिर उन हव्य पदार्थों से जो रंग उत्पन्न होते हैं। वह सात्विक वृत्ति पैदा करने वाले होते हैं- वह तामसिक, राजसिक पाप कराने वाले रंगों को जो वासनाओं में उत्पन्न होते हैं, उनको बदलकर सात्विक बना काम आदि की निवृत्ति करने वाले बन जाते हैं।

विलायतके डाक्टर गैटिस का कथन है कि एक व्यक्ति क्रोधित हो गया, वह उसके श्वासों को एक बोतल में बन्द करता गया, फिर उस बोतलमें देखा तो क्रोधके परमाणुओंका रंग लाल गुलाबी बन गया, उससे उसने एक शूकरनीपर इन्जंकशन किया तो शूकरनी तुरन्त मर गई। उनका कहना है कि एक घण्टाके क्रोधित श्वास यदि बोतलमें लिये जावें और फिर उनसे इन्जंकशन किया जावे तो २० आदमी मर जावेंगे। ऐसे ही दुःख, घृणा आदिके समय जो श्वास निकलते हैं उनमें इतनी विषैली रंगीन (भिन्न भिन्न प्रकारके रंगवाली) गैस होती है कि मनुष्यको बहुत हानि करती है।

छब्बीसवीं झांकी

दो मार्ग

सेठ—आध्यात्मिक मार्ग तो निवृत्तिका मार्ग है यज्ञ तो [प्र]वृत्ति सिखाता है।

प्रभु आश्रित—यही बात तो समझनेकी है। मानव [ज]ीवन यात्राके दो मार्ग हैं एक प्रवृत्ति मार्ग दूसरा [नि]वृत्ति मार्ग दोनों मार्ग स्वाभाविक हैं जो भौतिक रूप [मे]ं जन्म से चलते रहते हैं। ध्यान से सुनो :—

जीव कर्म फलसे प्रेरित होकर माताके गर्भमें आता [है]। गर्भमें बढ़ रहा है। माता प्रसन्न हो रही है, गर्भ बढ़ने [क]ी इच्छुक है। नौ मास बीते, अब उसे पीड़ा लगी और [च]ाहती है कि गर्भसे निवृत्ति हो। प्रसव हो गया। जहां [प]र प्रवृत्तिमें प्रसन्न थी उससे अधिक निवृत्तिमें प्रसन्न हो [र]ही है। बालक माताकी गोदीमें २४ घन्टे रहता है, [म]ाता भी उसे गोदीमें रख रख कर प्रसन्न होती है और [छ]ाती लगा प्रेमसे बार बार दूध पिलाती है। बालकने दान्त [न]िकाले, अब दूध बन्द कर देती है उससे अब निवृत्ति हो [ग]ई और अन्न-प्राशन संकार करा कर अधिक खुश प्रसन्न [हो] रही है। बालकमें शक्ति आने लगी। अब वह माता

की गोदीसे निवृत्त होना चाहता है। माता उसे भूमि पर बिठा देती है और वह लङ्गड़ा लङ्गड़ा कर चलने लगता है। माता बहुत प्रसन्न होती है और बालक भी प्रसन्न हो रहा है। सारे आंगनमें भ्रमण करता है। बड़ा हुआ अब लङ्गड़ा कर चलनेको छोड़ दिया और उठना और चलना सीखा। फिर उसको भी छोड़कर खेलनेके लिए बाहर दौड़ जाता है। अब खेलमें प्रसन्न हो रहा है। फिर खेल छोड़ विद्यालयमें पढ़ने चला जाता है। १८-२० वर्ष लगातार पढ़नेमें रत रहता है। अब परीक्षाओंसे निवृत्त होकर अधिक प्रसन्न हो रहा है। विद्यालय छोड़ देता है। फिर धनोपार्जनमें प्रवृत्त हो जाता है। धन कमाता है प्रसन्न होता है, ऐसे जीवन भर नैसर्गिक तौर पर प्रवृत्ति निवृत्तिका जीवन व्यतीत करते उसे आनन्द आता है और कोई कष्ट न प्रवृत्ति में जान पड़ता है और न निवृत्तिमें। ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्रमें प्रवृत्ति और निवृत्तिका साधन शिक्षा प्रद यज्ञ होम है। बड़े चाव से वेदी कुण्ड बनाता है। सामग्री, घृत, समिधा उत्तम उत्तम धन लगा कर जोड़ता और संभाल संभाल रखता है। यह प्रवृत्ति मार्ग है, बड़ा खुश हो रहा है कुण्डमें अग्नि जगाई और मन्त्र पढे। बड़ी श्रद्धासे सामग्री और घृत का चम्मच भरकर स्वाहा कहते हो भक्ति भावसे अग्निकी भेंट कर दी। निमग्न हो गया और बड़ा खुश हो रहा है। नित्य

ति यह क्रिया प्रवृत्ति और निवृत्तिको करता है। परन्तु
स भौतिक द्रव्य प्रवृत्तिसे आधिदैविक अवस्था दिव्य
गुणोंकी प्राप्ति तब होगी जब शिक्षा रूपमें बरतेगा। "प्रवृत्ति
तो सुख और बिना निवृत्ति शान्ति नहीं।" जीवन
यात्रा के लिए यह दोनों गुण चाहिएँ।

गीतामें भगवान् कृष्णने अध्याय ३, १६ श्लोकमें
कहा है :—

यज्ञार्थात् कर्मणो ऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः॥

अर्थात् यज्ञके बिना जितने भी कर्म हैं, वे सब बन्धन
के हेतु हैं।

सत्ताईसवीं झाँकी

रमन, दमन, शमन

आध्यात्मिक ज्योतिष

यज्ञका देवता इन्द्र है। यज्ञका तात्पर्य तीन प्रकार
का है :—

आधिभौतिक—अग्नि, जल, वायुकी शुद्धि—संसारके
कल्याणार्थ।

आधिदैविक---प्रायश्चित्त कर्म करके अन्तःकरणकी शुद्धि .

आध्यात्मिक---यज्ञकी सिद्धिसे इन्द्रका साक्षात् अथवा इन्द्र पदकी प्राप्ति ।

इन्द्र पदकी प्राप्ति कैसे हो ?

"इन्द्र बनने अथवा इन्द्रका दर्शन करनेके लिए पहिले तीन अवस्थाएं प्राप्त करनी पड़ेंगी ।" (१) अग्नि (२) सोम (३) प्रजापति तब इन्द्र पद प्राप्त होगा । इसलिए याजक प्रति दिन चार आधारा-वाज्याहुति देता है, ओ३म् अग्नये स्वाहा, ओ३म् सोमाय स्वाहा, ओ३म् प्रजापतये स्वाहा और ओ३म् इन्द्राय स्वाहा । (१) अग्नि-आगे आगे बढ़ना । बढ़ने के लिए त्याग की आवश्यकता है । पग आगे तब बढ़ता है जब पहलेका त्याग किया जाए । यहां आसक्ति और बुराइयोंका त्याग किया जाना अभीष्ट है । यह आहुति उत्तर में दी जाती है । उत्त और उत्तर, उत वह अवस्था है जहां पहिले खड़ा है । पाशविक अवस्था केवल भोग है । इसको त्याग कर ऊपर उठना यह उत्तर दिशा है । त्यागी और उन्नत मनुष्य को अहङ्कार हो जाता है और अहङ्कार अपने आपको क्रोधके रूपसे प्रगट करता है इसलिए दूसरी दशा अथवा अवस्था सोम-शान्ति की जरूरत है । यह आहुति दक्षिण दिशा में दी जाती है और दक्षिण दिशा सत्ता सम्मानकी दिशा है । अहंकार और

धनके दक्षिणा में दे देने से सबके लिए सन्मान के योग्य हो जाता है।

फिर जब उन्नत और शान्त होगा तो तीसरी दशा प्रजापतिकी प्राप्त करनी पड़ेगी। बिना प्रजा या मनके किसका पति अथवा स्वामी कहलाए। इन्द्रियां प्रजा हैं उनका पालक बाहर का प्रजापति तो इन्द्रियोंको विषयों में रमण कराता है, और अन्दरका प्रजापति बननेके लिए इन्द्रियोंको विषयों से दमन करानेकी आवश्यकता है जिससे मनका शमन होगा। इस शान्त चित्त या शान्त मन से ज्ञानकी उन्नति होगी और यही ज्ञान इन्द्रका दर्शन या प्राप्ति करायगा अथवा इन्द्र बनायेगा।

सेठ–यज्ञ कर्म करनेमें मुख्य कर्म आहुति देना है या वेद मन्त्र पढ़ना अथवा केवल श्रद्धा ही पर्याप्त है या किसकी विशेषता है :–

प्रभु आश्रित–यज्ञ करनेमें द्रव्यकी आहुति, वेद मन्त्रों के पाठ तथा श्रद्धा भावसे आहुति देने का जुदा जुदा फल और लाभ होता है:---

(१) अग्निमें आहुति देनेसे जड़ देवताओंकी पूजा कहलाती है।

(२) वेद मन्त्रोंका अर्थ जान कर आहुति छोड़नेसे

ऋषि पूजा कहलाती है। वेद मन्त्रोंका पाठ हमारे चित्तमें अपने पूर्वजोंके प्रति श्रद्धाका प्रकाश है।

(३) भावुक हृदयसे आहुति छोड़ना यह भगवान्‌की पूजा और उपासना है।

(४) आहुतिसे कर्मेन्द्रियाँ, अर्थ जाननेसे ज्ञानेन्द्रियां और भावसे हृदय शुद्ध होता है।

भाव कैसा हो ?

भाव पूजाका हो तो फिर स्थान भी बड़ा स्वच्छ, सुन्दर और रमणीक बनाया जाता है क्योंकि दुर्गन्धित स्थानों पर जहां भौतिक क्षुद्र विषैले जन्तु जमा रहते हैं वहां ऐसे स्थानों पर दैविक रूपसे काम और क्रोध आदिके नीच परमाणु भी जमा रहते हैं। दुर्गन्धित स्थानों पर रहनेसे दो प्रकार की वासनाएँ अधिक जागती हैं जहाँ टट्टी (शौच) जैसी दुर्गन्ध होती है वहां कामकी वासना और जहाँ चर्म, माँसकी सी दुर्गन्ध हो वहां क्रोध के परमाणु पैदा होते हैं।

यज्ञ हवनमें आध्यात्मिक ज्योतिष

सेठ---कभी हवनकी अग्नि जलाने प्रचण्ड करनेमें बड़ी कठिनाई हो जाती है, कभी बुझ (शान्त हो) जाती है, कभी धुआं हो जाता है, कभी प्रचण्ड ही नहीं होती।

प्रभु आश्रित---(१) जब साधक हवन करते समय हर प्रकारसे सावधान हो और सब सामग्री समिधा वस्तु आदि ठीक ठीक हों फिर भी अग्निमें यदि मन्दता बार बार रहे और समिधाको हेर फेर करनी पड़े, प्रचण्ड होनेमें न आए तो समझो अहंकार अभिमान वृत्ति उपस्थित यज्ञ कर्त्ताओंमें उपज रही होगी।

(२) जब अग्नि धूआं करने लग जाए और उपस्थित याजकोंकी आंखोंमें धूम्रसे कष्ट हो तो मानो क्रोध, द्वेश, ईर्ष्याकी तरंगे उपज रही हैं।

(३) जब अग्निसे समिधांए कड़कड़ अथवा तिड़ तिड़ करें तो काम वृत्ति उपज रही जानो।

(४) जब चिङ्गारियाँ उड़ उड़ कर वस्त्रोंमें पड़ने लगें तो लोभ वृत्ति जग रही समझो।

(५) और जब अग्नि समिधाओंमें प्रवेश हो न करे तो मोह वृत्ति ग्रस्त समझना चाहिए।

वेद भगवान् साक्षी देता हैः---

ओ३म् अन्ति चित् सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः। नोप वेषि जात वेदः॥ ऋ० ८--११--४

भावार्थ--हे समस्त पदार्थोंको जानने वाले प्रभो! पापी पुरुषके अति समीप विद्यमान यज्ञको प्राप्त नहीं होता, स्वीकार नहीं करता। तू शत्रुताके भावको रखने वाले

मनुष्यको यज्ञ पूजा और भावके दानको स्वीकार नहीं करता।

इसलिए अपवित्रताके कारण यज्ञकी अग्नि शान्त हो जाती है।

वह अपवित्रता क्या है ?

जब प्रमाद किया जाए समिधा, सामग्री, घृत डालने में। प्रमाद तब होता है जब मन दूसरे विषयोंके चिन्तनमें लग जाए। यही कारण आत्माग्निके बुझनेका समझना चाहिए। जो याजक अखण्ड अग्नि रखते हैं उनकी अग्नियां भी कभी कभी बुझ जाती हैं, हालाँकि उनमें कोई प्रमाद नहीं होता। बहुत सावधान रहते हैं। घृत, सामग्री, समिधा ठीक प्रकार से दी जाती हुई होती हैं। सायंकाल का यज्ञ करके पूरी सावधानी से पूर्ववत अग्नि दबाकर सोते हैं, प्रातः बिल्कुल नहीं होती, भस्म पड़ी होती है अथवा कोयले। उसके कारण यह हैं:-

(१) कभी कोई रजस्वला स्त्री मासिकधर्मके समय वहां आ जावे और यज्ञमें उसकी दृष्टि पड़ जाती है या उसका स्पर्श हो जाता है।

अथवा

(२) यज्ञ करने वाले अपने किसी वयोवृद्ध पूज्य देवका निरादर, अपमान अथवा कलह किए हुए होता है।

आचार्य सत्य भूषण जी वानप्रस्थी ने बतायाकि एक सज्जन का पटनासे पत्र आया है कि मैने गायत्रीका अनुष्ठान सवा लाखका किया जब १२५ आहुति देनेके लिए दीपक और अग्निकुंड जलाया और आहुतियां देता रहा। अग्नि बहुत प्रज्वलित प्रचण्ड थी। बीचमें मुझे अपने एक शत्रुके प्रति अनिष्ट चिन्तन मन में होने लगा और मैं आहुति देता रहा तो क्या देखाकि सहसा अग्नि और दीपक दोनों बुझ गए। इस प्रकारके कई एकके साथ यज्ञोंमें अग्नि बुझ जाती रही, कारण कोई न कोई उपरोक्त देखा गया।

ऋतुमति स्त्री एकान्तमें रहे। किसीसे उन दिनोंमें मेल जोल न करे। यह समय उसके अन्तर्मुख होने और नाना ज्ञान अनुभव करनेका होता है। जैसे ब्रह्माण्डमें ऋतु ऋतुका अपना प्रभाव होता है। किसी ऋतुमें भूमि तय्यारकी जाती है किसी ऋतुमें बीज वपन किया जाता है, किसी ऋतुमें फूल लगता है, किसी ऋतुमें फल लगता है, किसी ऋतुमें नाश होता है। ऐसे ऋतुमति स्त्रीका रक्त जो अति उष्ण होता है उससे सर्व आसुरी तमोगुणी भाव बहार निकलते दूर जाते हैं और उसकी दृष्टिमें एक शक्ति आने लगती है। कैसे ही कोई पुण्यात्मा देवी क्यों न हो उसके ऋतु दर्शनमें पापके परमाणु बहार निकलते हैं। जो उसके संगमें जावेगा उस पर उसका प्रभाव पड़ेगा। अहंकारके कारण ऐसी देवियां संसर्ग बनाए रखती हैं अथवा

अज्ञानके कारण। जो अहंकारके कारण खुली फिरती हैं, काम करती हैं उनके दोष अहंकारके और बढ़ जाते हैं और आसुरी अवगुण अन्दर अन्दर रह जाते हैं।

अज्ञानके कारण जो अवहेलना करती हैं उनमें शारीरिक रोग और मूढ़ता बढ़ती है।

कन्या एक घरमें उत्पन्न होती है, दूसरे घरमें जाकर फलती फूलती है। विवाह संस्कारमें लाजा होम उसके बढ़नेके भावसे किया जाता है कि बढ़ती फलती फूलती रहे। जब वह ऋतुमति पुष्पवति होती है इसलिए रजस्वला के दिनोंमें स्त्रियों का जो रक्तस्राव मासिक धर्म होता है। सारे तमोगुणी परमाणुओंको प्रभुदेव इसलिए निकालते हैं कि उनमें सतोगुणी प्रकाशके और रजोगुणी उपकार दानके परमाणु रहकर तमोगुणी निकल जावें। गर्भ धारण करनेके लिए देवी दिव्य गुण सम्पन्न रहे। जो पौधें वृक्षके बीज जखीरा (Nurser) में लगाए जाते हैं और अन्यत्र लेकर बोए जाते हैं यदि उनको रजस्वला स्त्रियाँ बो दें तो वह नहीं उगते अथवा जब उन पौधों या वृक्षोंको पुष्प हुए हों, यदि किसी रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ जाए तो उनके पुष्प मुरझा जाते हैं, फिर उनको फल नहीं लगता। यह क्या लीला है प्रभु देव की।

इसी रजस्वला स्त्रीकी नेत्र शक्ति विचित्र प्रभु देवने

भर दी है। अथर्व वेद काण्ड ५, सूक्त १३ मन्त्र ४ में आया कि:—

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहो म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वा विषम्॥

भावार्थ—हे तक्षक नाग! आँखके बलसे तेरी आँखकी शक्तिका नाश करता हूँ और विषके बल तेरे विषको भी विनष्ट करता हूँ। हे (अहे) सर्प! (म्रियस्व) तू मर जा, (मा जीवीः) अब तू जीता नहीं रह सकता। (विषम् प्रत्यग् अभि एतु) यह विष फिर लौटकर तेरे पास ही आ जावे।

सेठ—भगवान्! यज्ञ तो विलक्षण कृत्य है परन्तु यह समझ नहीं आती कि हम नित्य हवन भी करते हैं, हमें तो कोई सफलता का चिन्ह दिखाई भी नहीं दीखता। ऐसे अनेकों व्यक्ति मेरी आँखोंके सामने इस समय आ रहे हैं जो यज्ञ भी करते हैं और दुखी भी रहते हैं। कृपया इस बातको स्पष्ट कीजिए।

———

अट्ठाईसवीं झाँकी
असफलता का कारण

प्रभु आश्रित—यज्ञ नित्य कर्म मनुष्यके जीवनमें परि-

वर्तन करता है। दिव्य जीवन बनाता है परन्तु वर्तमान काल में उलटा देखा जाता है; कारण:-

(१) कृपणतासे किये हवनका प्रभाव पृथ्वी तक ही रहता है वह स्वः लोक तक भी नहीं जाता। कृपणता यज्ञ में बाधक है। सामर्थ रखते हुए भी घृत सामग्रीमें कृपणता करना, कम लगाना।

(२) शुद्ध घृत, शुद्ध सामग्री महंगी पड़ती है इसलिए सस्ते मिलावटी घीसे यज्ञ करना, समिधा कम लगाना, चन्दन आदि की मूल्यवान समिधासे बचना।

(३) ईर्ष्या और द्वेष घातक है। हवन करते समय मन्त्र पढ़ रहा है अथवा सुन रहा है परन्तु भीतर-भीतर ईर्ष्या द्वेषकी वृत्तियां उपज रही हैं तब उसका प्रभाव तत्काल नष्ट हो जाता है।

(४) अथवा किसी विपरीत कामनाका विचार आहुति देते समय आ जाए तो वह फलसे वंचित कर देता है इस लिए नित्य कर्म करने वालों का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होने पाता और पूर्ण सुख इस लोकका भी उनको नहीं मिलता। क्रोध ईर्ष्या द्वेषसे पैदा होने वाले दिव्य परमाणु नष्ट हो जानेसे बुद्धि दिव्य भाव रहित हो जाती है। लोभ और कृपणताके कारण हवनसे पैदा होने वाले दिव्य परमाणु

भ्रष्ट भाव बुद्धिमें प्रवेश कर जाते हैं। काम और दिखावा के कारण हवनसे पैदा होने वाले दिव्य भाव बुद्धिमें प्रवेश नहीं करते।

यज्ञसे दिव्य गुणोंकी प्राप्ति कैसे ?

देवान् यज्ञेन बोधय।

संगसे संगीके गुण अवगुण शीघ्र प्रभाव डालते हैं। हमारे लोकोक्ति है कालेके साथ गोरा बैठे रंग न बदलेगा, स्वभाव अवश्य बदलेगा। जंगलोंमें पशु चराने वाले लोगों में, खेती करने वाले साधारण कृषकोंमें, वैसे असभ्यता और जड़ताके गुण प्रभाव डालते हैं। दिव्य गुणों की नींव श्रद्धा है। और श्रद्धाके बढ़ाने तथा फैलाने वाले गुण नम्रता, उदारता, पवित्रता सहिष्णुता फल सत्यता है। यह सब बढ़ाने और फैलाने वाले गुण देवताओंमें ही प्रभु ने रखे हैं किसी पशु पक्षी अथवा मनुष्य जातिमें नही हैं। सूर्य, चन्द्रमा नक्षत्र आदि देवता इतनी ऊंचाई पर होते हुए भी अपनी किरणों को झुका कर अपना प्रकाश पृथ्वीके प्राणियों व जीवों तक पहुँचाते हैं, जल आकाशसे बरसता है पृथ्वी पर नीचा होकर आता है और हरियावल तथा सब उपजाऊ कराता है, पवन देवता भी हमारे चरणों

तक, पृथ्वी तक आकर स्पर्श करता है, सुतराम यह नम्रता का गुण देवताओंमें है और फिर उदारता प्राणीमात्रके लिए सम–बिना देवताओंके किसीमें नहीं मानव वितरण में न्यून अधिक करेगा। परन्तु देवता अपना अतुल भंडार खोल देते हैं उसमेंसे जितना कोई चाहे ले ले और पवित्रता भी देवताओंका गुण है सबको सब देवता ही पवित्र करते हैं किसी और जीव या योनिमें शक्ति नहीं। तप और सहन शक्तिकी नकल भी इन्हीं देवताओंकी ही की जाती है ! यह अपने गुणोंको यर्थाथ प्रकट करते हैं। इन गुणों को धारण करनेसे ही मनुष्यमें सत्यता आती है इसलिए यज्ञ करने वालोंको देवताओंके गुण प्राप्त होते हैं।

यज्ञकी सफलता

श्रद्धा इस यज्ञ का बीज है जो अपने अनुकूल सजातीय परमाणुओंको खींचता है। वेद ने कहा--

श्रद्धया अग्नि समिध्यते श्रद्धया दीयते हविः।

श्रद्धासे अग्नि प्रज्वलितकी जाती है श्रद्धासे हवि दी जाती है। यज्ञके दो पर हैं एक तप दूसरा त्याग, तब यह उड़कर आकाशमें अर्थात् अपने अपने परम धामको पहुंचा देता है।

परमेण धाम्ना दृंहस्व।

यज्ञ परमधाम परमेश्वरसे आया है।

तप क्या है ?

शारीरिक सुख दुःख, मानसिक मान अपमान बौद्धिक हानि लाभ, सहन करनेका नाम तप है। इनको सहन करके यज्ञके लिए यज्ञ भावना रहे--यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ॥ यजु० ॥ त्याग किसका करें कृपणता कठोरताका, अहंकार और स्वार्थका और आसक्तिका। यज्ञके तीन पदार्थ काष्ठ, घी, सामग्री हमको तथा याजक को शिक्षा देते हैं।

काष्ठमें कठोरता और अकड़पन है, सामग्री के भिन्न-भिन्न प्रकारके पदार्थोंके वैर विरोधको कूट पीटकर सम कर दिया और घृतमें स्निग्धता अर्थात् आसक्ति को, इन सबको जब यज्ञ अग्निमें अर्पण कर दियां तो यह सब समाप्त हो गई। इसलिए जब कठोरता और अहंकार, वैर, और स्वार्थका त्याग किया जाता है तब यज्ञ अन्तःकरण की शुद्धि करता हुआ प्रभु दर्शनके योग्य बना देता है।

उन्तीसवीं झाँकी

यज्ञ से योग की प्राप्ति

यज्ञसे योगकी प्राप्ति अपने आप होती है कैसे ?

यज्ञकी भावनासे यज्ञ करो ! छोटों पर दया करो ! वह अपने आप आपके बन जावेंगे और आपको सहयोग

देंगे....बड़ोंको अर्पण करो झुको वह अपने आप तुम पर दया करेंगे आपको सहयोग देंगे....बराबर वालोंसे प्रेम करो मिल जाओ वह अपने आप तुमसे एक हो जावेंगे !

व्यक्तिगत त्याग

बड़ोंके आगे अहंकारका त्याग, छोटोंके लिए घृणाका त्याग, बराबर वालोंके लिए ईर्ष्या कटोरता वैर द्वेषका त्याग, संसारके पदार्थों वस्तुओं और विषयोंमें आसक्तिका त्याग–यह यज्ञ भावनाएं योगको प्राप्त कराती हैं और योगसे आत्मा, परमात्मा और प्रकृतिका ज्ञान होता है यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र १ के भावमें किसी विद्वान्ने लिखा है यज्ञकी हविसे अन्नमय कोष, समिधासे प्राणमय कोष, अग्निकी प्रचण्डतासे मनोमय कोष और अग्नि संयोजक और विभाजक शक्तिसे विज्ञानमय कोष शुद्ध हो जाता है और परिणाम आनन्द आह्लादसे रंगोंके दर्शनोंसे प्रभावित होकर आनन्दमय कोष शुद्ध हो जाता है।

अन्तःकरणको शुद्ध करनेका साधन यज्ञ–

यज्ञ निष्काम कर्म है। वह निष्काम कर्म शुद्ध करता है जिसमें यज्ञ भावनाका हृदय हो, आज्ञाका पालन और सहयोग हो। आज्ञाका पालन देव पूजा है। क्योंकि आज्ञा तो अपनेसे बड़ा दे सकता है। परमात्मा, वेद, धर्म शास्त्रों

की आज्ञा, नेता, देवकी आज्ञा जिसमें देश, जाति और संसारका कल्याण हो।

सहयोग–यह संगतिकरण है दूसरे कल्याणकारी कर्म करने वालोंका सहयोग देना, उनके प्रति ईर्ष्या न करना, उनका विरोध न करना, तन, मन, धन और ज्ञानसे, विचारोंसे सहयोग देना।

यह दोनों कार्य बिना त्यागके नहीं हो सकते यज्ञके दोनों पांव तप और त्याग हैं।

आज्ञा पालनमें अहंकारका त्याग, सहयोगमें स्वार्थका त्याग–यह यज्ञकी भावना कहलाती है।

त्यागकी पूर्ति तपसे होती है।

—o—

तीसवीं झाँकी

यज्ञ का फल

इन्द्रकी प्रसन्नता

ऐसे उपरोक्त प्रकारसे यज्ञ करने वाले याजकको तीन प्रकारका फल मिलता है:–आधि-भौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक। कर्मकाण्डी याजक पर जब इन्द्रकी प्रसन्नता होती है तो याजकको भौतिक ऐश्वर्य गौवोंके रूपमें प्रदान

करता है। वह गौवें साधारण गौवें नहीं होतीं, बहुत दुग्ध देने वाली, दर्शनीय आकृतिकी गौवें कपिला, लाल और काली। उन गौवोंकी सेवा भृत्य नहीं करते अपितु स्वामी याजक स्वयं उनकी ऐसी सुधि लेते हैं जैसे स्वगृहके अपने परिवार, सन्तानकी लेते हैं। उत्तम से उत्तम घास, चारा, स्वच्छ शुद्ध जल, सुन्दर रमणीक स्थानमें निवास कराता है। ऐसी गौवें याजक साधकको ब्रह्म तेज प्राप्त कराती हैं।

आध्यात्मिक रूपमें इन्द्रकी प्रसन्नताका फल सब इन्द्रियोंका दमन, मनका शमन, इन्द्रका साक्षात् करना होता है।

आधिदैविक रूपमें इन्द्रकी प्रसन्नताका फल शासन शक्ति, नेतृत्वका हाथ और वाणीमें बल, प्राप्त होता है। यजुर्वेद अध्याय १, मन्त्र २ में इस फलको विस्तारसे वर्णन किया है---

ओ३म् वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि
मातारिश्वनो धर्मोसि विश्वधा असि।

परमेण धाम्ना दृꣳहस्व माह्वार्मा ते यज्ञ पतिर्ह्वार्षीत्॥

पदार्थ---हे विद्यायुक्त मनुष्य तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्रं) शुद्धिका हेतु (असि) है (द्यौः) जो विज्ञानके प्रकाशका हेतु है और सूर्यकी किरणोंमें स्थिर होने वाला

(असि) है जो (पृथिवी) वायुके साथ देश देशान्तरमें फैलने वाला (असि) है जो (मातरिश्वा) वायुको (धर्मः) शुद्ध करने वाला (असि) है तथा जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (दृँहस्व) सुखका बढ़ाने वाला है इस यज्ञका [मा] मत [ह्वा] त्यागकर तथा [ते] तेरा [यज्ञ-पतिः] यज्ञकी रक्षा करने वाला यजमान भी इसको [मा] न [ह्वाषीत्] त्यागे।

भावार्थ--मनुष्य लोग अपनी विद्या और उत्तम क्रिया से जिस यज्ञका सेवन करते हैं उससे (१) पवित्रताका प्रकाश, (२) पृथ्वीका राज्य [६] वायु रूपी प्राणके तुल्य राज-नीति [४] प्रताप [५] सबकी रक्षा [३] इस लोक और परलोकमें सुखकी वृद्धि [७] परस्पर कोमलता से वर्तना [८] कुटिलताका त्याग इत्यादि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते हैं इसलिए सब मनुष्योंको परोपकार तथा अपने सुखके लिए विद्या और पुरुषार्थके साथ प्रीति पूर्वक यज्ञका अनुष्ठान नित्य करना चाहिए।

सेठ--सनातन धर्मी लोग जब मन्त्र पढ़ते हैं तो सिवाय आरम्भ वाले मन्त्रके और मन्त्रोंके साथ 'ओ३म्' नहीं लगाते और कई अन्तमें भी ओ३म् लगा कर स्वाहा करते हैं, यह भेद क्यों है?

प्रभु आश्रित--यज्ञ हवन अग्निमें किया जाता है।

अग्निमें भी गौण रूपसे परमात्माके गुण 'भूर्भुवः स्वः' जगत् के जीवन हेतु प्राण, मल नरक भुवः सुख वर्धक तेज प्रसारक स्वः विद्यमान है। इसलिए अग्नि-होत्रमें मनुष्य मन्त्रके साथ 'ओ३म्' पहिले कहता है। उसका अर्थ है कि परमात्मा की साक्षीमें वह यह कार्य कर रहा है जिसकी पुष्टि वह 'स्वाहा' से करता है कि जो कहा सो ठीक कहा और वैसे ही ठीक किया। इसलिए आरंभमें ओ३म् बोलना ही चाहिए प्रत्येक मन्त्रके साथ मनु भगवान्ने लिखा है कि जो मन्त्रके आदिमें ओ३म् नहीं लगाता उसका सिर कट जाता है और जो अन्तमें ओ३म् नहीं लगाता वह अपूर्ण रह जाता है।

परन्तु यह याद रखो कि पाँच प्रकारके यज्ञोंमें उनके लिए स्वाहाके अर्थोंके अपने अपने शब्द शास्त्रकारोंने नियत किए हैं:—

ब्रह्म यज्ञमें ओ३म् अन्तमें लगाना चाहिए और देवयज्ञ में स्वाहा अन्त में, पितृ यज्ञमें स्वधा, बलि वैश्व देव यज्ञमें 'नमः' और अतिथि यज्ञमें 'वषट्' लगाना चाहिए। इन पाँचोंका एक ही अर्थ है। इसलिए हवन यज्ञमें स्वाहा ही कहना पर्याप्त है।

सेठ--मन्त्रोंमें देवताका सम्बन्धः उनके आवाहनका

क्या अभिप्राय है और आवाहन कैसे किया जाता है। क्या मन्त्र पढ़नेसे आवाहन हो जाता है या देवताओंका पृथ्वी पर स्थापन व पूजन करनेसे आवाहन हो जाता है और उनसे सम्बन्ध बन जाता है।

प्रभु आश्रित---जिस कार्यको आरंभ करना हो उस की निश्चित सफलता तब होती है जब कार्यके देवता और जिस इन्द्रियसे करना हो उसके देवताका पारस्परिक मेल करा दिया जाए, देवता देवताको शीघ्र आकर्षित कर लेते हैं। उनका ऐसा सम्बन्ध प्रभु देव ने बनाया है। वायुयान सदा वहां ही उतरता है जहां वायुयानका अड्डा बना हो। बिना हवाई अड्डेके कहीं नही उतरेगा। जिस देवताको अपने अन्दर बुलाना हो उसके गुण, कर्म, स्वभावको अपने अन्दर धारण कर लिया जावे तो देवता स्वयं वहां आ विराजेगा। जैसे वायुयान वाय्वी अड्डे पर उतरता है। मानों हम देवयज्ञ करने लगे हैं, यज्ञकी पूर्ण सफलता तब होगी जब यज्ञका देवता इन्द्र प्रसन्न होगा।

हम हाथोंसे यज्ञ करते हैं, हाथका देवता इन्द्र है। इन्द्र ही सब ऐश्वर्य का दाता है और हाथ भी इन्द्र बनकर यज्ञकी भेंट इन्द्र के गुण, कर्म, स्वभावसे करें।

अब प्रश्न होगा कि देवताओंका कैसे पता चले। कौन से कार्यका कौन देवता है ?

उत्तर---जितने भी कार्य संसार में हैं वह दो प्रकार में विभक्त हैं, एक इष्ट और दूसरा पूर्त्त । इष्टका सम्बन्ध आत्मासे है-और पूर्त्तका शरीरसे, संसारसे । सांसारिक कार्य अथवा परलोक सम्बन्धी कार्य किसी न किसी इन्द्रिय से सम्पन्न होगा, उनके देवता को जानना चाहिए ।

उदाहरण---एक व्यक्ति विद्या अभ्यास, वेद पाठ या वेद प्रचार करना चाहता है तो यह कार्य होगा वाणीसे। वाणीका देवता सरस्वती है । विद्याका देवता भी सरस्वती है तो सरस्वतीके गुण कर्म स्वभाव वाणीमें आजावें तब यह कार्य सफल होगा ।

व्यवहार कार्यमें जैसे कोई व्यक्ति ठेका लेता है और राजकीय कार्य राज मार्ग, पुल, सराय, भवन आदिका कार्य करता है वह कार्य सार्वजनिक लाभके लिए है। उसका देवता प्रजापति है । प्रजापतिके गुण, कर्म स्वभाव हृदयमें धारण करनेसे वह कार्य सफल होगा ।

एक व्यक्ति शिल्पालय लगाता है, व्यापार व्यवहार करता है अपने लाभके लिए । यह कार्य धन प्राप्तिके लिए है और धनसे ही काम होगा । धनका देवता भी प्रजापति है । बाण उसका अग्नि है । अग्निके गुण कर्म स्वभाव धारण करनेसे वह कार्य सफल होगा । सुतराम कोई भी कार्य हो उसके देवताकी पूजाका अर्थ है दूसरेको हानि न हो।

इतनी त्यागवृत्ति अवश्य रहे। इसमें यज्ञ लाभ अर्थात् दूसरेको पहले हो और अपनेको पीछे।

अब आवाहन देवताओंका कैसे करें? जब वायु बन्द है पत्ता तक नहीं हिलता। वायुके मन्त्र पढ़ने या बुलाने से वायु नहीं आयगी, हां पखां चला दिया जाए तब सब जगहसे वायु अपने आप आने लग जावे। ऐसे ही देवताओं का आवाहन किया जाता है आचरणसे। शरीर बना है पांच तत्वोंका, इसलिए उन सबके गुण शरीरमें दिखाई देते हैं। पृथ्वीका गन्ध जलका रस, अग्निका रूप, वायुका स्पर्श, आकाश शब्द। परन्तु मन इनसे सूक्ष्म है। न उस में गन्ध है न रस, न रूप है, न स्पर्श और न शब्द है। फिर यह मन किसका बना है? जिससे बना है वही उसका देवता है। उसके मिलापसे मन वशमें आवेगा। मनको जाना जावेगा, जो जिसका देवता है उसके अर्पण करने पर। वह सब जगह पहुँचा रहा है। जैसे सामग्री, घृत काष्ठ समिधा पृथिवीसे उत्पन्न हुए, यदि पृथिवीके अर्पण कर दें और सब मिट्टीमें मिल जावें तो किसीको लाभ न होगा। यदि उसके देवता अग्निके भेंट कर दें तो जहां जहां जिस जिस पदार्थमें अग्नि है वहां वहां उस उसमें वह आहुति पहुँच जावेगी। पृथ्वीका देवता अग्नि है इसलिए कहा,

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा–इदमग्नये इदन्नमम ॥
ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा–इदम्वायवे इदन्नमम ॥
ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा–इदमादित्याय इदन्नमम ॥
ओ३म् भूर्भुवः स्वराग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा–
इदमग्निवायवादित्येभ्यः इदन्नमम ।

प्रश्न--मनुष्य यज्ञ क्यों करे ? इसके लिए क्यों इतना आवश्यक माना गया ?

उत्तर---मानव प्रजापति कहलाता है । परमेश्वरकी पूरी नकल अपनी सामर्थ्यानुसार मानव ही कर सकता हैं । परमेश्वर नित्य पांच यज्ञ करता है । पांच देवताओं द्वारा. इसलिए मानवको ही पांच यज्ञ नित्य करनेका विधान है । पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश सूर्य आदि नित्य यज्ञ करते हैं । आकाश सबका आधार है सब देवताओं, सब जीवों और सब तत्वोंका और ब्रह्म सर्वाधार है । ब्रह्म यज्ञ प्रथम यज्ञ है सूर्य अग्नि सब संसारके सब देवताओं और पदार्थोंको शुद्ध करते हैं और सब तक पहुँचाते हैं । बराबर बराबर बांट देते हैं । इसलिए दूसरा यज्ञ देव यज्ञ मनुष्यके लिए जरूरी है, तीसरा पवन वायु सब प्राणियों---जड़ और चेतनका जीवन आधार है इसलिए पितृ यज्ञ करना आवश्यक है । चौथा जल जो शान्त करता है, हरियावल देता है ।

प्रतिथि मानवको शान्ति देता है और सदा प्रफुल्लित रहनेका आशीर्वाद देता है। पांचवां यज्ञ पृथ्वी--बलि वैश्य देव यज्ञका काम करती है, प्राणीमात्रको जो पृथ्वी पर रहते हैं, उनको बलि देती है।

अथर्ववेद में १६ काण्ड सूक्त ७ मन्त्र २ से ५ तक नक्षत्रोंकी उपयोगिताका वर्णन आता है।

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्र मृगशिरः शमार्द्रा।

पुनर्वसु सूनृता चारू पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघामे॥

मन्त्र २

भावार्थ--हे सूर्य! विद्वन्! कृत्तिका और रोहिणी दोनों नक्षत्र (सुहवं) उत्तम रीतिसे यज्ञ करने योग्य हों। मृगशिरा (भद्र अस्तु) सुखकारी हो। (आर्द्राशम्) आर्द्रा शान्तिदायक हो। (पुनर्वसु) दोनों पूनर्वसु नक्षत्र (सूनृता) शुभ, उत्तम बाणी और ज्ञान देने वाले हों। पुष्य नक्षत्र उत्तम हो। अश्लेषा नक्षत्र अति दीप्ति जनक हो और मघा नक्षत्र मेरे लिए (अयनम्) सब सम्पत्ति प्राप्त कराने वाला या सूर्यकी गतिका चरम स्थान हो।

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखोमे अस्तु। राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्ट मलम ॥३॥

भावार्थ–पूर्वं फलगुनी के दो नक्षत्र पुण्य सुखकर हों। इस लोकमें हस्त और चित्रा नक्षत्र कल्याणकारी हों। स्वाति नक्षत्र मुझे सुखकारी हो। हे राधा नक्षत्र और विशाखा नक्षत्र तुम दोनों भी (सुहवा) उत्तम रीतिसे यज्ञ करने योग्य और अनुराधा अनुकूल सिद्धि देने वाले होवें। ज्येष्ठा उत्तम नक्षत्र हो। मूल नक्षत्र भी कल्याणकारी हो।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु। अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥

भावार्थ–पूर्वा अषाढ़ा नक्षत्र (मे अन्नम् रासताम्) मुझे अन्न प्रदान करे। उत्तरा अषाढा नक्षत्र (देवी) प्रकाशवान् होकर (ऊर्जम्) उत्तम अन्न रस और बल (आवहन्तु) प्राप्त करावें। (अभिजित्) अभिजित् नामक नक्षत्र [मेपुण्यम्रासताम्] मुझे पुण्य पवित्रता प्रदान करे। [श्रवणः श्रविष्ठाः] श्रवण और श्रष्ठिा दोनों नक्षत्र [सुपुष्टिम्] उत्तम पुष्टि प्रदान [कुर्वताम्] करें।

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मेदया प्रोष्ठपदा सुशर्म। आरे वतो चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥५॥

भावार्थ–बड़ा भारी शत भिषग् नामक नक्षत्र मुझे [वरीयः] धन प्राप्त करावे। दोनों प्रोष्ठ पदा नामके नक्षत्र [मे सुशर्म आवहाम्] मुझे उत्तम सुख प्रदान करें। रेवती और अश्विनीके दोनों नक्षत्र [मेभगम् आ] मुझे ऐश्वर्य प्राप्त करावें [भरण्यः] भरणी नामके नक्षत्र [मे रयिम् आवहन्तु] मेरे लिये ऐश्वर्य "सिद्धि" प्रदान करावें ॥

याजक ऋत्विज लोग जो यज्ञ विद्यामें निपुण हैं अथवा विशेषज्ञ हैं, वह भिन्न भिन्न कार्योंके लिए उन के अनुकुल नक्षत्रोंमें यज्ञ कराते हैं जैसे सामग्री ऋतु या रोगोंके लिए विशेष-विशेष होती है ऐसे समय भी विशेष विशेष होता है। अथर्ववेदमें इसका वर्णन है :–

जैसे अग्न्याधानका काल ---

कृत्तिका नक्षत्रमें अग्न्याधान करनेसे बहुत्वके साथ धन प्राप्ति होती [?] है "रोहणी नक्षत्र" में अग्न्याधान करनेसे सन्तान और पशुका लाभ होत है। "मृगशीर्ष"-यह प्रजापति नक्षत्र है, इसके पास रोहणी और तारा है जिसे प्रजापतिका शर कहते हैं। एक लाल रंगका है, इससे श्री (कीर्ति) प्राप्त होती है।

"पुनर्वसु" में पुनराधान करना चाहिए।

फाल्गुणीमें सन्तानमें कमाने [अर्चन करने] की सामर्थ खूब आती है। सम्पत्ति कमाते-कमाते परमैश्वर्य शाली इन्द्र बन जावे। यज्ञका देवता इन्द्र है, यजमान भी इन्द्र होता है- स्वल्प सामर्थ्यवान व्यक्ति यज्ञ नहीं कर सकता। "पुर्वा फाल्गुणी" में अग्न्याधान करनेसे सन्तान उन्नतिशील होती है और "उत्तारा फालगुणीमें" अग्न्याधान करनेसे आगे-आगे आने वाला बल सदैव श्रेय---को दिखाने वाला होता है। "हस्थ" नक्षत्रमें अग्न्याधान करनेसे सन्तान दानी बनती है। "चित्रा" नक्षत्रमें जो सन्तान होती है वह अपने शत्रुओं पर विजय करनेमें अवश्य सफल होती है। यह क्षत्रियोंके लिए जरूरी है। इसका बड़ा महत्व है।

"सूर्य नक्षत्रमें सब पूर्णता होती है। इसलिए जो कोई नक्षत्र विशेषमें अग्नि आधान करना चाहे तो उस नक्षत्र पर जब सूर्य आ जावे तब उस नक्षत्रमें अग्न्याधान करे।

देव प्राण=बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतुमें अग्नि बहिर्मुख, अग्नि सोम गर्भित, ज्ञानकी वृद्धि, मन्द बुद्धि, दूर।

पितृ प्राण=शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अग्नि अन्तर्मुख सोम अग्नि गर्भित, पशु द्रव्य वृद्धि।

इसलिए बसन्तमें अग्न्याधानसे सन्तानकी ज्ञान वृद्धि-ब्रह्म वर्चस मिलता है। ग्रीष्ममें अग्न्याधानसे श्री और

कीर्ति प्राप्त होती है और वर्षामें करनेसे सन्तान, पशुवृद्धि होती है।

दूसरा पक्ष यह है कि सूर्य दोनों पक्षोंमें है, दोनोंके दोष दूर कर देता है। इसलिए जब भी यज्ञ करनेके लिए मनमें विचार आए तब ही अग्न्याधान कर दे। ऋतुओंका विशेष-विशेष रूपसे ध्यान करे। पितृ प्राण भी देव प्राणमें बदल जाते हैं।

०००

इकत्तीसवीं झांकी

देवताओं को धन में बिठाना। देवताओं को मन में बिठाना॥

सेठ---देवताओंको कैसे अपना बनाया जावे ?

प्रभुआश्रित---याजक दो प्रकारसे देवताओंको अपना बना सकता है जो यजमान धनको देवताओंके लिए अर्पण करता है तो देवता धनमें निवास कर जाते हैं उसका धन सुरक्षित हो जाता है, बढ़ता है परन्तु हृदय शुद्ध पवित्र नहीं करते। परमेश्वरके स्थान नहीं पाते।

जहाँ मन अर्पण किया जाता है, मनसे देवताओंका मान किया जावे, वहाँ देवता मनमें, हृदयमें निवास कर जाते हैं, दिव्यगुण प्रदान करते हैं।

ऐसा याजक प्रभुका आव्हान कर सकता है तब वह निश्चिन्त हो जाता है। उसकी शान्ति और सुख भी भंग नहीं होने पाता, पवित्रताका प्रकाश हो जाता है।

अर्थात् जो धन तो यज्ञ कार्योंमें लगाते हैं परन्तु यम नियमका पालन नहीं करते, यज्ञको अनुष्ठान रूपसे नहीं करते वह धनसे देवताओंका पूजन करते हैं धनसे देवताओं का मान करते हैं, हृदयसे नहीं करते। वह स्वार्थी है। धन देवताओंसे प्राप्त हुआ है उसका अंश देवताओंको दिया है। और जो यम नियमका पालन करते हैं वह मन से प्रभुका मान और पूजा करते हैं वह स्वार्थ और अहंकार रहित होकर देवत्व भागके अधिकारी बन जाते हैं।

सेठ---जो मनुष्य धनसे यज्ञ करता है वह भी तो मन की भावनाके बिना तो नहीं हो सकता।

प्रभुआश्रित–यज्ञमें चेतन बुद्धिसे कार्य करना चाहिए, जड़ बुद्धिसे नहीं।

सेठ–वह चेतन बुद्धि फिर क्या होती है ?

प्रभुआश्रित–यजमान कार्य कर्त्ता, पुरोहित ऋत्विज आदि यज्ञशालाको एक सुभूषित दरबार समझें।

यज्ञो वै विष्णुः" यज्ञाग्निको विष्णुका रूप मानें और इन्द्र को उसका देवता बुद्धिमें धारण कराकर उसका आह्वान करनेका भाव रखें जैसे भृत्य-सेवकको अपने स्वामीका ध्यान, प्रेम अथवा भय मनमें बना रहता है और वह मन से काम करता रहता है। प्रेम करने वाला भृत्य तो स्वामीका कार्य अपना जानकर करते हैं। जैसे अपने कार्य में कोई कमी नहीं होने देता और त्रुटि नहीं चाहता ऐसे ही वह मनसे काम करते हैं।

भयसे काम करने वाला भृत्यको कहीं से स्वामी देखने न आजावे और हमें दण्ड न दे वह इस भय से सावधान रहकर कार्य करता है।

यह है काम में "चेतनता"--शक्तिशाली अधिकारीके सामने जैसे सेवक आदरसे वार्ता करते बोलते और अपना अहङ्कार प्रगट नहीं करता, अपितु मौन रहता है। ऐसे यज्ञमें सब कार्य-कर्त्ता निरहङ्कार होकर श्रद्धा भक्तिसे बैठता और कार्य करता है।

जड़ बुद्धि क्या है ?

यज्ञको एक भौतिक जड़ अग्नि जिसका कोई देवता नहीं, कोई अदृष्ट फल नहीं। केवल वायुकी शुद्धि निमित्त यज्ञाग्निमें आहुति देनी है।

सेठ--तो क्या फलमें भी कोई भेद होता है ? यजमान ने धनभी लगाया, पदार्थ सामग्री, घृत, समिधा भी उत्तम उत्तम लगाई, समय भी दिया । यज्ञतो धनसे ही होता है, मुख्य वस्तु तो उसमें सम्पत्ति ही है ।

प्रभु आश्रित--"यज्ञका फल तीन प्रकारसे मिलता है" एक मर्त्त लोकमें, दूसरा चन्द्र लोकमें, तीसरा द्यौलोक ब्रह्म लोकमें । तनिक ध्यानसे सुनो । आप प्रतिदिन यज्ञ करते हो । तीन समिधाओंसे आरंभ करते हो । पहले मन्त्रमें 'अयन्त इध्म आत्मा" में भावका जोर "इध्म" पर दिया जाता है । दूसरे मन्त्रमें "समिद्ध" और तीसरे पर"सुसमिद्ध" आता है । जिनकी आहुति और भाव 'इद्ध'का है उनको सुख मर्त्तलोकमें शारीरिक, नीरोग्यता, कान्ति, प्रजा, पशु, भक्ति अन्न धनकी प्राप्ति होती है। जिनकी आहुति और भाव 'समिद्ध'की है, जो इस अग्नि को अतिथि समान जानकर यज्ञ करते हैं उनमें सेवा और आत्म जागृती उत्पन्न होती है वह चन्द्र लोक में मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं और जिनकी आहुति और भाव 'सुसमिद्ध' है वह मुक्त हो जाते हैं । ब्रह्मानन्दको प्राप्त करते हैं द्यौलोकमें, तो यज्ञका फल हुआ--सुख भूलोक पर, शान्ति भुवःलोकमें और आनन्द स्वः लोकमें ।

तीन प्रकारका यज्ञ करने वाले श्रद्धासे (१) जो

[भ]ौतिक यज्ञ करते हैं वेदके अध्ययन, मनन और श्रवण [द्व]ारा और जो (२) श्रद्धासे विद्वानोंकी सेवा अन्नधनसे [श]ोभा द्वारा और जो [३] आध्यात्मिक यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, [न]ाम दान लोगोंको उपदेश करता है, सन्मार्ग पर लगाता [है] उसको गौ, अश्व, यश और सम्पत्ति और विद्वानों और [म]नुष्योंका किया पाप अपराध कर्म किसी भी प्रकार [प्र]ाप्त नहीं होता "अर्थात् यज्ञ-शील उपासकको किसी [प्र]कारका पाप स्पर्श नहीं करता।"

ऋग्वेद मण्डल ८,सूक्त ६९मन्त्र ५, ६ ॥

यः समिधा य आहुति यो वेदेन ददाश मर्त्तो अग्नये।
[य]ो नमसा स्वध्वरेः ॥५॥

तस्येदर्वन्तो रहंयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः।
त तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥६॥

अर्थ--जो उत्तम अहिंसक यज्ञशील पुरूष अन्नसे, [य]ा विनय श्रद्धासे, जो काष्ठसे, जो आहुतिसे, जो वेदसे, [व]ेदके अध्ययन, मनन, श्रवण आदि करते हुए अग्निमें [आ]हुतिवत उस ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, सर्वगुरु परमेश्वरके [ह]ाथों अपनेको प्रदान करता है, सौंप देता है ॥५॥

उसके ही वेगसे जाने वाले अश्व वेगसे गमन करते हैं, [उ]सका ही यश अति उज्वल होता है, ... तक विद्वानों

और मनुष्योंका किया पाप या अपराध कर्म किसी प्रकारसे नहीं प्राप्त होता अर्थात् यज्ञशील उपासकको किसी प्रकारका पाप स्पर्श नहीं करता ॥६॥

बत्तीसवीं झाँकी
ज्ञान चक्षु का उन्मीलन

सेठ---यह यज्ञ होम तो कर्म है। कर्म इन्द्रियों करते हैं। भौतिक अग्निमें आहुति देते हैं। आपने कुछ और कह दिया ?

प्रभु आश्रित---प्यारे सेठ! कभी अर्थ भी मन्त्रों पढ़े हैं। अर्थ तो ईश्वर परक हैं। देखो! यज्ञ हवनमें तीन समिधा चढ़ाना दर्शाता है कि यज्ञ कर्मउपासना है। पहिले ही मन्त्रमें 'अयन्त इध्म आत्माजात वेदों में अपनी आत्माको ईंधन बना प्रभुको समर्पण कर रहा है। दूसरेमें मनः वृत्तियोंको लकड़ियां और घृतको उपासनाका रूप देकर, तीसरेमें लकड़ीसे अग्नि प्रज्वलित होती है, प्रचण्ड होती है। इसलिए आत्म-समर्पणसे परमात्माके प्रकाशका अधिक भान होता है। "भक्ति युक्त कर्म-ज्ञान चक्षुका उन्मीलन करते हैं और सब प्रकाशका साक्षात्कार होता

है। अग्नि पदार्थको मिलाता और तोड़ता है, परमात्मा सृष्टिको और प्रलयको करता है ऐसे ही याजक भूतों को मिलाए और बखेरे।

सेठ—एक बात मेरी समझमें नहीं आई कि ८ वर्षकी आयु से ७५ वर्षकी आयु तक अर्थात् शैशवकालसे वृद्धावस्था पर्यन्त हवन एक ही प्रकारसे किया जाए, वही मन्त्र वही समिधा, वही सामग्री और घृत जो ब्रह्मचारी प्रयोग करें वही गृहस्थी युवक प्रयुक्त करें और उन्हींसे बानप्रस्थी काम ले। आश्रम बदल गया, रूप, वर्ण, स्थान कार्य सब बदल गए परन्तु मन्त्र और हवि न बदली। कृपया इस शङ्काको मूर्खता समझें तो उत्तर न दें और यदि कोई विशेष बात हो और शङ्का मेरी ठीक जचे तो उत्तर देवें।

प्रभु आश्रित—यह शंका आपकी ठीक है। कोई कुतर्क नहीं। आप श्रद्धासे जिज्ञासा कर रहे हैं। यज्ञ एक प्रतीक है जिसका अन्तिम उद्देश्य स्वाहा और "इदमग्नये इदन्नमम" की छाप वाणी और क्रिया में प्रगट हो। यह तब होगा जब मन यज्ञके रूपको धारण कर लेगा "इसलिए ब्रह्मचर्य आश्रम ज्ञान संग्रहका है, गृहस्थाश्रम कर्म संग्रहके लिए और बानप्रस्थ आश्रम ध्यान उपासना संग्रहके लिए है। जिस हवन यज्ञको ब्रह्मचारी करते हैं वही गृहस्थी

और वानप्रस्थी करते हैं। हर एक की अग्निका नाम भिन्न-भिन्न है। ब्रह्मचारीकी अग्निका नाम आहवनीय अग्नि है। उसी अग्निका नाम गृहस्थीके लिए गार्हपत्य अग्नि है और बानप्रस्थीके लिए दक्षिणाग्नि है। इन सब प्रकारकी अग्नियोंके घृत, सामग्री, समिधामें कोई भेद नहीं।

भेद क्यों ?

भेद केवल इतना है कि प्रत्येक मन्त्रके तीन प्रकारके अर्थ लगते हैं आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। ब्रह्मचर्य कालमें ब्रह्मचारीको यज्ञका भौतिक स्वरूप समझाया जाता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका ज्ञान कराया जाता है। गृहस्थ आश्रममें दैविक प्रकृति क्रियात्मक रूपसे और वानप्रस्थ आश्रममें आध्यात्मिक विकासके लिए हवन करना निवृत्ति मार्गक्रियात्मक रूप से--सोचना और मनन करना होता है और ध्यान द्वारा विज्ञान प्राप्त होता है जो भक्ति योगके योग्य बना देता है।

प्रभु उपासना (भक्ति योग) करनेसे सुन्दर शीलकी प्राप्ति होती है। सुन्दर शीलसे उपासक सत् ज्ञान, सत् विद्यासे ब्रह्म ज्ञानका अधिकारी बनता है।

ऋग्वेद मण्डल ९, सूक्त ९६ मन्त्र २।

इषमूर्जं च पिन्वसइन्द्राय मत्सरिन्तमः ।
चमूष्वा निषीदसि ॥

इस मन्त्रका देवता पवमान सोम है । पवित्र करने वाला, ऐश्वर्यसे समृद्धि प्रदान करने वाला–वह सोम समस्त प्रजाको अन्न, बल, धन आदिसे पूर्ण तृप्त एवं सुप्रसन्न करने हारा होकर शत्रु हन्ता सैन्य और समृद्ध वा भूमिकर्षक प्रजाजनके हितार्थ अन्न, बल और सैन्यको बढ़ाता और पालन करता है और भक्तोंके हृदयोंमें अध्यक्ष बनकर विराजता है ।

सेठ–क्षमा कीजियेगा । मैं चञ्चल वृत्तिका मचचल दास हूं । सुनते-सुनते मेरी वृत्ति गायत्री रहस्यमें जा पड़ी, जहां लिखा है कि एक लाख गायत्री आहुतिसे यह फल होगा । दस सहस्र आहुतिसे यह होता है । यदि कोई वेद का यज्ञ न करा सके, गायत्री यज्ञ तो स्वयं भी कर सकता है । कृपया यह समझा दीजिये कि उच्च स्वरसे मन्त्र बोलें अथवा मनमें बोलें ।

प्रभु आश्रित–गायत्री यज्ञमें तीन प्रकारका उच्चारण होता है । उसका फल और महत्व सुनो ।

(१) उच्च स्वरसे गायत्री मन्त्र उच्चारण करनेसे आकाशके प्रमाणु रज तमको हटाकर सत्व गुणी परमाणुओं

का मार्ग अपने लिए बनाता है फिर वह परमाणु याजक साधककी रक्षा करते हैं। जहाँ-जहाँसे वह जाता है वह यज्ञ आहुतिसे उत्पन्न हुए सत्वगुणी परमाणु उसकी रक्षा करते हैं और विरोधी परमाणुओं को नहीं आने देते।

(२) मन्त्र उच्चारण करते समय अग्निमें आहुति देने, अग्निमें दृष्टि रखनेसे बाणीमें और दृष्टिमें ऐसा बल आ जाता है कि जिसकी ओर याजक दृष्टि करता है अथवा बाणीसे वाक्य बोलता है उस पर तुरन्त प्रभाव पड़ जाता है। (परीक्षण करके देखो)

[३] एकाग्र वृत्तिसे ओष्ठोंमें अथवा आहिस्ता-आहिस्ता धीरे-धीरे मन्त्र उच्चारण करने पर प्रत्येक मन्त्र को डण्डा जाप विधिसे आहुति देनेसे एक सामर्थ्य अथवा योग्यता याजकमें उत्पन्न हो जाती है जिससे अन्तः प्रेरणा को समझ सकता है। और आचरण करके अपना उत्थान और कल्याण कर सकता है।

—डण्डा जाप इस प्रकार किया जाता है :—

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः" कहते समय हृदयमें अनाहत चक्रमें ध्यान हो। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' कहते समय त्रिकुटि (आज्ञा चक्र) में ध्यान चला जावे। फिर वहांसे नीचे अनाहत चक्र तक लौट कर "भर्गो देवस्य धीमहि" का उच्चारण हो और फिर वहांसे ऊपर आज्ञा चक्र [त्रिकुटि]

को जाते समय "धियो यो नः प्रचोदयात्" का उच्चारण हो। इस प्रकार उतार चढ़ावसे एक डण्डा बन जाता है जिस पर मनकी वृत्ति गति करती और एकाग्रता बन जाती है।

[सम्पादक]

सेठ---यज्ञ तो सत् कार्य, सत् कर्म है इससे तो कभी अनिष्ट नहीं होता होगा।

प्रभु आश्रित---निःसंदेह यज्ञ सत्कर्म है जैसे कोई सब्जी बहुमूल्यवान और सात्विक है परन्तु कभी उसमें लवण, मिर्च अधिक पड़ जानेसे वह व्यञ्जन हानिकारक बन जाता है और कभी लवण बिल्कुल न पड़नेसे नीरस, अस्वादु लगती है "ऐसे ही यज्ञ तामसिक, राजसिक और सात्विक बन जाता है।"

यज्ञ तामसिक बन जाता है जब---

[१] विधि हीन हो [२] मन्त्र रहित हो [६] कुसमय हो [४] यज्ञ कार्यमें असावधानी वर्ती जाए [५] यज्ञमें ठट्टा और विनोदकी बातें चल पड़ें [३] हिंसा वृत्ति हिंसक भाव पैदा हो जावें, यम नियमका भंग हो जावे [७] यजमान, पुरोहित ऋत्विज आदि दोनों यज्ञ मन्त्रोंके अर्थ न जानते हों [८] जब यजमानमें कृपणता अथवा पुरोहितमें स्वार्थ आ जावे [९] जब यजमान

मन्त्रोंका श्रवण ध्यानसे नहीं करता, चञ्चल वृत्तिसे केवल आहुति देनेको ही यज्ञ सम्पूर्ण समझता है।

यज्ञ राजसिक बन जाता है जब---

(१) यज्ञका पुरोहित ऋत्विज तो वेद मन्त्रोंका अर्थ जानने वाला हो परन्तु क्रिया करने वाला यजमान न जानने वाला हो (२) यजमानका चित्त और विचार ऋत्विजके आधीन न हों, दूसरी ओर विचार जावें (३) जब ऋत्विज क्रिया कराना तो जानता हो, बाहरकी क्रियाएं विधि सहित करा देवे परन्तु अर्थ नहीं जानता (४) यजमान में अपने यज्ञ दानका अभिमान या ऋत्विजों को वेठ पाठ उपदेशमें अपनी उत्तम क्रियाका अहंकार आ जावे।

"यज्ञ सात्विक है" जब यजमान अपने चित्तको अन्य वृत्तियोंसे रिक्त करके ज्ञानी ऋत्विजके आधीन करदे और यज्ञमें पूरी सावधानीसे एकाग्रचित्त होकर कार्य करे।

यज्ञके तीन भाग

यज्ञके तीन भाग देवपूजा, संगतिकरण और दान हैं। दान तो शरीरके लिए और देव पूजा आत्माके लिए है। जिस यज्ञमें तीनों भाग पूर्ण होंगे वही यज्ञ सात्विक

और सफल समझना चाहिए। जितना भाग कम होगा उतनी यज्ञमें अपूर्णता रहेगी।

संगति कारणमें सब ऋत्विज व श्रोताओंका यजमान के उद्देश्यके साथ एकीकरण होना संगति करण है। आध्यात्मिक रूपमें सँगतिकरण सब इन्द्रियोंका प्रधान इन्द्रिय मनके साथ आत्माकी आज्ञा और अनुकूलताके लिए सब विचार धाराका एकीकरण होना संगतिकरण है।

"देव पूजा"में सब क्रियाओंका उद्देश्य प्रभु प्राप्ति हो, मनके पाप और कुवृत्तियां ऐसे भागती प्रतीत हों जैसे काष्ठसे धुआँ अग्निकी शरणसे भागता है और जो यज्ञ पर विराज कर अन्तिम ऋचा तक पूर्ण होने वाले यज्ञ की समाप्ति पर विद्वान्, यज्ञ कर्त्ता जनोंको धन सम्पन्न पुरुषके तुल्य दान दक्षिणा आदि उदारतासे प्रदान करता है वह उत्तम पुत्रों वीरों सहित दीर्घ आयु और बल धारण करता है, वह विद्वान् अनेक मनुष्योंके भी रक्षाके पद पर हो' ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७७, मन्त्र ७–इस प्रकार है :–

ओं य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत्।
रेवत स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु॥

———

तैंतीसवीं झाँकी

यज्ञका फल—तथा दक्षिणा

सेठ–यजमान जो यज्ञ कराता है और पुरोहित कराने वाला वेद पाठ कराता है दोनोंको एक समान फल मिलता है अथवा वेद पाठियोंको अधिक मिलता है ?

प्रभु आश्रित---यजमान अपने घर और वेदी पर जड़ और चेतन देवताओंका आह्वान करनेके लिए यज्ञ रचता है, क्यों ? यज्ञ एक दैवी नौका है, नौकाके लिए उसके चलाने वाले खेवट चाहिएं जो जानकार हों। जैसे किसी मंजिल पर पहुँचनेके लिए जिसका मार्ग यात्री नहीं जानता, एक पथ प्रदर्शक (Guide) की आवश्यक्ता होती है ऐसे जो उस मार्गके सब ऊंच नीच को जानता हो। मार्गमें क्या-क्या भयावह और भीषण स्थान और पशु हैं। मार्ग कैसा है' चढ़ाई उतराईको जानता हो। इन सबका वृत्तांत बताने वाला हो। ठीक इसी प्रकार ऐसे यज्ञके लिए ब्रह्मा' पुरोहित, ऋत्विजका वरण होता है जो सुपरिचित और विज्ञ हों, नौका छिद्र रहित हो, उसमें जल न भर जाय। इसकी जिम्मेदारी यात्रियों पर नहीं होती, खेवटों पर होती है इसलिए यज्ञके ऋत्विज उस यज्ञ रूपी नौकाके

जिम्मेदार हैं कि उसमें छिद्र अथवा दोष न आ जाए, जल न भर जावे। यज्ञको मख (म=न और ख=छिद्र) कहा गया है (जिनका वर्णन ऊपर तीन प्रकारके तामसिक, राजसिक, सात्विक यज्ञके शीर्षकमें कर चुके हैं) कहीं पहुंचनेके लिए आवश्यक ज्ञान [१] उस स्थानका नाम जानता हो जहां पहुँचना हो [२] मार्ग उसका किस ओरको है [३] मार्ग कैसा है [४] मार्ग दर्शक पूरा परिचित हो [५] मार्ग तय करनेके लिए साधन पाद अथवा यान [६] क्यों यात्री मंजिल पर पहुँचना चाहता है---

भाड़ा लेकर नौका चलाने वाला दूसरों (यात्रियों) को तो पार पहुँचाता है परन्तु स्वयं आवागमनके चक्कर में रहता है (पार आता जाता रहता है) ऋत्विज दक्षिणा लेने वाले स्वयं पार नहीं होते। वह वेद विद्या और यज्ञको बेचते हैं।

सेठ---अभी तो कहा है कि जो यज्ञ कर्त्ताविद्वानको धन सम्पन्न पुरुषके लिए यज्ञ दान दक्षिणा देना है। वह अमुक-अमुक फलको प्राप्त करता है, अब निषेध कर दिया। मैंने तो सुना है और पढ़ा भी है कि दक्षिणाके बिना यज्ञ सफल नीं होता।

प्रभु आश्रित---सकाम यज्ञोंमें दान दक्षिणा द्रव्यकी

आवश्यक्ता है परन्तु निष्काम यज्ञोंमें विद्वान ब्राह्मण यजमानसे दक्षिणा लेता है। उसके "यजमान के" जीवन कल्याण निमित्त न कि द्रव्य अपने परिवार पालन अर्थ। जो निष्काम यज्ञोंमें दक्षिणा ले लेते हैं वह वेद कथा पोथी उपदेश करके मूल्य ले लेते हैं। उनको यहाँ फल मिल गया और आगे क्या लेंगे ? द्रव्य लेकर फल बेच देनेसे अन्तः करण शुद्ध नहीं होता।

मोटर कार जितनी बहुमूल्य होती है उसमें पैट्रोल ज्यादा व्यय होता है वह साधारणसी कच्ची सड़क पर नहीं चलती। विकृत हो जाती है, यात्रा भी कम करती है। जो मोटर छोटी हल्की होती है उसमें पैट्रोल भी कम व्यय होता है और वह यात्रा भी अधिक करती है। ट्रक और जीप वैसे मार्गसे चले जाते हैं ऐसे यज्ञ करने वाले, पुण्य कर्म करनेवाले अपने अपने दरजेके होते हैं।

सेठ—यज्ञ कहाँ कहाँ जाता है। यज्ञका क्या किया जाता है ?

प्रभु आश्रित---यज्ञमें यजमानका द्रव्य (कमाई) दान के रूपमें यज्ञको और यज्ञमें यजमानकी क्रिया संगतिकरण में और यजमानकी भावना देव पूजा रूपमें यज्ञपति को-जब यज्ञपति परमात्माको स्वीकार हो जाता है तो

उसका फल लौटकर यजमानकी आत्माको मिलता है। यह है देव पूजा।

जब यज्ञ समष्टि सूक्ष्म जगत्‌को पहुंच जाता है तो उसका फल लौटकर अन्तःकरणकी शुद्धि करता है, यह है संगतिकरण प्रकृतिके नियम, मर्यादाके अनुकूल कार्य अथवा कर्म, क्रिया करनी, अनुशासन, सहयोगको समझकर।

जब यज्ञ दान रूप धारण करता है केवल त्याग भावना तब संसारके प्राणियोंको देवताओं द्वारा बाहर पहुँचता है संसारको स्वीकार होता है।

सेठ---जब यज यज्ञपति परमात्माको स्वीकार हो जाता है तो क्या ययमें परमेश्वरके दर्शन आत्माको हो जाते हैं? परमेश्वर तो सर्व व्यापक है।

प्रभु आश्रित---प्रभुको सर्वव्यापक वही देख सकता है जो सर्वत्र व्यापक होगा। जीव सर्वत्र कैसे व्याप सकता है? अपने कर्मसे, वह कर्म यज्ञकर्म है। यज्ञ कर्म याजकके आकार (आकृति), भावों (प्रकृति) को प्रत्येक वस्तुमें व्यक्तिमें प्रविष्ट करा देता है। यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र २३।

प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा॥

पदार्थ---जिन मनुष्योंने (प्राणाय) जो पवन भीतरसे बाहर निकलता है उसके लिए (स्वाहा) योग विद्यायुक्त क्रिया (अपानाय) जो बाहरसे भीतरको जाता है उस पवनके लिए (स्वाहा) वैद्यक विद्या युक्त क्रिया (व्यानाय) जो विविध प्रकारके अंगोंमें व्याप्त होता है उस पवनके लिए (स्वाहा) वैद्यक विद्या युक्त वाणी (चक्षुषे) जिससे प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रियके लिए (स्वाहा) प्रत्यक्ष प्रमाण युक्त वाणी (श्रोत्राय) जिससे सुना जाता है उस कर्णेन्द्रिय के लिए (स्वाहा) शास्त्रज्ञ विद्वान्के उपदेश युक्त वाणी (वाचे) जिससे बोला जाता है उस वाणीके लिए (स्वाहा) सत्य भाषणादि व्यवहारोंसे युक्त बोलचाल तथा (मनसे) विचारका निमित्त संकल्प और विकल्पवान् मनके लिए (स्वाहा) विचारसे भरी हुई वाणी प्रयोगकी जाती अर्थात् भलो भांति उच्चारणकी जाती है वे विद्वान् होते हैं।

भावार्थ---जो मनुष्य यज्ञसे शुद्ध किए जल, औषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थोंका भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बल, बुद्धि, आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं ।।

तब याजक सर्वत्र कर्मके रूपमें व्याप्त हो जाता है

और परमेश्वरका मान हर स्थान पर करनेके योग्य हो जाता है।

यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र १०।

अपां पेरुरस्यापो देवी: सदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहविः। संते प्राणोवातेन गच्छतां समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा॥

पदार्थ---हे शिष्य! तू (अपाम्) जल आदि पदार्थों का (पेरुः) रक्षा करने वाला असि है, संसारस्थ जीव तेरे यज्ञसे शुद्ध हुए (देवीः) दिव्य सुख देने वाले (आपः) जलों को (चित्) और (स्वात्तम्) धर्मयुक्त व्यवहारसे प्राप्त हुए पदार्थोंको (देवहविः) विद्वानोंके भोगनेके समय (संस्वदन्तु) अच्छी तरहसे भोगें (आशिषा) मेरे आशीर्वादसे (ते) तेरे (अङ्गानि) शिर आदि अवयव (यजत्रैः) यज्ञ कराने वालोंके साथ (सम्) सम्यक् नियुक्त हों और (प्राणः) प्राण (वातेन) पवित्र वायुके संग (सङ्गच्छताम्) उत्तमतासे रमण करें और तू (यज्ञपतिः) विद्या प्रचार रूपी यज्ञका पालन करने हारा हो।

भावार्थ—जो यज्ञमें दी हुई आहुति हैं वे सूर्यके उपस्थित रहती हैं अर्थात् सूर्यकी आकर्षण शक्तिसे परमाणु रूप होकर सब पदार्थ पृथ्वीके ऊपर आकाशमें हैं उसी पृथ्वीका जल ऊपर खिचकर वर्षा होती है उस वर्षासे अन्न और अन्न

से सब जीवोंको सुख होता है। इस परस्परा सम्बन्धसे यज्ञ शोधित जल और होम किये द्रव्यको 'सब जीव भोगते' हैं।

ब्रह्म सर्वव्यापक है परन्तु यः में तो वह साक्षात् उपस्थित विराजमान होता है–

गीत ३-१५ में आया:--

"तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्"।

समत्व बुद्धिसे कार्य करनेकी कलाकी सिद्धिका सर्वोत्तम उपाय यज्ञ ही है। जिसमें समस्त संसारके देवताओं, प्राणियों अप्राणियोंके लिए गुप्त दान आदान होता है। आसक्ति रहित होकर अपने लिए न अपितु संसारके लिए कर्म करना ही यज्ञ है, वह कैसा ही कर्म क्यों न हो। जैसे अग्नि अनेक पदार्थों को लेकर भी लिप्त नहीं होती ऐसे जो यजमान कार्य करता है सो यज्ञ है। इसलिए यज्ञको कहा गया है कि यज्ञार्थ कर्म बन्धन नहीं बनता।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः॥

गीता ३-१९

यज्ञके बिना जितने भी कर्म हैं, वे सब बन्धनके हेतु हैं।

यजमान नहीं जानता कि उसकी आहुतिसे किसको लाभ हुआ और न यह ज्ञान है कि वह कहां-कहां गई। किसने कहां कहां लाभ उठाया। यज्ञ ही मानव और प्रकृति का मेल कराता है।

चौतीसवीं झाँकी

स्वाहा और स्वर्गकी सीढ़ियां

यजुर्वेदमें तो ऐसा आया है---

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभितत्पवन्ते ॥

भावार्थ---जैसे कन्या स्वयंवरके विधानसे अपनी इच्छा के अनुकूल पतियोंका स्वीकार करके शोभित होती है वैसे परमेश्वर यज्ञमें यजमानको देखने आता है या दर्शन देता है।

अर्थात् जैसे वर अपनी अलंकृत वधुको बार-बार देखने आता है, ऐसे परमेश्वर यज्ञमें यजमानको देखने आता है या दर्शन देता है।

स्वाहा, स्वाहा जब यजमान कहता है तो स्वर्गकी सीढ़ियां बनती चली जाती हैं। यह स्वर्गकी सीढ़ियां कैसे बनती चली जाती हैं? यह कपोलकल्पित बात है अथवा इसमें कोई तथ्य भी है?

प्रभु आश्रित---कपोल कल्पित तो नहीं परन्तु कल्पना भी तो किसी पूर्व आधार पर कोई कर सकता है जो बिना आधारके हो वह कपोलकल्पित होती है। उपनिषदोंमें तो

ऐसा लिखा है कि स्वर्गकी कामना वालेको यज्ञ करना चाहिए।

(१) स्वर्ग कामो यजेत् ॥

(२) स्वर्ग कामः अग्निहोत्रेण स्वर्गं भावयेत्।

(३) दर्श पौर्णमासाभ्यां स्वर्ग कामो यजेत् ॥

स्वर्गकी कामना वाला पुरुष दर्श पौर्णमाश यज्ञ करे। अब सुनो, कैसे बनती हैं ?

स्वाहा की छाप जिस याजक पर लग जाती है उसकी सीढ़ियां स्वाहा बनाता है वरना सीढ़ियोंसे पाऊं फिसलकर धड़ामसे पृथ्वी पर आ पड़ता है।

स्वाहाका "अर्थ भौतिक रूपमें" (१) भौतिक पुरुषार्थसे कमाकर जो फल मिलता है उस पर सन्तोष करना, दुःख न मानना, ईर्ष्या न करनी, न प्रसन्न होकर अभिमान करना, अपितु प्रभुकी देन समझना क्योंकि यज्ञमें द्रव्य हुत किया जाता है, व्यवहार फलमें सन्तोष होनेसे मनुष्य ईर्ष्या आदि पापोंसे बच जाता है।

"आधिदैविक स्वाहाका अर्थ" --सु==सुहावना, सुन्दर, मीठा बोलना, जो सबको प्यारा लगे।

"अध्यात्मिक स्वाहाका अर्थ" [२] जो आहुति देने वाला यजमान है जो कहता है सो ठीक कहता है,

अन्दर, बहार, मन, वचन, कर्ममें एक हो, ऐसे जीवन बनानेके लिए स्वाहा-स्वाहा स्वर्गकी सीढ़ियां बनाता है [यह अर्थ स्वाहाके ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें ऋषिने किए हैं]

यज्ञ इष्ट कामधुक है। ममुष्यकी उन्नति संगति करणसे होगी और स्थिति दानसे और रक्षा देव पूजासे होगी, चाहे वह उन्नति शारीरिक हो, आत्मिक या सामाजिक हो।

गीतामें आया:–

सह यज्ञः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु इष्ट कामधुक॥

यज्ञ ही इष्ट कामधुक है। इससे उन्नति, स्थिति और रक्षा होती है। यज्ञका देवता भी इन्द्र है हाथकी अंगुलियोंके संगठनसे सेवा हो सकती है, दान भी हाथ करते हैं और देवपूजा भी हाथ ही करते हैं। जहां "स्वार्थ" होगा वहां संगतिकरण न होगा। जहां लोभ "कृपणता" होगी वहां दान न होगा। जहां "अहंकार" होगा वहां देवपूजा न होगी। इसलिए स्वार्थ, अहंकार, कन्जूसीको अर्पण करने पर ही यज्ञ इष्ट कामधुक बनेगा।

सेठ–यज्ञ तो उत्तम श्रेष्ठ कर्म है इसका फल तो नष्ट नहीं हो सकता।

प्रभु आश्रित–यज्ञ कर्म श्रेष्ठतम है। श्रेयानि बहु विध्नानि–भी कहा है। इस यज्ञके तीन शत्रु हैं, जो नरक में ले जाने वाले हैं। उदाहरणसे समझो। जैसे किसान खेती बोता है तो भूमिको पहले आर्द (पोला) करता है ऐसे याजक अपने मनोभूमिको आर्द करे, कठोरता निकाल दे। फिर जब किसान बीज बोता है तो कभी नीचेसे मूला (कीड़ा) लग जाता है तो वह उगने नहीं पाता अथवा बढ़ने पकने नहीं पाता ऐसे "लोभ कृपणता" यज्ञके लिए मूला हैं, कृपणता कीड़ा है जो खा जाता है। फसल पक जावे और ऊपरसे ओले पड़ जावें तो सारी फसल नष्ट हो जाती है ऐसे ही यज्ञमें "हिंसा, क्रोध, द्वेष वृत्ति" यजमानके पूर्ण किये यज्ञको नष्ट कर देती हैं।

(३) जैसे गेहूँ विकृत होकर कञ्जुआ (छिड़कड़ी) बन जाती है ऐसे "काम वासना" वाले कामी वृत्ति मनुष्यके यज्ञके फलको विकृत कर देती है, इसलिए याजकको इन बातोंसे सावधान रहना चाहिए।

सेठ–फिर तो यज्ञ कराना भी बड़ा "कठिन" काम हुआ। मैं तो समझता था कि यज्ञसे जब सब कुछ मिलता है तो शान्ति भी मिलनी कठिन नहीं।

प्रभु आश्रित–प्यारे! वेद तो प्रतिज्ञा करता है कि यज्ञसे शान्ति मिलती है।

यजुर्वेद अध्याय ३८, मन्त्र ११।

दिविधा इमं यज्ञमिमं यज्ञ दिविधाः।
स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः॥

भावार्थ—यजुर्वेदके पूर्ण अथवा भागसे यज्ञ करनेसे शान्ति प्राप्त होती है। कब ? जब हम उस यज्ञ अग्निका संग करें। जैसे विद्वानके संग से, उनके भाषण हमारे कान सुनते हैं और हम उन उपदेशोंको ग्रहण धारण करते हैं तो लाभ मिलता है और शान्ति प्राप्त होती है। यदि ग्रहण न करें और केवल मात्र श्रवण ही करें तो कर्णरसके अतिरिक्त और लाभ नहीं होता। ऐसे ही यज्ञ करनेसे याजकको बहुत लाभ होता है। जब उसको आंखें यज्ञकी शिक्षाको देखे और समझें और धारण करे। श्रवण किए हुए उपदेश सारे याद नहीं रहने परन्तु देखे हुए (साक्षात किए हुए) सब याद रहते हैं उनका प्रतिबिम्ब सीधा मस्तिष्क पर पड़ता है।

अग्निका संग क्या उपदेश देता है ?

सर्व प्रथम वह अपने संग आए पदार्थका खोट निकाल देता है। धुंआ तत्काल निकलता दिखाई देता है और वह धूम्र (धुंआ) कई प्रकारका होता है कभी खाकी, कभी कृष्ण, कभी अर्ध कृष्ण, कभी श्वेतता लिए हुए। यह सब भिन्न-भिन्न वर्ण हलके, फीके और गूढ़े

उसके विकारोंको जनाते हैं। फिर ज्यों-ज्यों घृत डालते हैं वह प्रचण्ड अग्नि उसके धूम्रको विलिन (अथवा आवेष्टित) करके प्रकाश ही प्रकाश कर देता है और अग्नि शुद्ध करके हविको समस्त संसारमें समरूपसे कर देता है ऐसे यज्ञ करने वालेको उपदेश ग्रहण करना चाहिएकि उसके अन्दरसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का धूम्र अन्धकार विकार निकल जावे, निकलना चाहिए। जिस प्रकार धूम्रके निकलनेसे नेत्रोंसे अश्रु बहने लगते हैं और नासिकासे मल उखड़ता है छींक आने लगती है, कण्ठ भर जाता है इससे भी मल निकलने लग जाता है। समस्त शरीर व्याकुल हो जाता है ऐसे याजकका विकार, दुर्बलताओंका दर्शन, पश्चात्ताप, रुदन, अतिव्याकुलता, आत्मग्लानि, उसे दूर हटानेकी साधना अपने आप बन जाती है। इन सबका फिर स्वाहा करनेसे, सच्चे हृदय से करनेसे विकार निकल जाता है। अत्यन्त श्रद्धा भक्ति बढ़ जाती है। विकार सब दूर होकर शान्त कर देता है और अन्दर प्रकाश कर देता है। भूल यह हैकि हवन करने वाला मनुष्य इन देवताओंका संग जल, वायु अग्नि का नित्य करता है परन्तु उनके गुण सत्का ग्रहण नहीं करता। तम ही ग्रहण करता है। अग्निका तमोगुण दाह करना है, वह मनुष्य दूसरोंके हृदयोंको जला देता है। जलका तमोगुण डबोना, वह मनुष्य दूसरोंको डुबोता

ही रहता है अपने स्वार्थके कारण। वायुका तमोगुण उखाड़-उखाड़ देना—वह मनुष्य अहँकारके कारण दूसरों को बरबाद करनेमें लगा हुआ है।

याजक यज्ञाग्निसे दिविधा दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करे तो अन्तःकरण शुद्ध निर्मल हो जावे और संसारका उपकार करने लग जावे तब शान्त ही शान्त हृदय हो जावे।

सेठ—महाराज ! हम लोग गृहस्थी हैं, व्यापारी सौदागर हैं हमें तो जब सूझती है अपनी वृद्धिकी सूझती है। ऊपर-ऊपर से मुक्ति भी चाहते हें अगर सस्ती मिल जावे। आम प्रचलित बात है जब माघ मास आता है तो कहते हैं तिलका दान करो, तिलका स्नान करो, तिलका यज्ञ करो, माघका स्नान करो। तिलका माहात्म्य कोई है भी अथवा ऐसे ही प्रचलित हो गया है ?

प्रभु आश्रित—जो चीजें प्रचलित हैं उनकी खोजकी जावे तो कुछ न कुछ तो वास्तविकता निकल आयगी। सरदीकी ऋतु होती है। पौष माघ हेमन्त ऋतु गिनी गई है। इस ऋतुमें अग्नि अन्तर मुख होती है। गरमी पैदा करनेकी, गरम पदार्थ खानेकी जरूरत होती है। अब आपको यों समझाता हूं। यज्ञमें यदि यज्ञ भावसे इन्द्र देवताकी प्रसन्नता अभीष्ट हो तो सब प्रकारका ऐश्वर्य

मिलता है और मुक्ति तक भी। माघ मासमें लोग तिल दान, तिल स्नान, तिलका यज्ञ करते हैं। जैसे तिलका छिलका अग्निमें पड़नेसे तत्काल जुदा होकर भुन जाता है ऐसे याजकका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। तिलमें घृत तथा शहद मिलाकर हवन करने वालेके शहद वाणी को और गोघृत बुद्धिको पवित्र करता है, ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ४६ मन्त्र ११–

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवाँ यवेन क्षुधं पुरूहूत विश्वाम्॥

गोदुग्ध पीने वालेकी कभी अमति दुर्मति नहीं होती। जैसे क्षुधा निवृत्ति करने वाला संसारमें हितकारी होता है। कहते हैं जैसा अन्न वैसा मन। जैसा पानी (जल) वैसी वाणी, जैसी घी, वैसी धी (बुद्धि)।

समिधाओंका प्रभाव

वर्णके भावसे समिधाओंका भी प्रभाव होता और और प्रत्येक वेदकी समिधा भी जुदा-जुदा है। ब्राह्मण भावसे आहुति देनी हो तो ब्राह्मण वर्णकी, क्षत्रिय भाव से देनी हो तो क्षात्र वर्णकी, वैश्य भावसे देनी हो तो वैश्य वर्णकी और कृषक लोग अथवा कृषकोंके लिए यज्ञ करना हो तो कैरकी समिधा होनी चाहिए। ऋग्वेदके यज्ञमें ब्राह्मण वर्ण पीपल, पलाश, बड़ आदिकी, यजुर्वेद

के यज्ञमें आम, गुलर, बेर आदिकी अथवा जण्डी, कैर वेद, सामवेदके यज्ञमें सर्व प्रकारकी शूद्र वर्ण समिधाको छोड़ कर। जैसे कीकर, सरस आदि शूद्र वर्ण हैं।

समिधाके भावसे उसी प्रकारकी सन्तान होगी, यदि गर्भवती स्त्री इस प्रकारसे आहुति दे जैसे सी--मन्तोनयन संस्कारमें तिल, मूंग, चावलकी खिचड़ी बना उससे आहुति दी जाती है और मुख दिखाया जाता है उसका फल विशेष है ऐसे तिलकी आहुतिका महत्व विशेष है।

इन्द्रका सखा बननेके लिए पापी, अदानी, कञ्जस अनाग्नि होकर पूजा नहीं करनी चाहिए। सखा तब बनता है जब उसे स्मरण करने वाले पापी कृपण न हों और जो अग्नि होत्र नहीं करता, वह भी उसे सखा बनने में स्वीकार नहीं करता। न पापासो मनामहे नाराशंसो न जल्हवा।

oooo

पैंतीसवीं झाँकी

यज्ञके दो प्रकार के फल

सेठ—"उद्बुध्यस्वाग्ने" मन्त्रमें दो प्रकारका यज्ञ लिखा है, दोनों करने चाहिए। दोनोंका फल एक जैसा है अथवा पृथक्-पृथक्।

प्रभु आश्रित--इष्ट और पूर्त्त दो प्रकारके यज्ञ हैं। पूर्त जो इस लोक में प्राणियोंकी न्यूनता आवश्यकताओं को पूरा करे, दूसरा इष्ट जिसका सम्बन्ध नित्य आत्मासे है (विस्तारसे इस विषय पर 'यज्ञ रहस्य' प्रथम भाग पढ़िये)

"पूर्त्त कर्म" से प्राण बलवान होता है, नाम, यश, और उत्साह बढ़ता है। "इष्ट कर्म" से मन बलवान और जागृत होता है। सत्य और तपसे और वेद प्रचार रक्षासे आत्मा जागृत होती हैं। उन्नत शुद्ध और पूर्ण होती हैं।

सेठ--आपने पीछे कहा कि यज्ञ प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंकी शिक्षा देता है, उनका क्या चिह्न है ?

प्रभु आश्रित--प्रभु प्रेरणा अथवा लोक प्रेरणासे लोक हितके लिए यज्ञ कर्म करना निवृत्तिका सूचक है। उसका चिह्न यह है कि वह कर्म सफल हो या असफल, उसमें याजकको दुःख और आसक्ति नहीं होती और जिस शुभ कर्ममें मनुष्य स्वयं सङ्कल्पसे लोकहित समझकर करे उसमें प्रवृत्ति होती है। उसका चिन्ह है कर्मकर्त्ताको उसमें आसक्ति हो जाती है। सफलता में प्रसन्नता और असफलतामें दुःख प्रतीत होता है।

सेठ--एक बात बताइए, अग्नि तो कहीं भी जले अपने गुणको हर जगह प्रगट करती है, होम अग्निमें क्या कोई विशेषता है ?

प्रभु आश्रित--अग्नि तो चूल्हे की हो अथवा भड़भूञ्जे की, हलवाईकी हो अथवा इञ्जनकी, अग्निका अर्थ है आगे ले जाने वाली, आगे रहने वाली। कार्यकर्त्ता माता भोजन बनवाए अथवा हलवाई मिष्ठान्न बनाए, अग्नि सामने होगी। यहां तक कि निकृष्ट अग्नि सिगरेटकी भी आगे ही सम्मुख रहती है। सब स्थान पर तापभी देती है, प्रकाशभी, परन्तु होम अग्निमें विशेषता यह है जो किसी और दान पुण्य आदि कार्योंमें नहीं है, कि "इससे ब्रह्मवर्चसकी" प्राप्ति होती है। ब्रह्मवर्चस वह शक्ति है जिसके प्राप्त होने पर वह याजकके लिए कवचका काम देती है। ब्रह्मवर्चसकी शक्तिसे बाह्य शत्रु विषयोंसे और आन्तरिक शत्रुओं काम, क्रोध आदि आक्रमण नहीं कर सकते। जैसे लैम्पको द्वारमें लटका दिया जाए तो भीतर भी प्रकाश और बाहरभी प्रकाश रहता है। यही ब्रह्मवर्चस मनुष्यको पापसे रक्षा करता हैं और प्रभु तक मिलाता है। होम-यज्ञोंमें अग्नि ऐसे प्रकाशको पैदा करती है जिसे वेदने उषाका नाम दिया है। सामवेद में १७५२ मन्त्र इस प्रकार आया है।

आ भात्यग्निरुष सामनी कमुद्विप्राणां देवयो वाचो अस्थुः।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना धर्ममच्छ॥

भावार्थ--सूर्य मानो उषाओंका मुखहो ऐसे प्रकाशित होता है। मेधावी विद्वान भक्त पुरुषोंकी इष्टदेव परमात्मा

तक पहुँचने वाली वेद मन्त्र-ध्वनियां उठने लगती हैं। हे अश्वि देवो ! प्राण और अपान एवं स्त्री पुरुषो ! हे देह रूप रथ पर आरूढ़ प्राण और अपान ! आप दोनों इस देहमें निम्न देशमें गति करने वाले होकर भी अब ऊपर आओ बराबर बढ़ते हुए ज्योति स्वरूप रसको साक्षात् करो। अथवा अग्निहोत्रको अग्नि उषाओंका मुख रूप होकर प्रकाशित होता है।

अर्थात् अग्निहोत्रकी अग्नि उषाओंका मुख रूप होकर प्रकाशित होता है परन्तु उस झलकका ज्ञान न होनेके कारण या प्रभु कृपा न होनेके कारण याजकको मनन बुद्धि पैदा नहीं करती। यज्ञनिष्ठ मनुष्यकी प्रभु स्वयं उस झलकका, उस प्रकाशका बुद्धि से विज्ञानमय कोषमें स्पर्श कराते हैं। चिन्ह इसका यह होता है कि यज्ञ करते समय कई बार बर्राक चिट्टी श्वेत प्रभात अथवा चांदीका रूप अग्निका हो जाता है (योग ध्यानमें भी बुद्धिमण्डलका दर्शन पूर्ण सात्विकताकी अवस्थामें ऐसा ही होता है) यज्ञ करने वाले तो बहुत हैं श्रद्धा से यज्ञ करते और प्रतिज्ञा रूप से यज्ञ करते हैं और बिना यज्ञ किए अन्न जलभी ग्रहण नही करते परन्तु उनको यज्ञनिष्ठ नहीं कहा जाता। "यज्ञ निष्ठ वह होता है जिसकी वृत्ति यज्ञमय बन गई हो। जो यज्ञको अपना जीवन यज्ञथय बनानेके लिये साधन बनाता है।

यज्ञका विध्वंस करने वाला 'क्रोध' है और यज्ञका अपमान करने वाला तिरस्कार करने वाला 'क्षोभ' है और यज्ञको निष्प्राण करने वाला 'मोह' है और निर्जीव बनाने वाला 'असत्य' होता है। "अतः यज्ञनिष्ठ वह कहलायगा जिसमें इसके विपरीत दैवी गुण होंगे।"

यज्ञमें श्वेत रंजित रूप उषा पैदा होती है। उसको यज्ञ कर्त्ता मनुष्य ध्यानमें रखे। यदि उस समय उसकी सुषुम्णा नाड़ी चल रही होगी तो तुरन्त मस्तिष्कमें प्रभाव कर जावेगी। उसकी बुद्धिमें उषाके गुणको प्रविष्ट कर देगी (योगमें ज्योतिष्मती प्रज्ञा उसे कहते हैं) यदि दाईं नासिका चल रही होगी तो प्रभाव स्पर्श न करेगा, यदि बाईं चल रही होगी तो "सावधान यज्ञकर्त्ता" उसे ग्रहण कर लेगा। चुनाँचि ऋत्विज लोग जो इस विद्याके जानकार हैं, यजमानका यज्ञ तब "आरम्भ कराते हैं जब उनकी बांई नासिका अथवा सुषुम्णा चल रही होती है।"

यह उषा बुद्धिमें आलस्यको दूर करती, उत्साह बढ़ाती है और शुभ कार्योंमें कर्त्तव्य कार्योंमें जाग्रत, आध्यात्मिक मार्गोंके लिए प्रकाश, पवित्रता देती, अज्ञान विषय वासनाओंका नाश करती है। अपनी-अपनी योग्यता अधिकार और प्रवृत्ति अनुसार।

सेठ–आपने कहा, यज्ञमें यज्ञ कार्य और यज्ञ विद्याको सफल न होने देने वाले क्रोध, लोभ, मोह और असत्य है, उनके कौन-कौनसे अशं हैं ?

प्रभु आश्रित–बाह्य कार्योंमें न्यूनाधिक अशंमें रहे हैं।

(१) "लोभमें"--यजमानमें संकोच, कृपण दृत्ति, और पुरोहितमें अन्न, धन वस्त्र आदिके ग्रहण करनेकी अधिक लालसा या श्रद्धालु यजमानको अपने स्वार्थके लिए रोचक रूपसे अन्ध विश्वासी बनाना।

(२) "क्रोधमें"–यजमानका अपने बड़प्पनके अहंकार में कठोर, अमर्यादित बर्ताव बोल चालका यदि पुरोहित अपने स्वार्थ अपूर्त्ति और उतावलमें असहनका वर्ताव करें।

(३) "असत्य"–अपना मान बढ़ानेके लिए मिथ्या भाषण।

(४) मोहमें कामजन्य मोह--जो मनुष्य दूसरेके शरीरके लिए कर्म करता है चाहे वह वेतन लेकर अथवा निःशुल्क परोपकार भावसे--उसके प्रतिकारमें जो अन्न धन आदि मिलता है वह सब जड़ है। और जो दूसरेकी आत्मा कल्याणार्थ कार्य किया जाता है यदि अन्नधन आदि सुख पूर्तिकी सामग्री प्रतिकार रूपमें मिलती है अथवा दी जाती है तो वह भी जड़वत है। उदाहरण-एक व्यक्ति नि.शुल्क विद्या दान देता है और विद्या लेने वाले यह समझ कर देते हैं कि हमारे बच्चोंको पढ़ाता

है, पढ़ाईके बदलेमें देते हैं अथवा एक यज्ञ कराने वाले को यज्ञकर्त्ता दक्षिणा देता है इस भावसे कि मेरा उसने यज्ञ कराया है दक्षिणा न दूं तो यज्ञ सफल न होगा अथवा पाप है तो वह भी जड़वत ही है। यदि विद्या निःशुल्क देने वालेको जिसे वह दान करता है देने वाला इस भाव से देता है या सेवा करता है कि विद्वान् है, ब्राह्मण है मैं क्षत्रिय वैश्य हूँ, सेवा करना मेरा धर्म है तो वह भेंट है और चेतन भाव है। यज्ञ कराने वालेको भी यजमान इस भाव से देता है कि विद्वान ऋत्विज ब्राह्मण है, सेवा करना मेरा धर्म है तो वह भी चेतन भाव है। दोनों धर्म भावसे दान किया गया है। ऐसे अन्नधनके प्रयोग से आत्मामें सात्विक वृत्ति पैदा होती हैं। प्रतिकारके भाव वाली व्यापारिक भावना राजसिक होती है।

सेठ---सकाम यज्ञोंकी सफलताका क्या चिन्ह तो स्पष्ट रूपसे प्रगट होता ही है परन्तु निष्काम यज्ञोंकी सफलताका क्या चिन्ह है ?

प्रभु आश्रित---वह चिन्ह है :---"देवान् यज्ञेन बोधय"।

१---(क) आन्तरिक दिव्य शक्तियोंका जाग्रत होना, विकसित होना जो सन्तोष और शान्ति प्रद अवस्थाको प्रगट करती है।

(ख) भावोंकी उज्ज्वलता अर्थात् मनका आर्द होना सर्वे भवन्तु सुखिनःकी भावनाका बार-बार उत्पन्न होना।

२---[क] अपने भीतरके छल कपटका अनुभव [उ] सत्यमें प्रीति और आदर।

[३] स्वार्थ विषयी समझ त्याग

[४] नम्रता---

जैसे व्यक्ति अपने हाथका ग्रास [हवि] अपने मुंह में न डालकर अग्निके मुखमें देकर समष्टि बन जाता है ऐसे 'इदन्नमम' कहने से मेरे तेरे पनको प्रभुके साथ मिला देता है क्रियात्मक रूपमें --चुनांचि अहंकारके त्याग या दूर करने पर व्यष्टिसे समष्टि जीवनकी प्राप्ति होती है आध्यात्मिक मार्गमें 'मन' ब्रह्मा, वाणी होता, चक्षु अध्वर्यु प्राण उद्गाता है"

(बृहदारण्यक उपनिषद्)।

छत्तीसवीं झांकी

यज्ञ कार्यों के भाग

सब यज्ञ कार्योंमें दो भाग बनते हैं एक सात्विक और दूसरा देवत्व भाग।

देवत्व भाग आत्माका भोजन है और शेष निकृष्ट

भाग शरीरके लिये राजसिक मध्यम भाग मनके लिए हैं।

स्वार्थ और अहम रहित होना यह देवत्व भाग है। यदि यज्ञ करते यह दो अवगुण रह जाते हैं तो समझो देवत्व भाग आत्मा को नहीं मिला वह सूखता जावेगा।

यज्ञकी वस्तु प्रेम है। बड़ोंका आदर, छोटोंको उत्साह देना, उठाना। जो ऐसा नहीं करता वह प्रेमके गुर नहीं जानता।

छोटोंको वह उत्साहित नहीं करता जिसमें कोई अपना स्वार्थ होगा और बड़ोंका आदर वह न करेगा जिसे अहंकार होगा। अहंकार और स्वार्थ ही दो यज्ञके विरोधी हैं। यज्ञ रूपमें प्रभुको उदारता–स्वीकार है, कृपणसे उसे घृणा है। वह स्वयं महान दाता है। जन्मसे ही मनुष्यको उसने उदारता प्रदान की। माताके स्तन झटके दूधसे भर दिए। बच्चा जब चाहे, दानका द्वार खुला है, कोई कृपणता नहीं, यही प्रभुका रहस्य है।

आर्य हिन्दू जातिमें आर्यत्व न आनेका कारण केवल यही है कि वह पुण्यके कार्य तो बहुत करते हैं परन्तु उसका देवत्व तत्व नहीं समझे। आत्माका भाग नहीं देते।

सेठ–यदि कोई निर्धन और कोई यज्ञ न करे वह ब्रह्म यज्ञही केवल करे तो क्या आपत्ति है ?

प्रभु आश्रित–पञ्च महायज्ञोंमें देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्व देवयज्ञ और अतिथि यज्ञ–यह चार ब्रह्म यज्ञकी सफलताके साधन हैं। पहले इनकी आवश्यकता बतलाई जा चुकी है। पितृ यज्ञ और बलिवैश्व देवयज्ञका सम्बन्ध तो संसारके प्राणियोंके साथ रहन-सहन और जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा देते हैं और देवयज्ञ अतिथि यज्ञका सम्बन्ध आत्माके साथ है जो परमात्माके समीप करता है। आन्तरिक दिव्य गुणोंको प्राप्त कराता है। वह दो यज्ञ धर्मात्मा बनाते हैं और यह दो यज्ञ जितेन्द्रिय बनाते हैं।

[२]

जगत् प्रतीक है:–

यह सब जगत् यज्ञका साधन है अर्थात् यज्ञमें ही प्रतीक रूपसे सारा जगत् मेंट होता है, तब यज्ञ बनता है। तब यज्ञ बनता है। संसार क्या है? जड़ और चेतन। जड़ जगतमें मनुष्य, पशु, (भूत), जङ्गल (बनस्पति) जल, धातु (खनिज पदार्थ) पर्वत तो यज्ञमें घृत, दुग्ध, शहद आदि तो पशुओंके प्रतिनिधि हैं, समिधा जङ्गलोंकी, अन्न फल, मेवे, ओषधि आदि वनस्पतिकी और दक्षिणा का रुपया स्वर्ण, रजत आदि (खनिज पदार्थों) के प्रतिनिधि हैं। यह हुआ जड़ जगत् और चेतनमें जीव और परात्मा। मनुष्य ही यज्ञ कर सकते हैं। यजमान

जीव और परमात्माका प्रतिनिधि वेद ज्ञान, पुरोहित ऋत्विज आदि द्वारा यजमें विद्यमान होता है अर्थात् यज्ञ एक ऐसी प्रतिक है जिसमें सारा जगत और जगदीश्वर सम्मिलित हैं।

सेठ–यजुर्वेदमें जो मन्त्र आता कि देवताओंने यज्ञ स्वरूप परमात्माकी यज्ञ द्वारा पूजाकी।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥

यजु०–३१

प्रभु आश्रित–यज्ञ स्वरूप प्रभुकी पूजा यज्ञ द्वारा कैसे देव ऋषियोंने की?

भौतिक यज्ञ जो अग्निमें होम द्वारा किया जाता है, योग चित्त होकर यज्ञ करने वाले देवताओंके गुण, कर्म, स्वभाव सम्मुख आ गए। इन्हीं गुणोंको धारण कर उन्होंने प्रभुकी मानस पूजाकी। वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी उनके प्रत्यक्ष हुए।

वायुसे दयाका स्वभाव, जलसे न्यायका, अग्निसे सत्य का, पृथ्वीसे पालन और आश्रय देनेका कर्म प्रतीत किया। दया विना प्रतिकारके होती है और सब प्राणियोंके लिए समरूपसे होती है। ऐसे वायु प्राणि मात्रको समरूपसे बिना किसी प्रतिकारके अपने आप जीवन दान दे रहा है। न्यायसे कर्मानुसार फल न्यूनाधिक प्राप्त होता है।

जल कहीं मीठा, कहीं खारा, कहीं कम कहीं अधिक संसारमें देखा जाता है। खेतियां जलसे हरी भरी होती हैं। लोग खेती बोते हैं कहीं जल वर्षा होती है कहीं नहीं होती। जिस कृषकसे पूछो आपकी खेती कैसी है? तो उत्तर है, 'कर्मो धर्मी' अर्थात् अपने-अपने कर्मानुसार।

अग्नि सब वस्तुओंको वैसा प्रत्यक्ष करती है जैसी वह वस्तु होती है। क्या आकार वर्णसे, क्या सुगन्ध दुर्गन्धसे। अग्निमें मिर्च डाल दो तो बिना नेत्रोंके देखे उसकी गन्ध दूर-दूर तक मिर्चका नाम ही प्रत्यक्ष करा देगी और यदि चन्दन डाल दें तो चन्दनका नाम सबके मुख पर स्वयं आ जायेगा।

पृथ्वी तो सबकी आश्रय दाता है और सब प्राणियों की पालक माता है। यही उसका कर्म है। जिस देवता ने प्रभूके गुण, कर्म, स्वभावको धारण किया, यही पूजा यज्ञ रूप कहलाती है। इसीसे ही मोक्ष (नाकः) को प्राप्त किया और यही कर्म मनुष्योंके लिए लिपायमान नहीं बने और दूसरोंको इन गुण कर्म स्वभावका उपदेश किया। इससे वह नर कहलाए

'नरमते इति नरः', नयतीति नरः'

जो रमण न करे, आसक्त न होवे, जो दूसरोंको मार्ग दिखाए वह नर है।

सेठ---हवन मन्त्रोंमें दो प्रकारके मन्त्र हैं, एक तो वह जिनमें 'स्वहा' के साथ 'इदन्नमम' है और दूसरे वह जिनमें केवल 'स्वाहा' है, इनका क्या रहस्य है ?

प्रभु आश्रित---कई विद्वान् तो ऐसा बतलाते हैं कि जहां 'इदन्नमम' हैं वहां घृतकी आहुति अवश्य देनी चाहिए। जहां केवल 'स्वहा' है वहां सामग्री घृत मिश्रित से देनी चाहिए।

(२) जहाँ 'इदन्नमम' है वह आहुती संसारके लिए है और जहां केवल 'स्वाहा' है वह अपने लिए है।

(३) यों समझो आधिदैविक रूपसे विचार किया जावे तो यह संसार दो भागोंमें विभक्त है, मैं और मेरा एक भाग, दूसराभाग मेरे अतिरिक्त समस्त संसार।

गूढ़ दृष्टिसे देखोगे तो इन दोनोंमें बहुत कुछ समानता पाई जावेगी, आरंभ से मन्त्रोंके अर्थ दैविक और परमेश्वर परक दोनों है।दोनों भावोंको मिला कर देखें।

संसारके तीन भाग हैं, व्यक्ति, जगत और विश्व। व्यक्तिमें तीन प्राण (जीवन शक्तियां) मुख्य हैं। वाह्य जगतमें अग्नि, वायु और आदित्य (सूर्यका प्रकाश) वही काम करते हैं और विश्वमें परमात्मा, तीनों काम कर रहे हैं।

अब और ध्यान दो। व्यक्ति तो जगतका भाग है और जगत् विश्वका भाग है। इसलिए विश्वकी जीवन शक्ति से जगत्को और जगत्से व्यक्तिको जीवन लाभ होता है। इसलिए इन तीनोंमें अनुकूलता और सहयोगका होना अत्यावश्यक है। और भी ध्यानसे देखो।

सूर्यका प्रकाश हम तक वायु द्वारा पहुंचता है। आकाशका शब्द भी वायु द्वारा पहुंचता है। पृथ्वीका गन्ध, शीतोष्णका भान भी वायु द्वारा ही पहुंचता है, सुतराम इस ब्रह्माण्डमें वायु ही सब विषयोंका वाहक है ऐसे ही पिण्डमें प्राण है जिसके द्वारा सब इन्द्रियां विषयोंको ग्रहण करती हैं। इस वायुको शुद्ध करनेसे सब संसारके प्राणियों का भला होता हैं। 'इयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' यज्ञ हवन ही एक साधन है जो वायुको शुद्ध करता है जिससे जल, अन्न पवित्र होते हैं। अन्न जल पिण्डके प्राणका भोग अथवा क्षुधा तृषा मिटाता है। शरीरसे आत्माका सम्बन्ध जोड़ने वाला भी प्राण है। प्राण निकल जाए तो सूर्यका प्रकाश, आकाशका शब्द, पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, अग्निकी गरमी, शरीरके पास ब्रह्माण्डका वायु पहुंचा भी दे तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए यजमान आहुतियां केवल अपने प्राण, अपान, व्यानकी शुद्धिके लिए ही नहीं, किन्तु जगत्के प्राण, अपान, व्यान अर्थात् अग्नि,

वायु, आदित्यके लिए अर्पण करता है । इसलिए कहता है 'इदमग्नये इदन्नमम' क्योंकि वह जानता है कि मेरी शुद्धि बाह्य जगत्की शुद्धि पर निर्भर है । और जगत्का सम्बन्ध विश्वसे है ।

विश्व वह है जिसमें दृश्यादृश्य दोनों जगत् रहते हैं । 'भूर्भुवः स्वः' तो सब जानते हैं परन्तु इनसे ऊपर 'महः जनः तपः सत्यम्' लोकमें क्रमशः यों समझो, परमेश्वरने [सत्यं] प्रकृतिमें गति दी तो महतत्व [तपः] उत्पन्न हुआ । महतत्वसे समष्टि अहंकार [जनः], उत्पन्न हुआ समष्टि अहंकारसे पञ्च तन्मात्र । [महः] सूक्ष्म जगत् उत्पन्न हुआ । यह सब अदृश्य जगत् हैं । विश्व में कार्य कारण दोनों शामिल हैं ।

सेट—यह समझ तो आ गई कि शरीरका सम्बन्ध जगत्के साथ है और जगत्का विश्वके साथ परन्तु विश्व अथवा अदृश्यके लिए हवनका क्या लाभ ?

प्रभु आश्रित—इस स्थूल शरीरको भोग मिलता है बाह्य जगत्के देवताओंसे । यह स्थूल आधीन है सूक्ष्म शरीरके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारके । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारको भी तो भोग मिलना चाहिए, वह मिलेगा अदृश्य जगत्से । शरीर प्रत्यक्ष है तो उसके देवता भी प्रत्यक्ष हैं । मन, बुद्धि, चित्त, अहकार अप्रत्यक्ष हैं । उनका सम्बन्ध अदृश्य से है ।

सेठ—समष्टि जगत् और वह ब्राह्मी जगत् तो पवित्र है फिर हमारे मन, बुद्धि पवित्र क्यों नहीं होते यदि उनसे भोग प्राप्त होता है तो ?

प्रभु आश्रित—जैसे स्थूल शरीर नेत्रमें विकार हो तो सूर्यका प्रकाश ग्रहण नहीं कर सकती। जिह्वामें विकार हो तो स्वादको यथार्थ रूपसे नहीं जान सकती। ऐसे ही जब मन, बुद्धि विकारी हों तो वह भी अदृश्य पवित्र जगत् के भोगको ग्रहण नहीं कर सकते।

सेठ—ठीक-ठीक समझ आ गई। अब हवन मन्त्रोंके वह अर्थ बता दें जो समझमें बैठ जावें। ब्रह्मचारी क्या समझ कर आहुति, गृहस्थी क्या समझकर और वानप्रस्थी क्या समझकर आहुति दे।

प्रभु आश्रित—जहां तक पहले भागमें आ चुका है तो वह आपने जान लिया अब दूसरा भाग हवन मन्त्रोंसे शुरु होता है।

ब्रह्मचारी गुरुकुलोंमें रहते थे, भिक्षाका अन्न खाते थे, भिक्षा गृहस्थियोंसे लाते थे और गुरुके आगे धरते थे वह सबको बाँट देता था।

सामान्य होम आहुति---जिसे आघारावाज्या आहुति कहते हैं पिघले हुए घीसे देनी चाहिए।

अग्न्ये स्वाहा—उत्तर दिशामें। शिष्यसे गुरु उत्तर है।

अग्निका अर्थ गुरु है। गुरुके निमित्त यह आहुति है। इदन्नमय—मेरे लिये नहीं।

[२] सोमाय स्वाहा—दक्षिण दिशामें। शिष्यको गुरु सौम्य नामसे पुकारते हैं, वह इदम् सोमाय" वह अपने निमित्त देता है—इदन्नमम—मेरे लिए नहीं।

[३] प्रजापतये स्वाहा—मध्यमें यह आहुति दी जाती है। प्रजापति गृहस्थीके घरसे लाता है, उसके निमित्तसे आहुति देता है, मेरे लिये नहीं—इदन्नमम।

[४] इन्द्राय स्वाहा—यह आहुति भी मध्यमें दी जाती है। राजाकी सत्तासे रक्षा होती है, इसलिए कहता है 'इदमिन्द्राय' यह राजाके निमित्त है 'इदन्नमम' यह मेरे लिए नहीं।

(ख) अग्नि, चन्द्र, सूर्य और विद्युतकी अग्नि सोम प्रजापति इन्द्र विद्या (ज्ञान) प्राप्त करनेके निमित्त भी ब्रह्मचारीका भाव हो सकता है।

गृहस्थीके भाव---गृहस्थीको सब पदार्थ उपार्जन करने हैं। दो प्रकारके पदार्थ हैं, उग्रगुण युक्त और शान्त गुण युक्त। जितने भी उग्रगुण युक्त पदार्थ हैं वह सब अग्नि स्थानी और जो पदार्थ शान्त गुणयुक्त हैं वह सब सोम

स्थानी। इसलिए इन गुणोंको धारण करने वाले जितने पदार्थ हैं उनके निमित या उन दोनों उत्तम गुणोंकी प्राप्ति के लिए यह आहुतियां हैं क्योंकि उनका शरीर के साथ सम्बन्ध है। इसलिए यह दो आहुतियां "अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा" देता है।

उत्तर दिशा अग्नि प्रधान है और दक्षिण दिशा जल प्रधान है। अग्नि और जल गृहस्थीकी बरकत हैं। इसीसे उसकी बुद्धि है इसलिए उत्तर दक्षिण दिशामें देता है। मध्यकी दो आहुतियां संसारमें पालक और तेजस्वी दानी ऐश्वर्यशाली बढ़ें, उनके निमित्त देता है।

बानप्रस्थीका मार्ग आत्मकल्याणका मार्ग है, वह सब परमेश्वर परक है और उसे इन चार मन्त्रोंकी आहुति लिखे अनुसार करनी चाहिए।

सेठ---अब प्रातः कालके मन्त्रोंकी आहुति घृत, सामग्री को कैसे दी जाए।

प्रभु आश्रित---दो व्यक्ति हों तो एक घृतकी और एक सामग्रीकी डाले। एक व्यक्ति इकला हो तो एक हाथसे घृत दूसरेसे सामग्री डाले ऐसा न कर सके तो जिनमें 'इदन्नमम' है वह घृतसे और जहां केवल 'स्वाहा' है, वह सामग्री और घृत मिश्रितसे आहुति दें।

मन्त्रोंके अर्थ :---

१. ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।

अर्थ---सर्वव्यापक, सर्व प्रकाशक, प्रकाशकोंका प्रकाशक, आत्माओंकी आत्मा उस जगत प्रकाशक सूर्य--प्रभुकी प्रसन्नताके लिए यह आहुति देता हूँ ।

अथवा---भक्त कामना करता है कि भगवन् ! संसारमें कोई ज्योति है तो वह सूर्यकी है और जहां ज्योति है वहां सूर्य है, अतः मुझे सूर्यकी सी ज्योति प्रदान कर ।

२ ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।

अर्थ---सूर्य-विज्ञान स्वरूप प्रभु (वर्चः) तेजके देनेवाला है, (वर्चःज्योति) वह तेज ब्रह्म ज्ञान-प्रकाशका साधन है, [स्वाहा] यह बात १६ आने सत्य है ।

३.ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्योज्योतिः स्वाहा ।।

अर्थ---वह ज्योति स्वरूप प्रभु सूर्यका भी सूर्य है, उसी ज्योति स्वरूपकी प्राप्तिके लिए यह आहुति है ।

४. ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।

अर्थ–[देवेन सवित्रा सजूः] अपने दिव्य प्रकाश और प्रेरणा शक्तिके साथ [उषसा इन्द्रवत्या] अति

चमकीली और रंगीली ऊषा प्रभाके साथ [सजूः] साथ [सूर्य जुषाणः वेतु] सूर्य नारायण इस आहुतिको प्राप्त हों। इस प्रकार यह आहुति सुहुत हो।

५. ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।
इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम ॥

अर्थ–समस्त संसारके प्राण भौतिक अग्निकी अनुकुलताके लिए तथा प्राण वायुकी शुद्धिके लिए यह आहुति है।

६.ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
इदं वायवेऽपानाय इदन्नमम् ॥

अर्थ–दुःख विनाशककी प्रसन्नता तथा समस्त संसार को जीवन प्रदान करने वाली वायुकी पवित्रता और अपान वायुकी शुद्धिके लिए यह सुन्दर आहुति है।

७. ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥

अर्थ–सुख स्वरूप, शरमात्माकी प्रसन्नताके लिए, तथा सूर्यकी किरणोंकी अनुकूलता और व्यान वायुकी शुद्धिके लिए यह आहुति है।

८. ओं भुर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्नमम।

अर्थ—समस्त संसारके जीवनदाता, दुःखहर्ता, सुखदाता परमेश्वरकी प्रसन्नता, अग्नि, वायु और सूर्यकी किरणों की अनुकूलता तथा प्राण अपान और व्यानकी शुद्धिके लिए यह आहुति है।

९. ओं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥

अर्थ---जल समान शान्तिदायक, प्रकाश स्वरूप, आनन्द रसके देने वाला, मुक्ति प्रदाता, सबसे महान् प्राणाधार, दुःख विनाशक, सुखस्वरूप, सर्वरक्षक परमेश्वर की प्रसन्नताके लिए यह आहुति है।

१०. ओं यां मेधाँ देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।

यजु० ३२-१४

अर्थ--हे प्रकाश स्वरूप ज्ञानके भण्डार प्रभु! जिससे मेधा बुद्धिसे विद्वान् और पितर लोग तेरी उपासना करते हैं, वही धारणावती बुद्धि आज मुझे प्रदान करो।

११. ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा। यजु० ३०-३

१२. ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा । यजु० ४०-१६

[इन दोनों मन्त्रों [११-१२]के अर्थ पीछे आ चुके हैं]

सांयकालके मन्त्र

१. ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।

२. ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।

६. ओं अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा ।

नोट--इन मन्त्रोंके अर्थ प्रातः कालके मन्त्रोंके समान हैं, केवल भेद इतना है कि दिनको सूर्य है और साँयको अग्नि है । तीसरी आहुति मौन होकर देनी चाहिए ।

४. ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।

अर्थ--अग्नि अपने दिव्य प्रकाश तथा जगत्की उत्पादक तथा प्रेरक शक्तिके साथ चमकती हुई तथा सजी धजी रात्रिके साथ इस आहुतिको प्राप्त हो ।

शेष मन्त्र ५से १२ तककी आहुति देवें इनके अर्थ ऊपर आ चुके हैं ।

ग्रेट प्रिंटिंग द्वारा सम्राट् प्रेस, दहलो-6 ।

॥ ओ३म् ॥

विशेष वक्तव्य

एक सज्जनः—महाराज ! दैनिक हवन किस प्रकार करना चाहिये ? कृपा करके समझा दें।

महात्मा—निम्नलिखित पद्धति से दैनिक हवन करना चाहिये ?

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः ।

+ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥ यजु० अध्याय ३०। मन्त्र । ३॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स

+हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता ! समग्र ऐश्वर्ययुक्त ! शुद्ध स्वरूप ! सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हमको प्राप्त कीजिये ॥१॥

जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य्य, चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत् के

दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ यजु० अ० १३ मन्त्र ४॥ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ यजु०अ० २५ मन्त्र१३॥ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुश्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ यजु० अ० २३। मन्त्र ३॥ येन द्यौरुग्रा पृथिवी

उत्पन्न होने से पूर्व वर्त्तमान था, जो इस भूमि और सूर्य्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ॥२॥

जो आत्म-ज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने हारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुख स्वरूप सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

जो प्राणवाले और अप्राणि रूप जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम उस सुख स्वरूप सकलै-

च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।५। यजु० ३२ । मंत्र ६॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ ऋ० म० १० । सू० १२१ । मन्त्र १०॥ स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।७

ऐश्वर्य्य के देने हारे परमात्मा के लिए अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें ॥४॥

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव सूर्य्य आदि और भूमि का धारण, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण, जिस ईश्वर ने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें ॥५॥

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! आप से भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें उस उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे जिससे हम लोग धन ऐश्वर्यों के स्वामी होवें ॥६॥

हे मनुष्यो ! वह परमात्मा अपने लोगों को भ्राता के समान

यजु० अ० ३२। मन्त्र १०। अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥ यजु० अ० ४०। मन्त्र १६॥

इन मन्त्रों को उच्चारण करके पृष्ठ पर लिखी हुई जैसी प्रार्थना करें।

प्रार्थना मन्त्र तथा प्रार्थना परिवार में तथा समाज में बैठे हुए एक आदमी को उच्च स्वर से पढ़ने चाहियें। बाकी सज्जनों को ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए।

सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कामों को पूर्ण करने हारा सम्पूर्ण लोकमात्र और नाम, स्थान और जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु आचार्य राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें।।७।।

हे स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिस से सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण ज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त करायें और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिए। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।।८।।

नीचे स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण के मन्त्र भी दिए जाते हैं। इन्हें नित्य पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि पढ़े जावें तो भी कोई हानि नहीं। जब विशेष हवन करना हो तो सब को उच्च स्वर से पढ़नें चाहियें।

अथ स्वस्तिवाचनम्

—:०:—

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ ऋ० मं० १ सू० १। मंत्र १।९॥ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः, स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥ स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविब। पुनर्ददता घ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥७॥ ऋ० मं० ५।

सू० ५१ मं० ११-१५ ॥ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ ऋ० मं० ७। सू० ३५। मं० १५ ॥ येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥९॥ नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ज्योतिरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥ सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिविक्षयम् । तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥११॥ को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । कोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥ येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥ य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥ भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् । अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

त्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् । वीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्ती मारुहेमा स्वस्तये॥१६॥ विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभि-ह्रुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥ अपामीवामप विश्वा मनाहुतिमपारातिं र्दुविदत्रामघायतः । आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः र्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥ अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । यमादित्यासो नयथा सुनी-तिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥ यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हि ते धने । प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥ स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥ स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्ण स्वस्त्यभि या वाममेति । सा नो अमासो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥२२॥ ऋ० मं० १० । सू० ६३ ॥मं० ३-१६ ॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजा-वतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥ यजु० अ० १ मन्त्र १ ।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्‌वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥२४॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तुजीवसे ॥२५॥ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसदवृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥१८॥ यजु० अ० २५ । मन्त्र १४ । १५। १८। १९ २१ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता
३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सत्सि बर्हिषि ॥२९॥ त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां
३ २ ३ २ ३ १ २३ १ २
हितः देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ साम० पूर्वार्चिके प्रपा० १ । मन्त्र १ । २॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः । वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥ अ० कां० १ । अनु० १ । सू० १ । मन्त्र १ ।'

इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्तिप्रकरणम्

——:o:——

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रा वरुणा रात हव्या । शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शंन इन्द्रापूषण वाजसातौ ॥१॥ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्न पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंस शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥ शं नो धाता श धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदस बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥ श नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विन शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवा वातः ॥४॥ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरि दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शंनो रजस स्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥ शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शम दित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शंनो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शंनस्त्वष्ट ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः । शं नः स्वरूणां मित भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥ शं नः सूर्य उ चक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं नः पर्व ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥ शं

अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥ शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं न पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥ शं न सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः शं न ऋभवः सुकृताः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥ शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः । शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१५॥ ऋ० मं० ७ सू० ३५ । मं० १-१३ ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥ शं नो वातः पवतां शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥ अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नि भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुवि‌ताय शंयोः ॥१६॥ शं

देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभि स्रवन्तु नः ॥१७॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८॥ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥ यजु० अ० ३६ । मं० ८ । १० । ११ । १२ । १७ । ॥२४॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२०॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२१॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२३॥ यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥ सुषार

थिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते ऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥ यजु० अ० ३४ । म० १-६ ।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥ साम० उत्तरार्चिक० प्रपा० १ म ३॥ अभयं न करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तराधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥ अथर्व० कां १६, सू० १५, मं० ५-६ ॥

इति शान्ति प्रकरणम्

अथ आचमनमन्त्राः ॥

(१) ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

(२) अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

(३) ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

तीन आचमन कर। (विधि यज्ञ रहस्य सातवीं झांकी में देखें)

अथ इन्द्रियस्पर्शमन्त्राः ॥

ओं वाङ् मऽआस्येस्तु । इस मन्त्र से मुख,

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । इस मंत्र से नासिका के दोनों छिद्रों

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । इस मन्त्र से दोनों आँखों,

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । इस मन्त्र से दोनों कान,

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु । इस मन्त्र से दोनों बाहु,

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । इस मन्त्र से दोनों जंघाओं और,

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।

पारस्कर गृ० कण्डिका ३। सू० २५॥

इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके मार्जन करना, ('मे' शब्द पर जोर दें।) विधि यज्ञ रहस्य ग्यारहवीं झाँकी में देखें) समिधा चयन वेदी में करें। पुनः—

ओं भुर्भुवः स्वः । गोभिल गृ० प्र० १ । खं० १। सू० ११॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे कपूर लगा किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी-छोटी समिधा लगा के यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे, वह मन्त्र यह है:—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥१॥ यजु० १ अ० ३ । मं० ५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करें।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयंच। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत। यजु० अ० १५, मन्त्र ५४॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबो उनमें से नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे, वे मन्त्र ये हैं—

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥१॥

(इस मन्त्र से आत्मोन्नति की भावना करता हुआ पहली समिधा चढ़ावे)।

ओं समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये-इदन्नमम ॥२॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥३॥

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मंत्रों से (मन की उन्नति के लिए भावना करता हुआ) दूसरी समिधा चढ़ावे।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम।

यह तीनों मन्त्र यजु० अ० ३ मं० १-२-३ के हैं।

इस मन्त्र से (शरीर की उन्नति के लिए भावना करता हुआ) तीसरी समिधा की आहुति देवे।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठ-पात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें, पश्चात् घृत आदि जो कि उष्ण कर छान +सुगन्धादि पदार्थ मिला पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से न्यून से न्यून ६ माशे भर, अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवें यही आहुति का प्रमाण है, उस घृत में से चमचा जिसमें, ६ माशे ही घृत आवे ऐसा बनवाया हो, भर के नीचे लिखे मंत्रों से पांच आहुति देवें (क्रमशः (१) इद्ध (२) प्रजया (३) पशुभिः (४) ब्रह्म वर्चस और (५) अन्नाद्य शब्दों पर जोर दे, वैसी भावना बनावें। (देखें यज्ञ रहस्य झांकी १७)।

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व की दिशा आदि चारों ओर छिड़कावें, उसके ये मन्त्र हैं—

ओं अदितेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पूर्व,●

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ इस मन्त्र से पश्चिम

+एक सेर घृत में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर डालना चाहिए।

●पानी छोड़ते समय यह भावना करते हुए (क्रिया रूप से) Negative (तम) से Positive (प्रकाश) की ओर जाना है, दक्षिण उत्तर में और पश्चिय से पूर्व में जल लम्बा हाथ करके छोड़ें। इसी तरह आघारावाज्य आहुति देते हुए भी क्रिया और भावना करनी चाहिए।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। इससे उत्तर ● और

गोभिल गृ० । प्र० खं० ३ । सू० १—३।।

ओ३म् देव सवितः ! प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपति भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।। गोभिल गृ० । प्र० खं० ३ । सू० १—३ ।।

इस मन्त्र से वेदी (की दक्षिण दिशा से आरम्भ करके पूर्व उत्तर आदि) के चारों ओर जल छिड़कावें (देखें झांकी १७)। इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें। इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती है, उन में से यज्ञ-कुण्ड के उत्तर-भाग में जो एक आहुति और यज्ञ-कुण्ड के दक्षिण-भाग में दूसरी आहुति देनी होती है, उस को "आघारावाज्याहुति" कहते हैं। और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं, उनको "आज्याभागाहुति" कहते हैं, सो घृत-पात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा अनामिका से स्रुवा पकड़ के—**आघारावाज्याहुति**

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से उत्तर-भाग अग्नि में ●

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय-इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग म● प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवे, तत्पश्चात्—

आज्याभागाहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये-इदन्न मम ।।

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्न मम ।।

● देखो फुटनोट पृष्ठ ३०४

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देवें (देखो झाँकी १६)। उसके पश्चात चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति दे के जब प्रधान होम अर्थात् जिस कर्म में जितना-जितना होम करना होकर के पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्यभागाहुति) देवें। पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृत पात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये-इदन्न मम॥

ओं भुववायवे स्वाहा। इदं वायवे-इदन्न मम॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय-इदन्न मम॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥

यह चार घी की आहुति दे कर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही दें, यह घृत अथवा भात (वा किसी मीठी चीज) की देनी चाहिये।

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनांकामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम।

इससे एक आहुति करके प्रजापत्याहुति नीचे लिखे मन्त्र* को मन में बोल के देनी चाहिये।

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम।

*शब्द 'प्रजापतये'।

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें। परन्तु जो नीचे लिखी आहुति चौल, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं, वे चार मन्त्र यह हैं। [निम्नलिखित मन्त्र और उपरोक्त चार व्याहृतियों के मन्त्र नित्यकर्म में नहीं हैं। जब कभी बड़ा हवन करना हो तो इनसे भी घी से आहुतियां दी जावें।]

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्न ! आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥ (१)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥ (२)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। अग्ने ! पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम॥ (३)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते ! न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम॥ (४)

[इससे घृत की चार आहुतियां देकर नीचे लिखे मन्त्रों से, आठ आज्याहुति सर्वत्र मंगल-कार्य्यों में या जब कभी बड़ा हवन करना हो, देवें]।

ओं त्वंनो अग्ने ! वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलो

अवयासिसीष्ठाः यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्न मम ॥१॥ ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती, नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्यां-इदन्न मम ॥२॥ ओं इमं मे वरुण ! श्रुधी हवमद्या च मृलय। त्वामवस्यु-राचके स्वाहा। इदं वरुणाय इदन्न मम ॥ ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा। इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥४॥ ओं ये ते शतं वरुण ! ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नोऽद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुंचन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः-इदन्न मम ॥५॥ ओं अयाश्चाग्नेऽस्यन-भिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अयानो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजं स्वाहा। इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ॥६॥ ओं उदुत्तमं वरुण ! पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च इदन्न मम ॥७॥ ओं

भवतन्नः समनसौ, सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं हिं सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा। इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम ॥८॥ यजु० अ० ५ मं० ३।

निम्नलिखित मन्त्रों से केवल प्रातःकाल हवन करे।

प्रातःकाल हवन-मन्त्राः

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१॥

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥४॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ॥२॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्या ाय इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य-स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्य-इदन्न मम ॥४॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥ ओं विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥

ओं अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ॥८॥

अब नीचे लिखे हुए मन्त्र केवल सायंकाल के अग्निहोत्र के जानो।

सायंकाल हवन मन्त्राः-आघारावाज्याहुति

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से उत्तर-भाग अग्नि में।+

ओं सोमाय स्वाहा । इदम सोमाय-इदन्न मम ॥

इस मन्त्र से वेदों के दक्षिण भाग में, प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें। तत्पश्चात्—

आज्यभागाहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय—इदन्न मम ॥

इन दोनों मन्त्र से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी (विधि देखें यज्ञ-रहस्य झांकी १९)

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

(इस मन्त्र को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी)।×

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

+फुटनोट पृष्ठ ३५१ पर देखें।

×"अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः" शब्दों का उच्चारण करें।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदमग्नये प्राणाय इदन्न मम ॥१॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदन्न मम ॥२॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय-इदन्न मम ॥३॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ॥४॥ ओं आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥ ओं यां मेधां देवगणः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥ ओं विश्वानि देव ! सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥७॥ ओं अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव ! वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥८॥

इस के पश्चात् अपनी इच्छा के अनुसार गायत्री मन्त्र से आहुति दें—

गायत्री मंत्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

पूर्णाहूति—ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

इसको पढ़कर

ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।

इस मन्त्र से तीन पूर्णाहुति अर्थात् एक-एक वार पढ़ के एक-एक करके तीन आहुति देवें।

यदि अमावस्या व पूर्णमासी का दिन हो तो पूर्णाहुति से पहले निम्नलिखित मन्त्रों से यज्ञ शेष और घी की आहुतियाँ दें।

अमावस्या के दिन—मीठे पदार्थ से

ओं अग्नये स्वाहा।

ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा।

ओं विष्णवे स्वाहा।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदं अग्नये इदन्न मम।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्यवादित्येभ्यः स्वाहा।

इदमग्निवाय्यवादित्येभ्यः—इदन्न मम।

पूर्णमासी के दिनः—मीठे पदार्थ से

ओं अग्नये स्वाहा।

ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा।

ओं विष्णवे स्वाहा।

व्याहृति की चार आहुतियां—घृत से

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय-इदन्न मम।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम।

इसके पश्चात् प्रभु का धन्यवाद प्रार्थना जैसी कि यज्ञ-रहस्य पहली झांकी में लिखी है, वैसी करें। इसके पश्चात् "यज्ञ पुरुष-महिमा" या कोई और भजन गावें।

यज्ञ-पुरुष महिमा

यज्ञ रूप प्रभु हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएं, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें॥
अश्वमेधादिक रचाएं, यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें॥
रोग पीड़ित विश्व के, संताप सब हरते रहें।
कामना मिट जाए मन से, पाप अत्याचार की।
भावनाएं पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की॥
लाभकारी हो हवन हर जीवधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किए।
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम पथ विस्तार हो।
"इदम् न मम" का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाए मस्तक, वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप, करुणा आप की सब पर रहे॥

यज्ञ-महिमा

होता है सारे विश्व का कल्याण यज्ञ से, हां ! कल्याण यज्ञ से
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान यज्ञ से, हां भगवान यज्ञ से
ऋषियों ने ऊंचा माना है, स्थान यज्ञ का
भगवान का यह यज्ञ है, भगवान यज्ञ का
जाता है देव लोक में इन्सान यज्ञ से
जो कुछ भी डालो यज्ञ में खाते हैं अग्नि देव
इक-इक के बदले सौ-सौ दिलाते हैं अग्नि देव
बादल बना के पानी भी बरसाते हैं, अग्नि देव
पैदा अनाज करते हैं भगवान् यज्ञ से, हां भगवान यज्ञ से
होता है कन्या दान भी हां ! इसके सामने
शक्ति व तेज है भरा, इस शुद्ध नाम में
पूजा है इसको कृष्ण ने, भगवान राम ने
मिलता है राज कीर्ति व संतान यज्ञ से
इसका पुजारी कोई भी पराजित नहीं होता
इसके पुजारी को कभी भी कष्ट नहीं होता
होती है सारी मुश्किलें आसान यज्ञ से ॥
चाहे अमीर है कोई, चाहे गरीब है
जो नित्य यज्ञ करता है, वह खुश नसीब है
उपकारी मनुष्य बनता है, महान यज्ञ से ॥

———:o:———

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः

ान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा
ा शान्तिरेधि । यजु० अ० ३६ मं० १७ ॥

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥
ब का भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान् ।
बपर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण ॥

एक सज्जन—यदि किसी की इतनी सामर्थ्य न हो कि ६ माशे ृत से आहुति दे सके, जैसे हम लोग निर्धन हैं तो क्या हवन न करें?

महात्मा—हवन तो किसी काल, हाल में त्याज्य नहीं है। काष्ठ ाक से भी करने का विधान है जब कोई हव्य वस्तु विशेष न मिल ाके। अतः अपनी सामर्थ्यानुसार जितने वजन की आहुति दे सकता ो, देवे। मगर चमचा उतना ही बना लेवे जो भरकर ही देवे।

इस पर एक सज्जन ने कहा कि महाराज ! आपकी पद्धति तो ांस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञ-विधि से जरा भिन्न है।

महात्मा—भाई ! देखो कुछ भी भिन्नता नहीं। अगर आप ्रातः भी हवन करें और सायंकाल को भी, तो फिर प्रातः के ही पूरे १६ मन्त्र बोलकर आहुति दें और सायंकाल को भी पूर्ण हवन करें, जैसे समझाया गया है। एक समय में दोनों समय का हवन कर लेने का यह मतलब नहीं कि आप आहुतियाँ भी कम दें। महर्षि के लिखने का अनुचित लाभ न उठावें और न ही बचत ढूँढें। श्रद्धा भक्ति तो संकोच नहीं सिखाती। यज्ञ में तो प्रभु की दी हुई दात से आप आहुति देते हो, अपने घर से थोड़ा दे रहे होते हो ? हाँ, जब अपने घर की समझ लोगे तो मुश्किल हो जायेगी। मैंने तो यही

समझा हुआ है कि भक्ति और शुभ कार्य प्रभु की कृपा से होते हैं उसी के अधीन हैं। इसलिए प्रातः और सायंकाल की १६ आहुतियां देनी चाहियें, यदि एक ही वक्त में सायं प्रातः दोनों काल का हवन करना हो। इसमें न किसी सिद्धान्त की हानि है न महर्षि के लिखने से भिन्न है। आप लोगों ने समझा नहीं, मैंने समझा है।

हाँ, "यदस्य कर्मणो" का मन्त्र नित्य कर्म में आपको अधिक दीख पड़ेगा। सो आप न चाहें तो न दें, मगर यह प्रायश्चित्त के लिए है। मनुष्य से बहुत भूलें हो जाती हैं, इसलिए विद्वान् इसे बोला करते हैं। "पूर्णमदः" का मन्त्र भी आपको अधिक जंचेगा। यह ईशोपनिषद् का शान्ति मन्त्र है। स्वामी जी महाराज ने तो सब संक्षिप्त विधि इसलिए लिखी, कि थोड़े मन्त्र होने से थोड़े काल में हर कोई आसानी से कर सके। इस मन्त्र को आप न चाहो तो न बोलो, मगर बोलने में हानि कोई नहीं पहुंचती, परंतु जो रहस्य इस मन्त्र का हृदय पर प्रभाव करता है वही चीज ही यज्ञमय जीवन बनाने वाली है प्रभु का विश्वासी बनाती है।

एक सज्जन—कई लोग हवन कुण्ड में यज्ञशेष से बलिवैश्वदेव यज्ञ की भी आहुतियाँ दे दिया करते हैं। यह कहाँ तक ठीक है?

महात्मा—बलिवैश्व देवयज्ञ की आहुतियां चूल्हे में भोजन शाला के अन्न को पवित्र करने के प्रायश्चित्त रूप में प्रति दिवस देनी चाहियें। यदि कोई मीठा पदार्थ बांटने के लिए बनाया हो, तो यज्ञ कुण्ड में आहुति दे देते हैं, ताकि वह पदार्थ यज्ञकुण्ड में डाला हुआ यज्ञशेष बन जावे। इसी पवित्र भाव के साथ डाला जाता है। सो आपको अपने घर में इसका आचरण प्रतिदिन करना चाहिए। वह मन्त्र छोटे-छोटे हैं। देवियां झटपट स्मरण कर सकती हैं। आप सुन लीजिए। वे मन्त्र यह हैं—

ओ३म् अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥

ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥

ओं कुह्वै स्वाहा ॥६॥

ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥७॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥८॥

ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥९॥

ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

एक सज्जन—यदि अकेला हवन करना हो तो घी से किन मन्त्रों से और सामग्री स किन मन्त्रों से आहुति देनी चाहिए ?

महात्मा—जिन मंत्रों में "इदन्न मम" है वह घृत की और बाकी अर्थात् "ओ३म् सूर्य्यो ज्योति·········आदि और ओं आपो ज्योति रसो·········आदि" वा मिली सागग्री से देनी चाहियें या ऐसे भी करने में कोई दोष नहीं कि एक हाथ से सब मन्त्रों से घी की और दूसरे हाथ से सामग्री की आहुति डालनी चाहिए। परमेश्वर की पूजा में शुद्ध भावना की अधिक आवश्यकता है।

॥ इति शम् ॥

———

अन्तिम प्रार्थना

हे परम श्रेयस् ! तुम ही तो परम श्रेयस् हो। मुझ में जो श्रेय है वह सब आपका ही है। इसलिए तो मनुष्य जाति सबसे श्रेय है, और यही ही श्रीमान् है। आपके महायज्ञ से मेरा शरीर बना है और बन रहा है। क्षण-क्षण पल रहा है। आप ही सच्चे याज्ञिक हो मेरी नाड़ियों के अन्दर जो रक्त बह रहा है वह (रक्त) आप ही के यज्ञ का फल है। मेरी हड्डियाँ, मेरा मांस, मेरी त्वचा, बाल, खाल, सब चर्बी और मज्जा, मेधा, वीर्य और रस तेरे ही यज्ञ से बने हैं। तेरे अमृत यज्ञ के प्रसाद, यज्ञ के शेष से जुड़ रहे हैं। फिर नाथ ! यदि मेरा यह शरीर यज्ञ के लिए न बना तो राक्षस कहलायेगा।

मेरा जीवन, मेरा विचार यज्ञरूप हो। प्रभो ! मेरा आहार, मेरा विचार और आचार स्वयं यज्ञ बन जायं, जब शरीर में बिन्दु बिन्दु तेरे यज्ञ के भाग की है, यज्ञ के शेष की है। भगवन् ! मेरी इन्द्रियों पर आपका ही अधिकार हो। मेरे प्राण और प्राणबल आपके वश में हों। मेरा श्वास-श्वास तेरे नाम की माला बन जाय। मेरा अंग-अंग तेरी ज्योति का झरोका बन जावे और मैं, मेरी आत्मा यज्ञ स्वरूप हो और मेरी "मैं" का बाकी जो कुछ भी है, शरीर और शरीर के सम्पूर्ण कार्य जो स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर से हों वह संसार के हृदयों के लिये यज्ञशेप बनकर व्यय हों। हे भगवन् ! मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली होऊंगा, यदि मेरी इस प्रातः की प्रार्थना को स्वीकार कर ली और मुझे ऐसा बना दो। मैं स्वयं ऐसा नहीं कर सकता, जैसा मेरा यह विचार है। यदि यह विचार तेरी कृपा, तेरी अमृत वर्षा से भीग जाय तो संसार को सींच सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये प्रभो ! मेरी सफलता पूर्णतया आपके आधीन है। मैं तेरे ही आधीन, तेरा आश्रित "प्रभु आश्रित" हूं। अब अपने आश्रित को अपने नाम के नाते, आप नाम की लाज पालने लिए उभारो, के निहारो। स्वामी हो ! स्वामी हो !! स्वामी हो !! टेकचन्द, प्रभु आश्रित।

ओ३म्

यज्ञरहस्य-प्रथम भाग

परिशिष्ट नं० १

साधारणतया जिन वृक्षों की लकड़ियां समिधा के तौर पर बरती जाती हैं, उनके गुण संक्षिप्त से नीचे लिखे जाते हैं:—

आम—जड़ व छाल अतिसार (दस्त), सफरा, बलगम, जरियान और गुप्तइन्द्रिय की रतूबत को दूर करती है। पत्ते मसूढ़ों और दांत के दर्द, बद-हजमी, दस्त व मरोड़ और आंख के रोगों में लाभकारी हैं। पीले रंग के पत्ते रक्त को साफ करते हैं। फूल सर्द, खुश्क और काबिज होता है। खून के दस्तों में बड़ा गुण करता है। आम के फल के गुण कौन नहीं जानता? खून को बढ़ाता है, वीर्य को गाढ़ा करता है, बल वीर्य, रुचि बढ़ाता है और रंग निखारता है। इस की गुठली भी दस्तों के रोगियों को देते हैं।

बड़—बड़ का दूध जड़ और बीज सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति देते हैं छाल कफ, पित्त, जखम, जलन, विसर्प रोग और योनि रोग के लिये लाभकारी है। पत्ते योनि रोग व मूत्र रोग में गुण करते हैं। दूध जरियान, एहतलाम, फोड़ा, फुंसी, आंख व मूत्र रोग में विशेषतया लाभकारी

है। कोंपल गर्भवती को खिलावे से नर सन्तान होने की सम्भावना होती है। बीज बलगम, सफ़रा और स्त्रियं और पुरुषों के गुप्त रोगों को दूर करते हैं। शक्तिप्रद वीर्य स्तम्भक व प्रमेह नाशक हैं। बड़ की जटा (दाढ़ी) भी उपयुक्त रोगों में बरती जाती है।

बिल—जड़ व छाल और पत्तों का रस मधुमेह व मूत्र के अधिक और बार-बार आने को दूर करने में अद्वितीय है। फल दस्तों, मरोड़ों, पेचिस और संग्रहणी के रोगों में अति गुणकारी हैं। बिल की जड़ की छाल वैद्यक के प्रसिद्ध योग (नुस्खा) दशमूल का एक भाग है जो कि बहुत रोगों में बरता जाता है। सेना या जन समूह के विषैले अन्न को खा जाने से जो पेचिश की बीमारी फैल जाती है, उसके दूर करने के लिए अति लाभकारी है। पेचिश और अतिसार से पैदा हुई निर्बलता को दूर करके फिर से रणभूमि के योग्य बनाता है। अब तो डाक्टर लोग भी इसका प्रयोग बिना किसी बाधा के अधिक करते हैं।

पलाश (ढाक-छिछड़ा)—बीज गर्म होते हैं। पाचन शक्ति को बलवान् करते हैं, मबही हैं, कब्जकुशा हैं और टूटी हड्डी को जोड़ते हैं। बवासीर, संग्रहणी, वायुगोला और जखमों को दूर करते हैं। कृमियों को मारते हैं। इसके फूल प्यास, जलन, वातरक्त, कोढ़, जरियान, बवासीर और शूल नाशक हैं। कई प्रकार के दर्दों में लाभ-

ायक हैं। पलाश में यह एक विशेष गुण है कि वह रोग-प्रसारक वायुओं के प्रभाव को दूर कर के तबीयत को ठीक करता है। कृमियों को नष्ट करता है। जहां यह वृक्ष होता है, वहाँ रोग प्रसारक वायु कोई प्रभाव नहीं डालते। इसका नाम ब्रह्मवृक्ष भी है। यज्ञ के लिए प्रशंसनीय है। प्राचीन काल में योद्धाओं की टूटी हड्डियों के जोड़ने के काम में आता था।

पीपल—पीपल का दातन करना और पत्ते को बार-बार पानी में घोलकर पीना वारी के बुखार को दूर करता है। पत्तों का रस साँप के काटे को लाभदायक है।

बीज जरियान, एहतलाम, बवासीर, योनि-दोष, कफ, घावों और खून की खराबी को दूर करते हैं। मुख की रंगत को निखारते हैं। तपेदिक के रोगियों को इस की छाया में बैठना अति लाभदायक है। सन्तान के उत्सुकों को इसके बीज दूध का सेवन करना चाहिए।

बड़ व पीपल के बहुत से गुण एक से हैं इसलिये इन्हें दोबारा नहीं लिखा जाता।

जंडी [शमी[—पत्ते जख्मों, कफ खासी श्वास, कुष्ठ, बवासीर, कब्ज और कृमिनाशक हैं। सीतला (चेचक) आदि को दूर करते हैं। दुश्मन राजा या किसी और कारण से फैलाई हुई विषैली और खराब गैस के प्रभाव

को दूर करने के लिये इसका धूआं लाभदायक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस की राख को विषैले पानी के तालाब को शुद्ध करने के लिये प्रयोग किया जाता था, इसलिये इसका नाम 'शमी' है।

संक्रामक रोगों से बचाने वाली है। मंगल देने वाली है अर्थात् संघ व भीड़ में छूत-छात की व्याधियों से रक्षा करती है।

इसका नाम 'लक्ष्मी' भी है। मुख शरीर तथा त्वचा की कुरूपता को दूर करके सुन्दर और कान्तिमान् बनाती है।

यज्ञरहस्य प्रथम भाग

परिशिष्ट नं० २

ऋत्वनुकूल हवन सामग्री

बसन्त—१ छलीरा, २ तालीस पत्र, ३ पत्रज, ४ दाख ५ लज्जावती, ६ शीतल चीनी, ७ कपूर, ८ चीड़, ९ देवदारु, १० गिलोय, ११ अगर, १२ तगर, १३ केसर, १४ इन्द्र जौ, १५ गुग्गुल, १६ कस्तूरी, १७ तीनों चन्दन, १८ जावित्री, १९ जायफल, २० सरस धूप, २१ पुष्कर मूल, २२ कमलगट्टा, २३ मजीठ, २४ बनकचूर, २५ दालचीनी, २६ गूलर की छाल, २७ तेजफल, २८ शङ्खपुष्पी, २९ चिरायता, ३० खस, ३१ गोखरू, ३२ खाण्ड, ३३ गोघृत,

३४ ऋतुफल, ३५ भात या मोहनभोग, ३६ जंड समिधा, ३७ मुश्क बाला [चैत्र वैशाख]

ग्रीष्म—मुरा, बायबिडंग, कपूर, चिरोंजी, नागरमोथा, पीलाचन्दन, छलीरा, निर्मली शतावर, गिलोय, धूप, दालचीनी, लवंग, कस्तूरी, चन्दन, तगर, भोजपत्र, भात, कुशा की जड़, तालीस पत्र, पद्माख, दारूहल्दी, लालचन्दन, मजीठ शिलारस केसर, जटामासी, नेत्रबाला, इलायची बड़ी, उन्नाव, आमले, मूंग के लड्डू, चन्दन चूर, [ज्येष्ठ आषाढ़]।

वर्षा—काला अगर, पीली अगर जौ, चीड़, धूप सरस तगर, देवदारू, गुग्गुल, नकछिकनी, राल, जायफल, मुंडी गोला, निर्मली, कस्तूरी, मखाने, तेजपत्र, कपूर, बनकचूर, बेल, जटामांसी, छोटी इलायची, गिलोय, तुलसी के बीज, बायबिडंग, कमल डण्डी, शहद, चन्दन श्वेत का चूरा, ऋतुफल नागकेसर, ब्राह्मी, चिरायता, उड़द के लड्डू, छुहारे, शङ्खाहुली, मोचरस, विष्णुक्रांता, ढाक की समिधा गोघृत, खाण्ड, भात। [श्रावण, भाद्रपद]

शरद—चन्दन सफेद, चन्दन लाल. चन्दन पीला, गुग्गुल, नागकेसर, इलायची बड़ी, गिलोय, चिरौंजी, विदारीकन्द, गूलर की छाल, ब्राह्मी, दालचीनी, कपूर कचरी, मोचरस, पित्तपापड़ा, अगर, भारङ्गी, इन्द्रजौ, रेणुका, मुनक्का, असगन्ध, शींतलचीनी, जायफल, पत्रज,

चिरायता, केसर, कस्तूरी, किशमिश, खाण्ड, जटामांसी, तालमखाना, सहदेवी, ढाक की समिधा, धान की खीर, विष्णुक्रान्ता, कपूर, गोघृत, ऋतुफल, । [आश्विन कार्तिक]

हेमन्त—कुठ, मूसली, गन्ध कोकिला, घुड़वाच्छ पित-पापड़ा, कपूर, कचरी, नकछिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दालचीनी, भारङ्गी, सौंफ, मुनक्का, कस्तूरी, चीड़, गुग्गुल अखरोट, रास्ना, शहद, पुष्करमूल, केसर; छुहारे, गोखरू कांच के बीज, कांटेदार गिलोय, पर्पटी, बादाम, मुलहटी काले तिल, जावित्री, लाल चन्दन, मुश्क वाला, तालीसपत्र रेणुका, खोया, बिना नमक की खिचड़ी, आम या खैर की समिधा; गोघृत; देवदारु । [मार्ग शोर्ष पौष]

शिशिर—अखरोट, कचूर, बायविडंग; राल; मुण्डी मोचरस; गिलोय; मुनक्का. रेणुका, काले तिल; कस्तूरी तज, केसर, चन्दन, चिरायता, छुहारे तुलसी के बीज, गुग्गुल, चिरौंजी, काकड़ासिंगी, खाण्ड, शतावर दारू-हल्दी शङ्खपुष्पी, पद्माख, कौञ्च के बीज, जटामांसी, भोजपत्र, गूलर; बड़ समिधा; मोहन भोग (कड़ाह); गोघृत [माघ, फाल्गुन] ।

———

सामग्री का एक खास नुस्खा

	सेर छ०		सेर छ०
अगर	१-४	हाऊ बेर	१-०
तगर	१-०	मेंहदी	०-८
बाल छड़	२-८	चिरायता	०-१०
छलीरा	५-०	मुलहटी	१-०
कपूरकचरी	१-४	खूबकलां	०-४
मुश्क बाला	०-४	मुनक्का	०-८
नागर मोथा	१-४	सरसों सफेद	०-१
कपूर	१-४	हर्मल	०-१
गुलाब	१-४	त्रयपत्री	०-४
बनफशा	२-४	ब्राह्मी	२-०
नीलोफर	२-८	इन्द्रायण की जड़	०-४
उन्नाव	१-४	असगंध	१-०
लसूड़े	१-०	मकोय	१-०
हरड़	१-०	बादाम	२-०
बहेड़ा	१-०	गरी	३-०
आंवला	१-०	जायफल	०-१२
शतावर	०-८	लौंग	०-१२
काकड़ा सिंगी	०-६	गोखरू	१-०
शंख पुष्पी	०-४	पिस्ता	०-४
इटसिट	१-०	चीड़ का बुरादा	०-४
हल्दी	१-०	गिलोय	५-०
नीम के पत्ते	०-४	गुग्गुल	५-०
नीम की निमोली	०-४	बूरा चन्दन सफेद	२-८

	सेर छ०		सेर छ०
लाल चन्दन	३-०	शक्कर देसी	५-०
तज	२-०	वायबिड़ग	१-४
वर्च	२-०	दाल चीनी	१-०
धूप लकड़ी	३-०	धूप काला	२-८
इन्द्र जौ	१-०	राल	१-४
छुहारे	२-८	पित पापड़ा	०-८
इलायची बड़ी	१-४	सरकाना जड़ के साथ	२-०
तालीस पत्र	१-०	जवां	१-०
चिरोंजी	०-४	पीपल की छाल	०-८
जावित्री	०-४	तुलसी के पत्ते	०-२
गाजबान	०-८	तुलसी के बीज	०-१
तालमखाना	१-४	कंवल डोडा	१-०
खवी	४-०	आम के पत्ते	०-८
मोचरस	१-४	यूकलिपटिस के पत्ते	०-८
जंडी के पत्ते	०-८	बड़ के बीज	०-१
सरींह के पत्ते	०-४	मुंडी बूटी	१-४
दारू हल्दी	१-०	बड़ की जटा	०-८
किशमिश	१-०	सौंफ	०-८
जौ	२-०	शतवर्ग के फूल	०-४
काले तिल	५-०	नकछिकनी	०-५
माश सालम	५-०	कंवल पत्र	१-४
मूंग हरे सालम	२-०	कचूर	२-८
चावल	२-०	नाग केसर	१-४
		पनरी	१-४
		शहद	२-८

परिशिष्ट नं० ३

बृहद् यज्ञ के नियम

१. एक वेद का यज्ञ आरम्भ होने से तीन दिन पूर्व और चारों वेदों का यज्ञ आरम्भ होने से एक मास पूर्व यजमान और होता ऋत्विक् ब्रह्मचारी रहें।

२. एक दिन पूर्व व्रत करें-दुग्ध पान कर सकते हैं और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये गायत्री का जप करते रहें।

३. हुक्का, सिगरिट, शराब, मांस अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाला न हो वा वह उनके त्याग करने का व्रत लेवे।

४. यज्ञ के दिनों में भोजन विशेष सात्विक होगा। प्याज लहसनादि का भी सेवन मना है।

५. जितने दिन यज्ञ होता रहे, यम-नियम का पालन आवश्यक है, बजाय व्यवहार के इन दिनों बाकी समय जप, स्वाध्याय सत्संग में प्रवृत्त रहें।

६. दोनों समय यज्ञ करने के लिए स्नान करके मौन रूप में बैठना होगा।

७. यज्ञ के वस्त्र जुदा होंगे जो केवल यज्ञ के समय ही पहने जावेंगे और यज्ञ की समाप्ति पर प्रतिदिन उतार कर पृथक् रख दिए जावेंगे। इस कपड़े को पहने हुए

कुछ खाना या बाहर घूमने के लिए जाना मना है। वस्त्र चाहें खद्दर के हों (जो केशरी रंग में रंगे हुए हों), चाहे रेशमी या ऊनी, परन्तु हों स्वदेशी पाजामा, सिलवार, पतलून और जुराब पहिनना निषिद्ध है।

८. लंगोट या कोपीन भीतर रहनी चाहिए-लघुशंकादि की आवश्यकता के समय भी यज्ञ वाले ऊपर के वस्त्र उतार कर जाना होगा।

९. यज्ञोपवीत नया धारण करके बैठना होगा।

१०. जहां-जहां पर जिस-जिस होता का आसन हो जावे यज्ञ की समाप्ति तक स्थान न बदला जावेगा चाहे धुआं हो या आग का सेक भी लगे। यज्ञ के समय आसन वहां हो रहेगा जहां तक हो सके यजमान, पुरोहित ऋत्विज् सब रात को एक जगह सोवें ताकि रात को सम्मिलित प्रार्थना करके सो सकें और प्रातः यज्ञ कार्य ठीक समय पर आरम्भ कर सकें।

११. यज्ञ के समय से एक दिन पूर्व से (उपवास के दिन से ही) चार पाई छोड़ कर भूमि या लकड़ी के तख्त-पोश पर यज्ञ की समाप्ति के दिन तक सोना होगा।

१२. यज्ञ के समय और यज्ञ मण्डप के समीप आते जाते समय जूते का प्रयोग न करना होगा। खड़ावें पहनी

जावेंगी। हर एक व्यक्ति को यज्ञ मण्डप के अन्दर आने से पूर्व हाथ पांव धोने होगें, चाहे वह दर्शक क्यों न हों।

१३. कोई चमड़े वाली वस्तु जैसे घड़ी की चैन, गेट्स, बटुआ, आदि, सिगरेट-तम्बाकू आदि यज्ञ मण्डप में अपने साथ दर्शक न लावेंगे।

१४. यज्ञशेष भी मण्डप के बाहर खाना होगा, मण्डप की पवित्रता को खास तौर पर स्थापित रखा जावेगा।

१५. आहुति देने वाली स्त्रियों को लाजमी है कि शास्त्रोक्त मर्यादा अनुसार और पूर्वजों की सभ्यता के अनुकूल सीधी मांग निकाल कर और सादा लिबास पहन कर आवें। टेढे चीर आदि नहीं रखने होंगे। पश्चिमी फैशन से परहेज करना होगा।

१६. जिन स्त्रियों को यज्ञ के दिनों में रजोदर्शन की सम्भावना हो वह यजमान न बनें।

१७. कोई स्त्री रजोदर्शन के दिनों में न यज्ञमण्डप में न आवे।

१८. जिस देवी का बालक चालीस दिन के भीतर की आयु का हो वह भी आहुति न दे।

१९. यज्ञमण्डप का कोई पात्र खाने पीने आदि के लिए प्रयोग न किया जावे।

२०. यज्ञ की किसी वस्तु को बिना यज्ञ कार्य के और किसी काम में न लाया जावे। उदाहरणार्थ इसकी अग्नि पर कोई वस्तु न सेकी जावे और यज्ञ के दीपक को पढ़ने के काम में न लाया जावे, वहां के घड़ों में से पानी न पिया जावे और झाड़ू आदि को रसोई के कार्य में न लाया जावे।

२१. यज्ञशाला में किसी को सोना नहीं चाहिये।

बृहद् यज्ञ का सामान

(१) परना व आसान जुदा जुदा। (२) आचमन पात्र जुदा जुदा। (३) घड़ा (४) नारियल (५) गड़वी (६) झाड़ू (७) चमटा (८) स्रुवे (९) नलकी (१०) कुण्ड का ढकना (११) घंटियाँ चार (१२) संख (१३) घड़ियाल (१४) स्लेट पैंसिल या कागज पैंसिल (१५) शुद्ध घी का बर्तन (१७) सामग्री (१८) सामग्री रखने का बर्तन (१९) छलनी [परुण] और तारें (२०) चन्दवा खद्दरका लाल रंग का (२१) वेद की पुस्तकें और अन्य आवश्यक पुस्तकें (२२) समिधा के लिये टोकरी या चंगेर (२३) दीपक और उसे सुरक्षित रखने के लिये लैम्प (२४) रुई (२५) दियासलाई (२६) अग्नि बनाने के लिये पात्र या थाली (२७) समिधा बड़, पीपल, पलाश, जंड, आम (२८) मौली कंगना 'गौना' बांधने के लिये (२९) चौकियाँ आवश्यकतानुसार (३०) चन्दन की गिलटी व उर्सा (३१) चन्दन की आठ-आठ अंगुल की सीधी समिधा आवश्यकतानुसार यजमान और यजमाननो के लिये बारह समिधा प्रतिदिन के हिसाब से (३२) केसर (३३) कस्तूरी (३४) जावित्री (३५) यज्ञ शेष (३६) पुष्प फल यज्ञ के अन्तिम दिन।

———

परिशिष्ट चौथा

यज्ञ में भावना तथा उद्देश्य की पूर्ति विधि

सेठ—भगवन् ! आपने सन्ध्या सोपान के एक परिशिष्ट में सन्ध्या विधि का पाठ्यक्रम प्राइमरी से लेकर एम० ए० तक का लिखा है क्या इस हवन यज्ञ का भी कोई ऐसा पाठ्यक्रम है ?

प्रभु आश्रित—सेठ जी सन्ध्या तो ब्रह्मयज्ञ है, वह सब वर्ण आश्रम के लिए है इसलिए उसका पाठ्यक्रम श्रेणोवार बना दिया गया परन्तु हवन यज्ञ केवल तीन आश्रमों ब्रह्मचारी, गृहस्थी और वानप्रस्थी के लिए है और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को इसके करने का अधिकार है। अतः इसकी पाठ विधि संध्या जैसी नहीं बनाई जा सकती अपितु जिन आश्रमों में इस यज्ञ के करने का विधान है, उनके लिए पृथक २ भावना तथा उद्देश्य हैं और उसकी पूर्ति से ही याजक का कल्याण हो सकता है सुनिए:—

१. यज्ञ का उद्देश्य सब द्विज आश्रमों के लिए अमृत प्राप्ति है। जल अमृत है और अमृत प्राप्ति का साधन भी है, इसलिए तीन आचमन किये जाते हैं। ब्रह्मण का लक्ष्य

और है, क्षत्रिय का और, और वैश्य का और है और विधि भी बतलाई है।

ब्रह्मण के लिए सत्य की प्राप्ति अमृत है--पहिला आचमन क्षत्रिय के लिए यश की प्राप्ति अमृत है--दूसरा आचमन वैश्य के लिए श्री की प्राप्ति अमृत है--तीसरा आचमन और सब की शोभा अपने-अपने लक्ष्य--अमृत को प्राप्त करना है। ब्राह्मण को सत्य के लिए यश और श्री--मान अपमान, हानि लाभ, सुख दुःख की परवाह नहीं करनी।

क्षत्रिय को धन सम्पत्ति और शारीरिक दुःख सुख को परवाह न करने, तप करते हुए यश को प्राप्त करना है।

वैश्य की सम्पत्ति उसकी शोभा तब हो सकती है जब वह सत्य से प्राप्त की जाए और न्याय से खर्च करें। तो तीनों वर्णों का साधन बताया तप।

सेठ--क्या अग्नि प्रदीपन में भी कोई विशेष विधि है।

प्रभु आश्रित--नहीं, वह सबके लिए एक है।

सेठ--"उद्बुध्यस्वाग्ने" मंत्र में किस-किस उद्देश्य को सम्मुख रखना है?

प्रभु आश्रित--अग्नि को उद्बुद्ध अथवा प्रदीप्त करने के लिए प्रत्येक आश्रमी को भिन्न-भिन्न भावना करनी चाहिये। ब्रह्मचारी इस भावना से मंत्रोच्चारण करे कि

अविद्या को दूर कर मैंने विद्या को प्राप्त करना है जिस प्रकार धुए को निकाल कर अग्नि प्रकाश कर देती है।

गृहस्थी को इष्टा पूर्त्त से अपनी त्रुटियों को दूर कर के इष्ट को प्राप्त करना और उन्नत होना है और प्राणियों की शारीरिक कमियों को पूरा करना है।

बानप्रस्थी के लिये क्षण-क्षण की घटनाओं से आत्म जाग्रति करनी है,

इस प्रकार तीन समिधाओं मे :—

ब्रह्मचारी को पहिली समिधा आत्मा के लिए, दूसरी मन के लिए और तीसरी शरीर के लिए डालनी चाहिए।

गृहस्थी को ऐश्वर्य वृद्धि के लिए पहली अन्तःकरण की शुद्धि के लिए दूसरी और सिद्ध (आत्मिक) के लिये तीसरी समिधा देनी चाहिये।

बानप्रस्थी को द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीन लोक में रहने वाले प्राणियों के लिए विद्या प्रकाश और होम से उन सब को प्रसन्न करना है।

सेठ—यह मर्म की बातें सुनकर जिज्ञासा तीव्र होती जा रही है तो क्या कृपया यह बतलाएंगे कि चारों ओर जल देने का भी कोई अभिप्राय है या केवल मात्र च्योंटी आदि को अग्नि की ओर जाने से रोकने के लिए ही यह जल दिया जाता है ?

प्रभु आश्रित—जल सींचने का अभिप्राय केवल मात्र च्योंटि आदि की रक्षा करना नहीं, अग्नि से जहां विषैली गैसें उत्पन्न होती हैं, वह भारी होने के कारण जल में जज्ब हो जाती हैं और (Formalin) औषधि का काम देती है। परन्तु प्रत्येक आश्रम के लिए भावना जुदा-जुदा होती है :—

ब्रह्मचारी के लिए भूगोल, दिशाओं और यज्ञ की भावना का ज्ञान कराना है। पृथ्वी के चारों ओर जल है, मुख्य दिशाएं पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण हैं। यज्ञ की भावना से अपने अन्दर विश्व प्रेम का भाव पैदा करना और बांट कर भोगना है।

गृहस्थी के लिये व्यवहार मर्यादा का ज्ञान कराना है, सर्व प्रथम पुरोहित को सेवा, फिर परिवार का पालन पौषण, अतिथि सत्कार और समस्त संसार के प्राणियों को भोग पहुँचाना है।

बानप्रस्थी को प्रकृति नियमों का अवलोकन, उसके अनुसार चलना, वेद की आज्ञाओं का पालन करके सर्वस्व दान कर देना और सन्यास लेना है।

———

परिशिष्ट—द्वितीय

पाठकों के मनोरंजनार्थ "सप्त-रश्मि-चिकित्सा" कुछ विस्तार के साथ मासिक पत्रिका 'स्वस्थ जीवन'—जनवरी १९६१ कलकत्ता के अंक से उद्धृत करके नीचे दी जा रही है, जो कविता में है परन्तु अर्थ भी सरल भाषा में साथ-साथ दिये गये हैं :—

सूर्य सप्तकर रंग के, असंख्यात उपकार ।
रोगहरण सुख करण, अरु पोषण घर भंडार ॥
लाल सलिल को विद्युत गुण, अरु बहु उष्ण बखान ।
हेम गर्भरस से अधिक, आयडिन से बलवान ॥
लाल सलिल को समझकर, या को कर उपयोग ।
कबहु न कर उपहास को, इसको अनुचित योग ॥
अर्द्धांग लकवा आदि के, यह उपयोग में आय ।
सेक और मालिश करे से, बात-व्याधि बिनसाय ॥
निर्बल तन शीतांग में, इसको कबहुं पिलाय ।
नीले डबल जल मेल से, चमत्कार दरसाय ॥
गफलत से यदि किसी के बुन्द नेत्र में जाय ।
नेत्र फुटिबे को सन्देह, खतरनाक अधिकाय ॥

लाल जल भीषण गर्मी बढ़ाने और विद्युत शक्ति वाला है शरीर के निर्जीव अवयव को चैतन्य शक्ति देने

की इसमें अद्भुत सामर्थ्य है। सर्दी से हुए शोथ अथवा शीतांश इससे अच्छे होते हैं और वायु से अकड़ी नसें तथा शिथिलपन उनमें गाँठें पड़ने और लंगड़े- लूले मनुष्य के अवयव अवश्य अच्छे हो जाते हैं। अतः विद्वानों का कथन है कि जिस समय रोगी का शरीर बिल्कुल ठंडा पड़ने लगता है, तब इसका प्रयोग किया जाता है। यह बहुधा मालिश करने के उपयोग में आता है।

पीले जल के पिये से, बद्ध कोष्ठ बिनशाय।
अठ मालिश से इसी के, गठिया आदि मिटाय॥

पीले जल के पीने और धोने से बद्ध कोष्ठ पेट की गुड़गुड़ाहट, अफरा, पीड़ा, अजीर्ण, कृमि, रोग, मेद, विकार अवश्य मिटते हैं; यही यकृत (जिगर) पिल्ही (ताप तिल्ली) हृदय अथवा कलेजे और फेफड़ों के लिए अत्यन्त हितकर है।

गहरा नीला पिये से, हृदय रोग विनशाय।
कास फेफड़े आदि अरु दुःख अनेक मिटाय॥

नीले जल के पिये से कास श्वास मस्तक शूल ज्वर विस्फोटक गर्मी प्रमेह पथरी मूत्र-विकार श्लीपद अतिसार संग्रहणी पुरानी पेचिश इत्यादि गर्मी विशेष से होने वाले रोग बहुत सुगमता से अच्छे होते हैं।

हरे सलिल के पिये से, रक्त विकार मिटाय।
इसी सलिल के धोये से, त्वचा रो सब जाय ॥

हरे जल से त्वचा रोग नष्ट होते हैं। विसर्प विर्सपिका क्षुद्र रोग हाथ, पांव का फटना फोड़े दाह खाज गंज आदि रक्तपित छाती नाक मुंह गुदद्वारा (गुदा) से रक्त गिरना आदि स्त्रियों के रक्तप्रदर व्रण नासूर घाव गर्मी के भट्ठे अर्श आदि सब प्रकार के पकने सड़ने बहने वाले दुर्गन्धयुक्त और किसी औषधि से नहीं अच्छे होने वाले विकार अवश्य मिटते हैं।

विल्लोरी कांच [Prism colour]

श्वेत बिल्लोर रवि विम्ब से, सप्त रंग दरशाय।
सप्त धातु निस्तेज को, पुष्टिकरण सुखदाय ॥

इसका जल पीने के काम में लेते हैं कारण यह कि इसमें सूर्य की सातों रश्मि में एक संग आकर्षित होती हैं अतः मनुज शरीर की सातों धातुओं को पुष्टि देने का कार्य यह जल स्वयं करता है।

जम्बु सलिल हिम बलकरण, नसशोणित विचराय।
प्लीहा यकृत रूज हरण, पक्काशय सुधराय ॥

उपयुक्त जल लाल और नीले जल के सम भाग मिश्रण से बनता है जामुनि नाम से प्रसिद्ध है। इसके सेवन करने से हृदय की कमजोरी मिटती है, स्नायुओं में रक्त का

विचरण होकर ताप तिल्ली तथा जिगर के रोग नष्ट होकर आमाशय हाजमा सुधर कर अद्भुत लाभ होता है। वातरक्त रोग इससे अवश्य मिटेगा।

जल बनाने की विधि

चौतहे वस्त्र में छानि के, कूप सलिल लै लेय।
भरि के बोतल में जिसे, धूप मांहि धर देय॥
चार घड़ी की धूप से, सलिल औषधि होय।
पुनि ठंडो कर पिये से, रोगी रोग को खोय॥

प्रत्येक रंगीन बोतलों को सावधानी से धोकर साफ कर पारदर्शक बना लो ताकि उसमें अन्दर वा बाहर कोई दाग व धब्बा न रह जाये। जल कूप, तालाब, नदी वा झरने का होय तो अतिश्रेष्ठ है। चौतहे कपड़े में छान कर चार अंगुल खाली छोड़ कर बोतल में भर कर अच्छी तरह कार्क लगा दो। फिर बोतल को पतले कपड़े से पोंछ कर साफ जगह में धूप में रख दो। बोतलें लकड़ी की पटिया तिपाई वा टेबिल (जो पेन्ट और वार्निश की हुई न हो) पर रख के धूप में जहां झक्कड़ व झाड़ कुछ नहीं हो, जहाँ चार घंटे धूप निरन्तर रहे, रखना चाहिए। इस जल को तैय्यार करने के लिये दिन १० बजे से ५ बजे तक का समय श्रेष्ठ समझना चाहिए इसके अतिरिक्त अन्य

किसी समय में तैय्यार किया जल गुणकारी कदापि नहीं होता। धूप से गर्म होकर बोतलों के खाली भाग में जब भाप के बिन्दु बनने लगें तब जल तय्यार समझ लेना चाहिए। किसी कारणवश यदि शीघ्रता होय तो भाप के बिन्दु बनते ही बोतलें हटा लें अन्यथा चार घंटे की धूप से तैय्यार हुआ जल अत्यन्त गुणदायक होगा।

तिल नारियल को तेल, एक तेल इनमें से लेय।
नीली बोतल में भरवाय, शुद्ध धूप में ताहि धराय॥
तीन मास में बनत है, तेल अधिक गुणकार।
चैत मास से जेठ तक, समय कियो निरधार॥
बोतलमें भरि के शकर, अथवा मिश्री लाय।
तीन मास की धूप सों, बने अधिक गुणदाय॥

उत्तम प्रकाश डालने की विधि

सूरज के परकाश को, कमरा एक सजाय।
जामै खिड़की एक हो, तामें कांच लगाय॥

लाल पीले नीले और हरे कांच के टुकडों से रोगी के सब बदन पर या किसी पीड़ित अवयव पर रंगीन प्रकाश डाला जाता है.....,...

जल पियै तेल मले अरु, गेरे से परकाश।
अर्द्धांग लकवा आदि को, रोग अवश्य विनास॥
लाल कांच की ज्योति से, पुनि नीले परसंग।

तिल तेल के मले से, गठिया मिटै निःसंग ।।
पीले कांच की ज्योति से, हृदय रोग नशि जाय।
पेट फेफड़े आदि-आदि रोग, बद्ध कोष्ठ बिनशाय ।।
हरे प्रकाश से चर्म रोग, फुंसी फोड़े जाय।
नेत्रन के सब रोग अरु, अपरस आदि साय ।।
नीले कांच की ज्योति से.शिरो रोग बिनसाय।
उन्माद अनिद्रा शिर चक्कर, त्रिया मूर्च्छा जाय ।।

रिक्त बोतलों से रोग चिकित्सा

ज्योति रंग विज्ञान इक, अदभुत रतन बतात।
सब रोगन के हरण को, केवल वायु विख्यात ।।
रिक्त बोतल को धरे से, रवि से वायु समात।
सौ रोगो के सूंघे से, रोग अवश्य नसात ।।
बिल्लोरी कांच की बोतलें, खोज से मिल जांय।
अस्थि पंजर भरे अंग की, कमजोरी बिनसाय ।।

ओ३म् शम्

॥ ओ३म् ॥

निवेदन

स्वर्गीय श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज आधुनिक युग के परम तपस्वी, कर्मठयोगी एवं वैदिक मिशनरी थे जिन्होंने अपना सारा जीवन गायत्री अनुष्ठान, वेद, यज्ञ तथा योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। आपकी प्रेम भरी वाणी बड़ी कोमल, मधुर तथा सरल थी और लेखन अत्यन्त प्रभावशाली। जटिल से जटिल तथा गूढ़ विषयों को महात्मा जी ने बड़ी सुगम तथा रोचक भाषा में सुलझाया है। यही कारण है कि सर्व साधारण ही नहीं, विद्वान भी आपकी रचनाओं का सम्मान पूर्वक अध्ययन करते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई तथा जैनी आदि सब महात्मा जी की पुस्तकों को बड़े शौक से पढ़ते हैं। किसी धर्म के विरुद्ध इन पुस्तकों में कटु शब्दों में समीक्षा नहीं की गई।

श्री महाराज जी १६-३-६७ ई० को ब्रह्मलोक सिधार गए हैं किन्तु उनका साहित्य आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहा है। महाराज जी कृत लगभग ६ दर्जन पुस्तकों में आध्यात्मिक मार्ग का निरूपण किया गया है तथा हर पुस्तक के कई-कई संस्करण छप चुके हैं और मांग सदा बनी रहती है। इन पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत मात्र रखा गया है ताकि सर्व साधारण इससे अधिकाधिक लाभ उठा सके। हमारा ध्येय धर्म प्रचार है, धन कमाना नहीं। प्रभु के सत्य ज्ञान का निःशुल्क प्रचार-प्रसार करना हमारा कर्तव्य है।

अतः सब धर्म प्रेमियों से प्रार्थना है कि इन पुस्तकों का स्वयं अध्ययन करें तथा दूसरों तक पहुँचा कर पुण्य के भागी बनें।

निवेदक—
प्रकाशन विभाग
वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

सस्ती, सुन्दर और सरल लघु पुस्तकें

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी लिखित

नाम	पृष्ठ	मूल्य
अमृत के तीन घूंट	४४	.२५
अब जागो	x	.१५
अनमोल मोती	x	.१०
गायत्री कुसुमांजली	६८	.१५
,, ,, अंग्रेजी	५८	.१५
जीवन उत्थान के साधन		.१०
दुर्लभ वस्तु	३२	.१५
दैनिक यज्ञ		.१०
दिव्य जीवन के साधन	x	.१०
प्रार्थना	x	.०३
बुद्धिमानोंको चेतावनी	x	
भाग्यवान् आदर्श गृहस्थी		.१५
यज्ञमय जीवन		
यज्ञ और जादूगरनी गौ	x	.१५
Essence of Vedic Religion		.20
संभलो		.१०
सावधान		.१५
मौन के महत्व		.१५

रक्षा बन्धन चार्ट
साधना चार्ट
,, ,, बड़ा
वाणी के महत्व
संध्या तथास्त्रीशिक्षा(डरा
अध्यात्मसुधा नं ४ (यज्ञ
पद्धतियां) २५६
,, नं ५ (अतिथी यज्ञ) x
परमात्मा के अनुदान
देव यज्ञ मर्यादा (संपूर्ण
हवन मंत्रों सहित)
अन्य उपयोगी १ हि
आत्म विज्ञान (हिन्दी
,, Science of So
ब्रह्मविज्ञान
वहिरंग योग
हिमालय का एक योगी
यजुर्वेद विवरण
ऋषि दयानन्द के पत्र
और विज्ञाप

इनके अतिरिक्त आश्रम में चारों वेद, संध्या, हवन मंत्र आ विक्रय के लिए प्रस्तुत रहते हैं। इस समय (१-३-७१) जो समाप्त हैं उनके आगे यह x संकेत दिया गया है। आश्रम पत्रिका यज्ञ योग ज्योति वैशाख २०२१ (१५-४-६४) से छ हर मास श्री महात्मा जी के उपदेश छपते हैं। उच्चकोटि पत्रिका है। स्वाध्याय शील अवश्य सदस्य बनें। वार्षिक ३

निवेदक—वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक